MAHN102CCT

आधुनिक हिंदी गद्य

एम.ए.

(प्रथम सेमेस्टर के लिए)

पेपर-2

दूरस्थ शिक्षा निदेशालय

मौलाना आज़ाद नेशनल उर्दू यूनिवर्सिटी

हैदराबाद-32, तेलंगाना, भारत

© Maulana Azad National Urdu University, Hyderabad
Course : Aadhunik Hindi Gadya
ISBN:978-93-95203-29-6
First Edition: December, 2022

Publisher	:	Registrar, Maulana Azad National Urdu University
Edition	:	2022
Copies	:	1000
Copy Editing	:	Dr. Wajada Isharat, MANUU, Hyderabad Dr. L. Anil, DDE, MANUU, Hyderabad
Cover Designing	:	Dr. Mohd. Akmal Khan, DDE, MANUU, Hyderabad
Printing	:	Print Times & Business Enterprises, Hyderabad

Aadhunik Hindi Gadya

For

M.A. Hindi

1st Semester

On behalf of the Registrar, Published by:

Directorate of Distance Education

Maulana Azad National Urdu University

Gachibowli, Hyderabad-500032 (TS), Bharat

*Director:*dir.dde@manuu.edu.in *Publication:* ddepublication@manuu.edu.in

Phone number: 040-23008314 Website: manuu.edu.in

© All rights reserved. No part of this publication may be reproduced or transmitted in any form or by any means, electronically or mechanically, including photocopying, recording or any information storage or retrieval system, without prior permission in writing from the publisher (registrar@manuu.edu.in)

संपादक

डॉ. आफताब आलम बेग
सहायक कुल सचिव,
दूरस्थ शिक्षा निदेशालय, मानू

Editor

Dr. Aftab Alam Baig
Assistant Registrar
DDE, MANUU

संपादक-मंडल
(Editorial Board)

प्रो. ऋषभदेव शर्मा
पूर्व अध्यक्ष, उच्च शिक्षा और शोध संस्थान
दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, हैदराबाद
परामर्शी (हिंदी), दूरस्थ शिक्षा निदेशालय, मानू

Prof. Rishabhadeo Sharma
Former Head, Higher Education and Research Centre, Dakshin Bharat Hindi Prachar Sabha, Hyderabad
Consultant (Hindi), DDE, MANUU

प्रो. श्याम राव राठोड़
अध्यक्ष, हिंदी विभाग
अंग्रेज़ी और विदेशी भाषा वि.वि.,हैदराबाद

Prof. Shyamrao Rathod
Head, Department of Hindi
EFL University, Hyderabad

डॉ. गंगाधर वानोडे
क्षेत्रीय निदेशक
केंद्रीय हिंदी संस्थान, सिकंदराबाद, हैदराबाद

Dr. Gangadhar Wanode
Regional Director
Central Institute of Hindi
Hyderabad Centre, Secunderabad, Hyd

डॉ. आफताब आलम बेग
सहायक कुल सचिव,
दूरस्थ शिक्षा निदेशालय, मानू

Dr. Aftab Alam Baig
Assistant Registrar, DDE, MANUU

डॉ. वाजदा इशरत
अतिथि प्राध्यापक/असिस्टेंट प्रोफ़ेसर (संविदा)
दूरस्थ शिक्षा निदेशालय, मानू

Dr. Wajada Ishrat
Guest Faculty/Assistant Professor (Cont.)
DDE, MANUU

पाठ्यक्रम-समन्वयक

डॉ. आफ़ताब आलम बेग

सहायक कुल सचिव, दूरस्थ शिक्षा निदेशालय

मौलाना आज़ाद नेशनल उर्दू यूनिवर्सिटी, हैदराबाद

लेखक	**इकाई संख्या**
• **डॉ. चंदन कुमारी,** प्राध्यापक, हिंदी विभाग, भवन्स श्री ए. के.दोषी. महिला कॉलेज, जामनगर.	1,2
• **डॉ. वाजदा इशरत,** अतिथि प्राध्यापक/ असिस्टेंट प्रोफेसर(संविदा), दू. शि. नि. मानू	3,4,8
• **डॉ. इबरार खान,** असिस्टेंट प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, हिंदी विभाग, मिर्ज़ा ग़ालिब कॉलेज, गया	5,6,7
• **डॉ . अविनाश के,** असिस्टेंट प्रोफेसर(संविदा), डॉ. बी. आर अम्बेडकर सार्वत्रिक विश्वविद्यालय हैदराबाद	9
• **डॉ. मंजु शर्मा,** अध्यक्ष, हिंदी विभाग, चिरेक इंटरनेशनल स्कूल, हिंदी विभाग, हैदराबाद	10
• **डॉ . सुपर्णा मुखर्जी**, प्राध्यापक, हिंदी विभाग, सेंट एन्स जूनियर एंड डिग्री कॉलेज फॉर गर्ल्स एंड वुमेन, मलकाजगिरी, हैदराबाद.	11,12
• **डॉ. गुर्रमकोंडा नीरजा,** असोसिएट प्रोफेसर, उच्च शिक्षा और शोध संस्थान, दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा, टी. नगर, चेन्नै	13,14
• **डॉ .सुषमा देवी'**, प्राध्यापक, हिंदी विभाग, भवन्स विवेकानंद कॉलेज, सैनिकपुरी, सिकंदराबाद	15,16

विषयानुक्रमणिका

संदेश	:	कुलपति	7
संदेश	:	निदेशक	9
भूमिका	:	पाठ्यक्रम–समन्वयक	10

खंड/इकाई		**विषय**	**पृष्ठ**
खंड1	**:**	**आधुनिक हिंदी गद्य का इतिहास और निबंध**	
इकाई1	:	आधुनिक हिंदी गद्य : उद्भव और विकास	13
इकाई 2	:	आधुनिक हिंदी गद्य की विधाएँ	31
इकाई 3	:	रामचंद्र शुक्ल : एक परिचय	47
इकाई 4	:	'करुणा' : समीक्षात्मक अध्ययन	58
खंड 2	**:**	**स्मृति आधारित गद्य विधाएँ**	
इकाई 5	:	महादेवी वर्मा : एक परिचय	69
इकाई 6	:	'घीसा' : समीक्षात्मक अध्ययन	86
इकाई 7	:	'उग्र' : एक परिचय	99
इकाई 8	:	'अपनी खबर' : समीक्षात्मक अध्ययन	119
खंड 3	**:**	**हिंदी उपन्यास : रंगभूमि**	
इकाई 9	:	प्रेमचंदपर्यंत हिंदी उपन्यास	133
इकाई 10	:	प्रेमचंद : एक परिचय	146
इकाई 11	:	'रंगभूमि' : कथानक	160
इकाई 12	:	'रंगभूमि': एक सामाजिक उपन्यास	173

खंड 4	**:**	**हिंदी उपन्यास : राग दरबारी**	
इकाई 13	:	प्रेमचंदोत्तर हिंदी उपन्यास	185
इकाई 14	:	श्रीलाल शुक्ल : एक परिचय	202
इकाई 15	:	'राग दरबारी' : कथानक	219
इकाई 16	:	'राग दरबारी' : एक व्यंग्यात्मक उपन्यास	233
		परीक्षा प्रश्न पत्र का नमूना	**247**

प्रूफ रीडर:

प्रथम : डॉ. वाजदा इशरत, अतिथि प्राध्यापक/ असिस्टेंट प्रोफ़ेसर (संविदा), दू. शि. नि., मानू

द्वितीय : डॉ. एल. अनिल, अतिथि प्राध्यापक/ असिस्टेंट प्रोफ़ेसर (संविदा), दू. शि. नि., मानू

अंतिम : डॉ. आफताब आलम बेग, सहायक कुल सचिव, दू. शि. नि., मानू

संदेश

मौलाना आज़ाद नेशनल उर्दू यूनिवर्सिटीकी स्थापना 1998 में संसद के एक अधिनियम द्वारा की गई थी। यह NAAC मान्यत प्राप्त एक केंद्रीय विश्वविद्यालय है। विश्वविद्यालय का अधिदेश है: (1) उर्दू भाषा का प्रचार-प्रसार और विकास (2) उर्दू माध्यम से व्यावसायिक और तकनीकी शिक्षा (3) पारंपरिक और दूरस्थ शिक्षा के माध्यम से शिक्षा प्रदान करना, और (4) महिला शिक्षा पर विशेष ध्यान देना। यही वे बिंदु हैं जो इस केंद्रीय विश्वविद्यालय को अन्य सभी केंद्रीय विश्वविद्यालयों से अलग करते हैं और इसे एक अनूठी विशेषता प्रदान करते हैं, राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में भी मातृभाषा और क्षेत्रीय भाषाओं में शिक्षा के प्रावधान पर जोर दिया गया है।

उर्दू माध्यम से ज्ञान-विज्ञान के प्रचार-प्रसार का एकमात्र उद्देश्य उर्दू भाषी समुदाय के लिए समकालीन ज्ञान और विषयों की पहुंच को सुविधाजनक बनाना है। लंबे समय से उर्दू में पाठ्यक्रम सामग्री का अभाव रहा है। इस लिए उर्दू भाषा में पुस्तकों की अनुपलब्धता चिंता का विषय रहा है। नई शिक्षा नीति 2020 के दृष्टिकोण के अनुसार उर्दू विश्वविद्यालय मातृभाषा / घरेलू भाषा में पाठ्यक्रम सामग्री प्रदान करने की राष्ट्रीय प्रक्रिया का हिस्सा बनने का सौभाग्य मानता है। इसके अतिरिक्त उर्दू में पठन सामग्री की अनुपलब्धता के कारण उभरते क्षेत्रों में अद्यतन ज्ञान और जानकारी प्राप्त करने या मौजूदा क्षेत्रों में नए ज्ञान प्राप्त करने में उर्दू भाषी समुदाय सुविधाहीन रहा है। ज्ञान के उपरोक्त कार्य-क्षेत्र से संबंधित सामग्री की अनुपलब्धता ने ज्ञान प्राप्त करने के प्रति उदासीनता का वातावरण बनाया है जो उर्दू भाषी समुदाय की बौद्धिक क्षमताओं को मुख्य रूप से प्रभावित कर सकता है। ये वह चुनौतियां है जिनका सामना उर्दू विश्वविद्यालय कर रहा है। स्व-अध्ययन सामग्री का परिदृश्य भी बहुत अलग नहीं है। प्रत्येक शैक्षणिक वर्ष के प्रारंभ में स्कूल/कॉलेज स्तर पर भी उर्दू में पाठ्य पुस्तकों की अनुपलब्धता पर चर्चा होती है। चूंकि उर्दू विश्वविद्यालय की शिक्षा का माध्यम केवल उर्दू है और यह विश्वविद्यालय लगभग सभी महत्वपूर्ण विषयों के पाठ्यक्रम प्रदान करता है, इसलिए इन सभी विषयों की पुस्तकों को उर्दू में तैयार करना विश्वविद्यालय की सबसे महत्वपूर्ण जिम्मेदारी है। इन उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए मौलाना आज़ाद राष्ट्रीय उर्दू विश्वविद्यालय अपनेदूरस्थ शिक्षा के छात्रों को स्व-अध्ययन सामग्री अथवा सेल्फ लर्निंग मैटेरियल (SLM) के रूप में पाठ्य सामग्री उपलब्ध कराता है। वहीं उर्दू माध्यम से ज्ञान प्राप्त करने के इच्छुक किसी भी व्यक्ति के लिए भी यह सामग्री उपलब्ध है। अधिकाधिक लोग इससे लाभान्वित हो सकें, इसके लिए उर्दू में

इलेक्ट्रॉनिक पाठ्य सामग्री अथवा eSLM विश्वविद्यालय की वेबसाइट से मुफ्त डाउनलोड के लिए उपलब्ध है।

मुझे अत्यंत प्रसन्नता है कि संबंधित शिक्षकों की कड़ी मेहनत और लेखकों के पूर्ण सहयोग के कारण पुस्तकों के प्रकाशन का कार्य उच्च-स्तर पर प्रारंभ हो चुका है। दूरस्थ शिक्षा के छात्रों की सुविधा के लिए, स्व-अध्ययन सामग्री की तैयारी और प्रकाशन की प्रक्रिया विश्वविद्यालय के लिए सर्वोपरि है। मुझे विश्वास है कि हम अपनी स्व-शिक्षण सामग्री के माध्यम से एक बड़े उर्दू भाषी समुदाय की आवश्यकताओं को पूरा करने में सक्षम होंगे और इस विश्वविद्यालय के अधिदेश को पूरा कर सकेंगे।

एक ऐसे समय जब हमारा विश्वविद्यालय अपनी स्थापना की 25वीं वर्षगांठ मना रहा है, मुझे इस बात का उल्लेख करते हुए हर्ष हो रहा है कि विश्वविद्यालय का दूरस्थ शिक्षा निदेशालय कम समय में स्व-अध्ययन सामग्री तथा पुस्तकें तैयार कर विद्यार्थियों को पहुंचा रहा है। देश के कोने कोने में छात्र विभिन्न दूरस्थ शिक्षा कार्यक्रमों से लाभान्वित हो रहे हैं। यद्यपि पिछले दो वर्षों के दौरान कोविड-19 की विनाशकारी स्थिति के कारण प्रशासनिक मामले और संचारचलन भी काफी कठिन रहे हैं लेकिन विश्वविद्यालय द्वारा दूरस्थ शिक्षा कार्यक्रमों को सफलतापूर्वक संचालित करने के लिए सर्वोत्तम प्रयास किया जा रहा है। मैं विश्वविद्यालय से जुड़े सभी विद्यार्थियों को इस विश्वविद्यालय का अंग बनने के लिए ह्रदय से बधाई देता हूं और यह विश्वास दिलाता हूँ कि मौलाना आज़ाद राष्ट्रीय उर्दू विश्वविद्यालय का शैक्षिक मिशन सदैव उनके के लिए ज्ञान का मार्ग प्रशस्त करता रहेगा। शुभकामनाओं सहित!

प्रो. सैयद ऐनुल हसन
कुलपति

संदेश

दूरस्थ शिक्षा प्रणाली को पूरी दुनिया में अत्यधिक कारगर और लाभप्रद शिक्षा प्रणाली की हैसियत से स्वीकार किया जा चुका है और इस शिक्षा प्रणाली से बड़ी संख्या में लोग लाभान्वित हो रहे हैं। मौलाना आज़ाद नेशनल उर्दू यूनिवर्सिटी ने भी अपनी स्थापना के आरंभिक दिनों से ही उर्दू तबके की शिक्षा की स्थिति को महसूस करते हुए इस शिक्षा प्रणाली को अपनाया है। मौलाना आज़ाद नेशनल उर्दू यूनिवर्सिटी का बाकायदा प्रारम्भ 1998 में दूरस्थ शिक्षा प्रणाली और ट्रांसलेशन डिविजन से हुआ था और इस के बाद 2004 में बाकायदा पारंपरिक शिक्षा का आगाज़ हुआ। पारंपरिक शिक्षा के विभिन्न विभाग स्थापित किए गए। नए स्थापित विभागों और ट्रांसलेशन डिविजन में नियुक्तियाँ हुईं। उस वक़्त के शिक्षा प्रेमियों के भरपूर सहयोग से स्व-अधिगम सामग्री को अनुवाद व लेखन के द्वारा तैयार कराया गया।
पिछले कई वर्षों से यूजीसी-डीईबी (UGC-DEB) इस बात पर ज़ोर देता रहा है किदूरस्थ शिक्षा प्रणाली के पाठ्यक्रम व व्यवस्था को पारंपरिक शिक्षा प्रणाली के पाठ्यक्रम व व्यवस्था से लगभग जोड़कर दूरस्थ शिक्षा प्रणाली के मयार को बुलंद किया जाय। चूंकि मौलाना आज़ाद नेशनल उर्दू यूनिवर्सिटी दूरस्थ शिक्षा और पारंपरिक शिक्षा का विश्वविद्यालय है, अतः इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए यूजीसी-डीईबी (UGC-DEB) के दिशा निर्देशों के मुताबिक दूरस्थ शिक्षा प्रणाली और पारंपरिक शिक्षा प्रणाली के पाठ्यक्रम को जोड़कर और गुणवततापूर्ण करके स्व-अधिगम सामग्री को पुनः क्रमवार यू.जी. और पी.जी. के विद्यार्थियों के लिए क्रमशः 6 खंड-24 इकाइयों और 4 खंड – 16 इकाइयों पर आधारित नए तर्ज़ की रूपरेखा पर तैयार कराया जा रहा है।

दूरस्थ शिक्षा निदेशालय यू.जी., पी.जी., बी.एड., डिप्लोमा और सर्टिफिकेट कोर्सेज पर आधारित कुल 15 पाठ्यक्रम चला रहा है। बहुत जल्द ही तकनीकी हुनर पर आधारित पाठ्यक्रम शुरू किए जाएंगे। अधिगमकर्ताओं की सरलता के लिए 9 क्षेत्रीय केंद्र (बंगलुरु, भोपाल, दरभंगा, दिल्ली, कोलकाता, मुंबई, पटना, रांची और श्रीनगर) और 5 उपक्षेत्रीय केंद्र (हैदराबाद, लखनऊ, जम्मू, नूह और अमरावती) का एक बहुत बड़ा नेटवर्क तैयार किया है। इन केन्द्रों के अंतर्गत एक साथ 155 अधिगम सहायक केंद्र (लर्निंग सपोर्ट सेंटर) काम कर रहे हैं। जो अधिगमकर्ताओं को शैक्षिक और प्रशासनिक सहयोग उपलब्ध कराते हैं। दूरस्थ शिक्षा निदेशालय (डी. डी. ई.) ने अपनी शैक्षिक और व्यवस्था से संबन्धित कार्यों में आई.सी.टी. का इस्तेमाल शुरू कर दिया है। इसके अलावा अपने सभी पाठ्यक्रमों में प्रवेश सिर्फ ऑनलाइन तरीके से ही दे रहा है।

दूरस्थ शिक्षा निदेशालय की वेबसाइट पर अधिगमकर्ता को स्व-अधिगम सामग्री की सॉफ्ट कॉपियाँ भी उपलब्ध कराई जा रही हैं। इसके अतिरिक्त शीघ्र ही ऑडियो-वीडियो रिकॉर्डिंग का लिंक भी वैबसाइट पर उपलब्ध कराया जाएगा। इसके साथ-साथ अध्ययन व अधिगम के बीच एसएमएस (SMS) की सुविधा उपलब्ध की जा रही है। जिसके द्वारा अधिगमकर्ताओं को पाठ्यक्रमों के विभिन्न पहलुओं जैसे- कोर्स के रजिस्ट्रेशन, दत्तकार्य, काउंसलिंग, परीक्षा के बारे में सूचित किया जाता है।

आशा है कि देश में शैक्षिक और आर्थिक रूप से पिछड़ी हुई उर्दू आबादी को मुख्यधारा में शामिल करने में दूरस्थ शिक्षा निदेशालय की भी मुख्य भूमिका होगी।

प्रो. मो. रज़ाउल्लाह ख़ान
निदेशक, दूरस्थ शिक्षा निदेशालय

भूमिका

'**आधुनिक हिंदी गद्य**' शीर्षक यह पुस्तक मौलाना आजाद नेशनल उर्दू यूनिवर्सिटी, हैदराबाद के एम.ए. (हिंदी) प्रथम सत्र (द्वितीय प्रश्न पत्र) के दूरस्थ शिक्षा माध्यम के छात्रों के लिए तैयार की गई है। इसकी संपूर्ण योजना विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (यूजीसी) के निर्देशों के अनुसार नियमित माध्यम के पाठ्यक्रम के अनुरूप रखी गई है।

हिंदी साहित्य के इतिहास में आधुनिक काल को गद्य काल का नाम भी दिया गया है। इस काल में मुद्रण कला, पत्रकारिता, नवजागरण और स्वतंत्रता आंदोलन ने लेखकों को गद्य साहित्य की रचना के लिए अनुकूल वातावरण प्रदान किया। साथ ही तकनीक के नए रूपों के विकास ने भी गद्य की नई विधाओं का रास्ता खोला। इस काल में कहानी और उपन्यास के रूप में कथा साहित्य का तो भरपूर विकास हुआ ही, कथेतर विधाओं ने भी सुनिश्चित रूपाकार ग्रहण किया। एक ओर जहाँ निबंध की अलग-अलग शैलियाँ विकसित हुईं, वहीं स्मृति आधारित ऐसी नई विधाएँ भी सामने आईं जिन्हें अकाल्पनिक गद्य की श्रेणी में रखा जाता है। आत्मकथा, जीवनी, संस्मरण, रेखाचित्र और साक्षात्कार ऐसी ही कथेतर गद्य विधाएँ हैं। 'आधुनिक हिंदी गद्य' का यह पाठ्यक्रम विद्यार्थियों को हिंदी गद्य के इन विविध रूपों के विकास के साथ-साथ उनके स्वरूप से भी परिचित कराएगा।

यह पुस्तक पाठ्यचर्या के अनुरूप चार खंडों में विभाजित है। हर खंड में चार-चार इकाइयाँ शामिल हैं। पहले खंड में संक्षेप में आधुनिक हिंदी गद्य का इतिहास विभिन्न विधाओं के उद्भव और विकास को समझाने के लिए दिया गया है। साथ ही हिंदी निबंध के प्रमुख उन्नायक आचार्य रामचंद्र शुक्ल का परिचय देते हुए उनके मनोभाव केंद्रित एक निबंध 'करुणा' का समीक्षात्मक विवेचन किया गया है। दूसरा खंड रेखाचित्र-संस्मरण और आत्मकथा को समर्पित है। इन विधाओं के प्रमुख लेखकों के रूप में महादेवी वर्मा और पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' का परिचय देते हुए उनकी एक-एक रचना का समीक्षात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। पुस्तक के तीसरे और चौथे खंड में दो विशिष्ट उपन्यासकारों प्रेमचंद और श्रीलाल शुक्ल का परिचय देते हुए उनके एक-एक उपन्यास 'रंगभूमि' और 'राग दरबारी' का विश्लेषण किया गया है। साथ ही हिंदी उपन्यास के इतिहास की एक झाँकी, उसे दो भागों प्रेमचंद पर्यंत और प्रेमचंदोत्तर युग में बाँट कर पेश की गई है।

इस पुस्तक के अध्ययन से विद्यार्थी हिंदी गद्य की विधागत विविधता, विषयगत प्रौढ़ता, भाषागत यात्रा और शैलीगत परिधि के विस्तार को आत्मसात कर सकेंगे। अध्येय पाठों का चयन इस प्रकार किया गया है कि उनके अध्ययन से छात्रों का वैयक्तिक और मानसिक विकास

हो सके, उनके भीतर राष्ट्रीय चेतना और लोकतांत्रिक मूल्यों की समझ विकसित हो सके तथा हिंदी के माध्यम से सामाजिक समरसता का संस्कार निर्मित हो सके।

इस समस्त पाठ सामग्री को तैयार करने में हमें जिन विद्वान इकाई लेखकों, ग्रंथों, ग्रंथकारों और पत्र-पत्रिकाओं से सहायता मिली है, उन सबके प्रति हम कृतज्ञ हैं।

-डॉ. आफताब आलम बेग

पाठ्यक्रम समन्वयक

आधुनिक हिंदी गद्य

इकाई 1 : आधुनिक हिंदी गद्य : उद्भव और विकास

रूपरेखा

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 मूल पाठ : आधुनिक हिंदी गद्य : उद्भव और विकास
1.3.1 आधुनिक हिंदी गद्य के उद्भव की पृष्ठभूमि
1.3.2 आधुनिक हिंदी गद्य का आरंभिक विकास
1.3.3 आधुनिक हिंदी गद्य का विधागत विकास
1.4 पाठ सार
1.5 पाठ की उपलब्धियाँ
1.6 शब्द संपदा
1.7 परीक्षार्थ प्रश्न
1.8 पठनीय पुस्तकें

1.1 प्रस्तावना

हिंदी साहित्य के इतिहास का अनुशीलन करने से यह तथ्य सामने आता है कि गद्य की उपस्थिति आदिकालीन साहित्य में विशुद्ध गद्य और चंपू विधा के रूप में रही है। चंपू यानी गद्य-पद्य मिश्रित विधा। भक्तिकाल में भी गद्य का स्वरूप अविकसित था। इस समय गद्य लेखन की दो प्रवृत्तियाँ थीं। एक काव्यात्मक गद्य लेखन जिसमें तुक का मिलना अनिवार्य था और दूसरा तुक रहित गद्य लेखन। आदिकाल से लेकर रीतिकाल तक पद्य की तुलना में प्राचीन गद्य साहित्य की उपस्थिति बहुत कम है। आधुनिक काल में हिंदी गद्य की रचनाओं का विपुल भंडार है। इससे पहले के समय में भी अपभ्रंश साहित्य के अंतर्गत अपभ्रंश मिश्रित देशी भाषा (राजस्थानी, मैथिली और ब्रजभाषा) में गद्य की रचनाएँ प्राप्त हुई हैं। इससे प्राचीन संस्कृत साहित्य में भी गद्य साहित्य उपलब्ध रहा है। उस समय 'गद्य' शब्द प्रचलित नहीं था पर 'गद्य साहित्य' को काव्य की कसौटी कहा जाता था।

संस्कृत में 'साहित्य' के लिए 'काव्य' शब्द का प्रयोग होता था, जिसमें गद्य और पद्य दोनों विधाओं की रचनाएँ शामिल मानी जाती थीं। बाद में 'काव्य' शब्द केवल 'पद्य' के लिए रूढ़ हो गया। "संस्कृत में अनेक रूपों - नाटक, कथा, आख्यायिका - आदि की अत्यंत समृद्ध एवं सुविकसित परंपरा थी। अतः हिंदी के प्रारंभिक युगों में गद्य का विकास न होने के पीछे 'संस्कृत के आदर्शों का पालन' करना नहीं अपितु उन्हें त्याग देना ही कारण है। वस्तुतः हिंदी से पूर्व अपभ्रंश में ही संस्कृत की गद्य-परंपरा बहिष्कृत एवं लुप्त हो चुकी थी।" (गणपतिचंद्र गुप्त)। अभिप्राय यह है कि संस्कृत में उपलब्ध गद्य साहित्य को उनके परवर्ती काल के साहित्यकारों ने पद्य बद्ध किया। संस्कृत गद्य से प्रेरणा लेकर उसे पद्य में परिवर्तित करने का काम अपभ्रंश के कवियों ने पहले किया। आधुनिक काल में पूर्व युगों की राग-प्रेम और कल्पनाशीलता का स्थान

तार्किकता, बौद्धिकता और यथार्थता ने ले रखा है। इसी से इस काल में गद्य को अबाधित विस्तार भूमि प्राप्त हो रही है। इस काल के गद्य लेखन को लक्षित करते हुए, आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने इसे 'गद्य काल' की संज्ञा से विभूषित किया। प्राचीन भाषाओं में गद्य साहित्य की कम उपस्थिति का एक कारण यह भी हो सकता है कि इस ओर पर्याप्त खोज अभी भी बाकी है।

1.2 उद्देश्य

प्रिय छात्रो! इस इकाई में आप हिंदी गद्य के उद्भव और विकास की विभिन्न स्थितियों का अध्ययन करेंगे। इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप -

- आधुनिक हिंदी गद्य के उद्भव की परिस्थितियों से अवगत हो सकेंगे।
- आधुनिक हिंदी गद्य के विकास के कारक तत्वों से परिचित हो सकेंगे।
- आधुनिक हिंदी गद्य की विकास यात्रा को समझ सकेंगे।
- आधुनिक हिंदी गद्य के विधागत विकास को जान सकेंगे।

1.3 मूल पाठ : आधुनिक हिंदी गद्य : उद्भव और विकास

1.3.1 आधुनिक हिंदी गद्य के उद्भव की पृष्ठभूमि

साहित्य की किसी भी विधा के उद्भव और विकास का संबंध उसकी भाषा के उद्भव और विकास के साथ जुड़ा हुआ होता है। इसलिए आधुनिक हिंदी गद्य के उद्भव की पृष्ठभूमि भी हिंदी भाषा के क्रमिक विकास से जुड़ी हुई है। आधुनिक हिंदी गद्य के अस्तित्व में आने से पूर्व अपभ्रंश मिश्रित देशी भाषाओं में गद्य साहित्य की झलक मिलती है। हिंदी साहित्य के अध्ययन की दृष्टि से राजस्थानी भाषा का साहित्य ही सबसे प्राचीन माना जाता है।

राजस्थान में लेखन की दो शैलियाँ प्रचलित थी- 'डिंगल' और 'पिंगल'। अपभ्रंश मिश्रित पुरानी राजस्थानी भाषा का साहित्य 'डिंगल' शैली में रचित साहित्य के रूप में जाना जाता है। ब्रजभाषा मिश्रित राजस्थानी भाषा के साहित्य को 'पिंगल' शैली की रचना कहा गया। हिंदी के आदिकाल में रोडा कृत 'राउलवेल' का उल्लेख मिलता है जो शिलांकित कृति है। इसमें हिंदी की सात बोलियों के शब्द हैं पर इसकी प्रधान भाषा राजस्थानी है। पाठ के रूप में इसे बंबई के प्रिंस ऑफ वेल्स संग्रहालय से प्राप्त कर प्रकाशित किया गया है।

दामोदर शर्मा कृत 'उक्ति व्यक्ति प्रकरण' 12वीं शताब्दी की अवधी भाषा की रचना है। इस पर अपभ्रंश का प्रभाव दृष्टिगोचर न हो, इसके लिए इन अपभ्रंश प्रभावित शब्दों का संस्कृत रूपांतरण करके प्रयोग किया गया है। इसमें तत्सम शब्दों का प्रयोग अधिक दिखाई देता है। ज्योतिरीश्वर ठाकुर कृत 'वर्णरत्नाकर' 14वीं शताब्दी की मैथिली भाषा की रचना है। इसे बंगाल एशियाटिक सोसाइटी ने प्रकाशित कराया। इसका संपादन डॉ. सुनीतिकुमार चटर्जी और पं. बबुआ मिश्र ने किया था। आचार्य रामचंद्र शुक्ल हिंदी साहित्य के प्राचीन गद्य के रूप में ब्रजभाषा गद्य को मान्यता देते हैं। ब्रजभाषा हिंदी क्षेत्र की साहित्यिक काव्य-भाषा के रूप में मान्य थी।

इन देशी भाषाओं का पद्य साहित्य प्रवाहमान रहा, परंतु इनके गद्य साहित्य के स्वरूप विकास की गति अत्यंत मंद रही। ब्रजभाषा और ब्रजभाषा मिश्रित खड़ीबोली हिंदी में काव्य ग्रंथों एवं संस्कृत ग्रंथों की उपलब्ध टीकाओं की भाषा भी सहज ग्राह्य नहीं थीं। इन 'अनगढ़ और असंबद्ध' भाषाओं की दुरूहता गद्य में अरुचि उत्पन्न करने वाली थी। मूल साहित्य इन टीकाओं से कहीं अधिक सहज, ग्राह्य और रुचिकर लगती थी। इस प्रकार ब्रजभाषा में पद्य का भंडार द्रुत गति से बढ़ रहा था पर, उसके समक्ष उस भाषा का गद्य साहित्य बहुत न्यून था। गद्य की भाषा के रूप में खड़ीबोली हिंदी के निर्विरोध चयन में; गद्य के क्षेत्र में इस पूर्ववर्ती भाषिक शैथिल्य का बड़ा योगदान रहा। इसे स्पष्ट करते हुए आचार्य शुक्ल कहते हैं, "गद्य का भी विकास यदि होता आता तो विक्रम की इस शताब्दी के आरंभ में भाषा-संबंधी बड़ी विषम समस्या उपस्थित होती। जिस धड़ाके के साथ गद्य के लिये खड़ी बोली ले ली गई उस धड़ाके के साथ न ली जा सकती। कुछ समय सोच-विचार और वाद-विवाद में जाता और कुछ समय तक दो प्रकार के गद्य की धाराएँ साथ-साथ दौड़ लगतीं। भाषा विप्लव नहीं संघटित हुआ और खड़ीबोली, जो कभी अलग और कभी ब्रजभाषा के गोद में दिखाई पड़ जाती थी, धीरे-धीरे व्यवहार की शिष्ट भाषा होकर गद्य के नए मैदान में दौड़ पड़ी।" अकबर और जहाँगीर के समय से ही खड़ीबोली हिंदी का प्रयोग शिष्ट भाषा के रूप में हो रहा था। अकबर के समय में ही कवि गंग ने 'चंद छंद बरनन की महिमा' नामक गद्य-ग्रंथ लिखा। यह आधुनिक हिंदी गद्य लेखन का प्रथम प्रयास माना जाता है।

रामप्रसाद निरंजनी कृत 'भाषा योगवशिष्ठ' (1741 ई.) में आधुनिक हिंदी गद्य का अधिक परिष्कृत स्वरूप सामने आया। यह हिंदी गद्य की प्रथम प्रौढ़ रचना है। रविषेणाचार्य कृत जैन पद्मपुराण का भाषानुवाद (1766ई.) दौलतराम ने किया। इस ग्रंथ की भाषा योगवशिष्ठ के समान परिष्कृत नहीं थी। यह उर्दू-फारसी के प्रभाव से बिलकुल मुक्त थी। इस ग्रंथ की महत्ता इसमें व्यवहृत हिंदी के स्वाभाविक स्वरूप से है।

बोध प्रश्न

- आधुनिक काल से पूर्व गद्य लेखन की प्रवृत्ति क्या थी?
- हिंदी गद्य लेखन के लिए खड़ीबोली का निर्विरोध चयन क्यों हुआ?

1.3.2 आधुनिक हिंदी गद्य का आरंभिक विकास

19वीं शताब्दी में भारत में अंग्रेजी राज की स्थापना के बाद भारत की परिस्थितियाँ बदलीं। राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक गतिविधियों में आए विविध परिवर्तनों ने भी गद्य विधा के प्रचार और भाषा के परिष्कार में योग दिया। भारत में अंग्रेजों के आने से पूर्व ही हिंदी गद्य के प्रसार का कार्य आरंभ हो चुका था। अंग्रेजों के आने से पहले दक्षिण भारत में मशीनरियों का दल ईसाई धर्म के प्रचार में लगा हुआ था। इस प्रचार कार्य में हिंदी भाषा का उपयोग उन्होंने बहुलता से किया।

विकास के कारक तत्व

मुगलों के शासनकाल में दिल्ली की खड़ीबोली शिष्ट व्यवहार की भाषा बन गई। औरंगजेब के समय में दरबारों में फारसी मिश्रित खड़ीबोली यानी 'रेख्ता' में शायरी की जाने लगी। दिल्ली पर बाहरी आक्रमणकारियों के आक्रमणों से सामान्य जनता और शासक, पराजय की स्थिति में दर-बदर की ठोकर खाने को मजबूर होते थे। मुगलों का यह विध्वंस भी खड़ीबोली हिंदी के विकास में सहायक रहा। आश्रय और जीविकोपार्जन के साधन की तलाश में लोग अपने घर और शहर छोड़ कर दूसरी जगह जाते। लोगों के इस स्थानांतरण के साथ उनकी भाषा और संस्कृति भी स्थानांतरित होती थी। नए जगह से कुछ प्रभाव ग्रहण करना और कराना; मनुष्य का सामान्य स्वभाव है। बड़े शहरों के बाजार की व्यावहारिक भाषा खड़ीबोली थी। जब पराजित नगर के व्यापारी अपना शहर छोड़कर दूसरी जगह गए तो, इनकी भाषा भी इनके साथ गई। इस प्रकार खड़ीबोली का भारत की सभी क्षेत्रीय भाषाओं से संपर्क हुआ। 16वीं शताब्दी में दक्खिनी भाषा जब भारत की भाषा के रूप में सर्वमान्य हुई तब इस भाषा में गद्य लेखन की प्रवृत्ति भी विकसित हुई। मौलिक और अनूदित पुस्तकों के रूप में गद्य की रचना की गई। इस भाषा का दूसरा नाम 'रेख्ता' है।

रीतिकाल के अंत तक भारत में अंग्रेजों का साम्राज्य कायम हो चुका था। 1758ई. में डैनिश मिशन कलकत्ता आया था। 1793ई. में एक मिशन के साथ 'कैरे' आए। नए बंगाल के निर्माण एवं बंगला-गद्य की नींव डालने में इनका महत्वपूर्ण योगदान रहा। 'अलेक्जेंडर डफ' भारत में ईसाई धर्म-प्रचार का काम अंग्रेजी भाषा के माध्यम से करना चाहता था। इस काम के लिए भारत में कई अंग्रेजी स्कूल-कॉलेज खुल गए। पर धर्म प्रचार में वह असफल रहा। अब अंग्रेजों को महसूस हुआ कि भारत में अपनी धाक जमाने के लिए यहाँ के लोगों के भाव और विचार से परिचित होना होगा। इसी लिए उन्हें यहाँ की भाषा को सीखना आवश्यक लगा। भाषा को सीखने के लिए उन्हें गद्य की आवश्यकता हुई। वे हिंदी गद्य के विकास की ओर प्रयत्नरत हुए। हिंदी भाषा में उन लोगों ने 'इंग्लैंड के इतिहास' का अनुवाद कराया। 1803ई. में जॉन गिलक्राइस्ट (हिंदी-उर्दू अध्यापक, फोर्ट विलियम कॉलेज) ने अध्ययन-अध्यापन की सुविधा के लिए भारत देश की भाषा में गद्य की पुस्तकों को लिखवाने का प्रबंध किया। इस व्यवस्था में उन्होंने उर्दू से सर्वथा अलग एक स्वतंत्र भाषा के रूप में हिंदी का अस्तित्व स्वीकार किया। 'फोर्ट विलियम कॉलेज' की स्थापना कलकत्ता में 1800ई. में हुई। ईसाई मशीनरी ने अपने धर्म प्रचार के क्रम में अपने धर्म ग्रंथों का समग्र हिंदी अनुवाद कराकर वितरित किया। हिंदी गद्य के विकास के कारक तत्वों के रूप में प्रेस, शिक्षण संस्थानों, व्यक्तियों एवं पत्र-पत्रिकाओं ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

बोध प्रश्न

- आधुनिक हिंदी गद्य के विकास के कारक तत्वों पर प्रकाश डालें।
- आधुनिक हिंदी गद्य के विकास में फोर्ट विलियम कॉलेज की क्या भूमिका रही?

आधुनिक हिंदी गद्य के विकास में व्यक्तियों, संस्थाओं और पत्र-पत्रिकाओं का योगदान

मुंशी सदासुखलाल नियाज (1746ई.-1824ई.)

ये दिल्ली निवासी और मुख्य रूप से उर्दू-फारसी के लेखक थे। इस भाषा में इन्होंने कई पुस्तकें और शायरी लिखीं। इन्होंने 'विष्णुपुराण' के उपदेशात्मक प्रसंगों को आधार बनाकर एक पुस्तक हिंदी में लिखी। यह पुस्तक पूरी नहीं मिली है। इसमें प्रयुक्त हिंदी गद्य का भाषिक स्वरूप कुछ दूर तक 'योगवशिष्ठ' की भाषा से साम्य रखता है और उर्दू के प्रभाव से पूर्ण मुक्त है। इसमें प्रयुक्त खड़ीबोली में तत्सम शब्दों की बहुलता है। यह संस्कृत मिश्रित हिंदी ही मुसलमान लोगों के लिए 'भाखा' थी। उस समय के हिंदी गद्य कथावाचक, साधु-संत और पंडित जन इस भाषा का प्रयोग करते थे जो हिंदुओं की बोलचाल की शिष्ट भाषा थी। आचार्य रामचंद्र शुक्ल लिखते हैं, "मुंशीजी ने यह गद्य न तो किसी अंग्रेज़ अधिकारी की प्रेरणा से और न किसी दिए हुए नमूने पर लिखा।" इनकी भाषा गंभीर-संयत और परिमार्जित खड़ीबोली है।

इंशाअल्ला खाँ (मृत्यु 1800 ई.)

'उदयभानचरित' या 'रानी केतकी की कहानी' 1798ई. से 1803ई. के बीच की रचना है। आचार्य शुक्ल के अनुसार इसमें घरेलू ठेठ भाषा का प्रयोग बहुत जगह दिखाई देता है और वर्णन भी भारतीय है। विशुद्ध हिंदवी भाषा में गद्य रचना करने के उद्देश्य से उन्होंने यह कहानी लिखी। विशुद्ध हिंदवी से उनका मतलब था हिंदी भाषा का ऐसा रूप जो बाहर की बोली (अरबी-फारसी, तुर्की), गँवारू बोली (ब्रजभाषा, अवधी) और भाखा से मुक्त हो। उनकी भाषा में "फारसी के ढंग का वाक्य विन्यास कहीं-कहीं आ ही गया है; पर बहुत कम। जैसे- 'सिर झुकाकर नाक रगड़ता हूँ अपने बनाने वाले के सामने जिसने हम सबको बनाया।' रंगीन और चुलबुली भाषा द्वारा अपना लेखकीय कौशल दिखाना चाहते थे। आरंभकाल के चारों लेखकों में इंशा की भाषा सबसे चटकीली, मुहावरेदार और चलती है।" (रामचंद्र शुक्ल)।

लल्लूलालजी (1763ई.-1825ई.)

ये आगरा निवासी गुजराती ब्राह्मण थे। उर्दू, ब्रजभाषा और खड़ी बोली- इन तीनों ही भाषाओं में इन्होंने रचना किया है। इनकी कृति 'प्रेमसागर' (1803ई.) जॉन गिलक्राइस्ट के गद्य लेखन की परियोजना का हिस्सा था। इस ग्रंथ में भागवत के दशम स्कंध की कथा वर्णित है। इनकी भाषा गंग की खड़ीबोली के नजदीक है। गद्य का लहजा काव्यात्मक है और लंबे वाक्य प्रयुक्त हुए हैं। इसमें मुहावरे कम प्रयुक्त हुए हैं। इनकी खड़ीबोली पर ब्रजभाषा का प्रभाव अधिक है। 'राजनीति' (1812ई.) ब्रजभाषा गद्य की पुस्तक है। यह पद्यमय हितोपदेश का गद्यानुवाद है। बिहारी सतसई पर इनकी टीका 'लाल चंद्रिका' भी बहुत प्रसिद्ध रही। आगरे में संस्कृत प्रेस की स्थापना इन्होंने की। सुरति मिश्र द्वारा अनूदित संस्कृत ग्रंथ 'बैतालपचीसी' का खड़ीबोली में अनुवाद लल्लूलाल ने किया।

सदल मिश्र

ये बिहार निवासी थे। 'प्रेमसागर' की भाँति ही इनका 'नासिकेतोपाख्यान' जॉन गिलक्राइस्ट के गद्य लेखन की परियोजना का हिस्सा था। इन्होंने इसमें खड़ीबोली हिंदी के व्यावहारिक रूप का प्रयोग किया है। कम मात्रा में ही सही पर ब्रजभाषा और पूरबी बोली के शब्द इनकी भाषा में दिखाई देते हैं।

निष्कर्षतः सदल मिश्र और मुंशी सदासुखलाल के गद्य की भाषा खड़ीबोली अधिक उपयुक्त और व्यावहारिक प्रतीत होती है। इन चार लेखकों में सबसे पहले मुंशी सदासुखलाल ही गद्य लेखन की ओर उन्मुख हुए; इसलिए इन्हें आधुनिक हिंदी गद्य का प्रवर्तक माना जाता है। यह समय है 1803ई.-1824ई. में राजस्थानी पद्य 'गोरा बादल री बात' का खड़ीबोली में गद्यानुवाद किया गया।

1803ई. से 1858ई. के बीच गद्य विधा का कोई उत्कृष्ट ग्रंथ नहीं मिलता है। गद्य के इस उपलब्ध रूप का व्यवहार ईसाई मशीनरियों ने किया। ईसाई धर्म प्रचारक भारत की जनता के मध्य अपने मत का प्रचार करना चाहते थे। सदासुखलाल और लल्लूलाल द्वारा प्रयुक्त हिंदी में ही इन लोगों ने अपने धर्मग्रंथों का अनुवाद किया। यह भाषा उर्दू के प्रभाव से बिलकुल मुक्त हिंदी थी। साधारण जनता की भाषा यही थी। ईसाइयों ने अपने धर्म का प्रचार कार्य लगातार जारी रखा। बाइबिल का अनुवाद विलियम कैरे ने किया। ये लोग निरंतर अपनी पुस्तकों को निकालते और वितरित करते। धर्म प्रचार के बाद इन लोगों ने शिक्षा अभियान शुरू किया। भारत की धर्म आधारित शिक्षा व्यवस्था की जगह आधुनिक शिक्षा पद्धति पर आधारित स्कूल-कॉलेज खोले गए। यह आधुनिक शिक्षा पद्धति अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली पर आधारित थी। इसमें मातृभाषा की जगह अंग्रेजी को शिक्षा का माध्यम बनाया गया। शिक्षण संस्थानों के खुलने से पाठ्य पुस्तकों की आवश्यकता हुई। इन पाठ्य पुस्तकों के निर्माण कार्य के साथ-साथ आधुनिक हिंदी गद्य निरंतर अपने विकसित स्वरूप को प्राप्त होता रहा।

ईसाई मत के प्रचार में ईसाई उपदेशक हिंदू धर्म के बाह्याडंबर पर निरंतर प्रहार कर रहे थे। इससे आधुनिक शिक्षा पद्धति के योग्यताधारी लोगों में अपने धर्म के प्रति अरुचि और अश्रद्धा उत्पन्न हो रही थी। हिंदू धर्म के मूल स्वरूप ब्रह्मज्ञान और वेदांत को पुनर्जीवित करने के उद्देश्य से राजराममोहन राय ने ब्रह्म समाज (1828ई.) की स्थापना की। उन्होंने वेदांत सूत्र के भाष्य का हिंदी अनुवाद कर प्रकाशित करवाया। 'बंगदूत' नामक संवाद पत्र निकाला। छापाखाना की व्यवस्था से सुविधा बढ़ी। कानपुर के पं. जुगलकिशोर ने 'उदंत मार्तंड' (1826ई.) समाचार पत्र निकाला। यह हिंदी का पहला समाचार पत्र है। हिंदू कॉलेज (1817ई.) की स्थापना अंग्रेजी शिक्षा के लिए की गई। उस समय शिक्षा देशी भाषा में नहीं दी जाती थी। शिक्षा के लिए संस्कृत या अरबी पर ध्यान जाता था। मैकाले ने अंग्रेजी शिक्षा का समर्थन किया और इन भाषाओं का विरोध किया। 7 मार्च, 1835 ई. को अंग्रेजी शिक्षा के प्रचार का प्रस्ताव पास हो गया। कार्यालय की भाषा फारसी ही रही। इससे सामान्य जनता की मुश्किल बढ़ी क्योंकि वे इससे अपरिचित थे। इसलिए 29 जुलाई, 1836ई. को यह घोषणा हुई कि कार्यालय के कामकाज की भाषा में

बोली हिंदी ही हो, अक्षर नागरी की जगह फारसी भी हो सकती है। यह व्यवस्था मुस्लिमों के प्रयत्न से एक वर्ष बाद ही बदल दी गई। कार्यालय की भाषा पुनः उर्दू हो गई। 'उर्दू भाषा' खड़ी बोली का अरबी-फारसीमय रूप था जो अदालतों में विशेष रूप से प्रयुक्त किया जाता था। अब देश की भाषा के रूप में इसका पठन-पाठन अनिवार्य कर दिया गया था। इससे नई शिक्षित पीढ़ी भाखा विमुख हो रही थी। धर्म भाव ने ही कुछ लोगों को इससे जोड़ रखा था। 1845ई. में राजा शिवप्रसाद ने 'बनारस अखबार' निकलवाया। इसकी भाषा उर्दू थी और अक्षर नागरी। इसके पाँच वर्ष बाद काशी से ही दूसरा पत्र 'सुधाकर' कई मित्रों के सहयोग से निकाला गया। इसकी भाषा हिंदी थी जो पहले से सुधरी हुई भी थी पर यह पत्र कुछ दिन चला नहीं। दो वर्ष बाद 1852ई. में आगरे के मुंशी सदासुखलाल के प्रबंध और संपादन में 'बुद्धिप्रकाश' पत्र निकला। यह कुछ वर्षों तक चला। इसकी भाषा परिष्कृत हिंदी थी। हिंदी-उर्दू भाषा विवाद में सर सैयद अहमद द्वारा हिंदी को दबाने की कोशिश का प्रत्युत्तर देने में राजा लक्ष्मण सिंह और शिवप्रसाद सितारे हिंद समर्थ रूप से डटे रहे। इनके प्रयत्नों के फलस्वरूप ही हिंदी शिक्षा चलती रही। हिंदी-उर्दू विवाद भारतेंदु युग तक चला। राजा लक्ष्मण सिंह ने अपने मित्रों के साथ हिंदी गद्य के विस्तार के लिए पाठ्य पुस्तक लिखने का काम किया। इन्होंने आगरे से 'प्रजा हितैषी' पत्र 1861ई. में निकाला और 1862ई. में 'अभिज्ञान शाकुंतलम' का अनुवाद किया। इसकी भाषा की सरलता से पुनः भाषिक चेतना सजग हुई। लखनऊ का 'अवध अखबार' उर्दू भाषा का पत्र था। इसमें हिंदी के लेखों को भी जगह मिलता था। 'लोकमित्र' ईसाई धर्म के प्रचार का पत्र था पर इसकी भाषा हिंदी थी। पंजाब के क्षेत्र में बाबू नवीनचंद्र हिंदी के उन्नयन के कार्य में लगे थे। उन्होंने 'ज्ञान प्रदायिनी' पत्रिका निकाला। इस प्रकार 1826ई. से 1867ई. के बीच प्रकाशित पत्र-पत्रिकाओं को हिंदी पत्रकारिता का प्रथम उत्थान कहा गया। हिंदी पत्रकारिता का दूसरा उत्थान भारतेंदु युग को माना गया। इसका समय 1868ई. से 1885ई. तक माना जाता है।

इस काल में हिंदी भाषा और साहित्य को समृद्ध करने के उद्देश्य से प्रकाशित होने वाली पत्र-पत्रिकाओं की सूची निम्नवत है- 'कविवचनसुधा' (1868ई.), 'हरिश्चंद्र चंद्रिका' (1873ई., भारतेंदु हरिश्चंद्र), 'आनंद कादंबिनी' (1881ई., बदरीनारायण चौधरी प्रेमघन), 'हिंदी प्रदीप' (1877ई., बालकृष्ण भट्ट), 'ब्राह्मण' (1883ई., प्रतापनारायण मिश्र), 'सदादर्श' (लाला श्रीनिवासदास), 'बिहार बंधु' (1871ई., केशवराम भट्ट), भारतेंदु (1883ई., गोस्वामी राधाचारण) इत्यादि। 1886ई. से 1900ई. की सीमा को पत्रकारिता का तृतीय उत्थान कहा गया। महावीर प्रसाद द्विवेदी द्वारा संपादित 'सरस्वती' पत्रिका इसी उत्थान में आती है। इस उत्थान की अन्य पत्र-पत्रिकाएँ हैं- नागरी नीरद, साहित्य सुधानिधि, विद्याविनोद, नागरी प्रचारिणी पत्रिका इत्यादि। हिंदी को जन-जन तक पहुँचाने में इन पत्र-पत्रिकाओं का योगदान रहा। स्वामी दयानंद ने आर्यसमाज (1875ई.) की स्थापना की। इनकी कृति 'सत्यार्थ प्रकाश' (1875ई.) हिंदी भाषा में है। वेदों का भाष्य भी इन्होंने संस्कृत के साथ हिंदी में भी लिखा। पं. श्रद्धाराम फिल्लौरी कृत 'भाग्यवती' सुप्रसिद्ध सामाजिक उपन्यास है।

बोध प्रश्न

- क्या अंग्रेजी शिक्षा पद्धति से 'भाखा' और 'भारतीयता' प्रभावित हो रही थी?

1.3.3 आधुनिक काल में हिंदी गद्य का विधागत विकास

अब तक हमने देखा कि हिंदी गद्य का एक ढाँचा खड़ा करने में हिंदी प्रेमियों ने सफलता पा ली थी। पत्रकारिता का इसमें बड़ा योगदान रहा। यह अभी मात्र ढाँचा था जिसे मूर्त स्वरूप में ढालने के लिए और तराशा जाना आवश्यक था। यह कार्य भारतेंदु युग में किया गया। भारतेंदु ने गद्य में प्रयुक्त होने वाली हिंदी भाषा का स्वरूप अपने गद्य लेखन से स्थिर किया। यह पुनर्जागरण काल था। इस युग में सामाजिक परिस्थितियों के अनुरूप वैचारिकता भी प्रभावित हो रही थी। नई पीढ़ी अब धार्मिक आक्रांताओं की पीढ़ी नहीं थी। वे देश-दुनिया की समझ रखने वाले आधुनिक इंसान थे। जिनकी बौद्धिक पिपासा को शांत करने में केवल कविता सक्षम नहीं थी। कविता अब भी संस्कार की सजगता का माध्यम थी। पर समाज में बदलाव और यथार्थ की समीक्षा से जुड़े वैचारिक लेखन के लिए सशक्त विधा के रूप में गद्य को ही चुना गया। आधुनिक हिंदी गद्य को विभिन्न दिशाओं में मोड़ने का श्रेय भी भारतेंदु हरिश्चंद्र को ही प्राप्त है। अतः इन्हें आधुनिक काल का प्रवर्तक मानना उचित है। भारतेंदु के समय में साहित्यिक गतिविधियों का केंद्र काशी था। उस समय इस युग की केंद्रीय विधा 'नाटक' थी। इसके साथ ही इस काल में हिंदी साहित्य की अन्य मुख्य गद्य विधाओं का भी उदय हुआ, जैसे- उपन्यास, निबंध, आलोचना इत्यादि। जीवनी और यात्रा वृत्तांत जैसी गौण विधाओं में भी रचनाएँ की गईं। साहित्येतर ज्ञान संबंधी विधाओं में भी गद्य लेखन हुआ, जैसे- राजनीति, समाजशास्त्र, विज्ञान, धर्म-दर्शन, चिकित्सा इत्यादि। साहित्यिक पुस्तकों का अनुवाद भी किया गया। भारतेंदु युग के बाद उत्तरोत्तर हिंदी गद्य की विधाओं का विकास होता गया।

बोध प्रश्न

- भारतेंदु के समय में साहित्यिक गतिविधियों का केंद्र क्या था?

नाटक

आधुनिक हिंदी गद्य विधाओं के रूप में सबसे पहले 'नाटक' विधा का अस्तित्व सामने आया। नाटक दृश्य काव्य है। इसमें दर्शक देखकर आनंद की प्राप्ति करते हैं। अतः मंचन के लिए उपयुक्त होना, इसकी अनिवार्यता है। साहित्य की सभी विधाओं में नाटक सबसे अधिक सामाजिक है। जब किसी नाटक को रंगमंच पर प्रस्तुत किया जाता है तब विभिन्न किरदारों को निभाने वाले विभिन्न लोग जो निहायत ही अलग परिवेशों से संबंधित रहते हैं, उस नाट्य-मंचन के दौरान उनमें एकता की चेतना दिखाई देती है। उनका उद्देश्य एक रहता है-'नाटक का सफल मंचन'। मानवों में इस एकत्व भाव की प्रेरणा ही भारतेंदु युग के पुनर्जागरण की भावभूमि है। आपसी सहयोग की भावना, एकत्व की अनुभूति और सामाजिक जागरण के उद्देश्य से नाट्य विधा का प्रवर्तन हुआ। भारतेंदु कहते हैं, 'इस महामंत्र का जप करो, जो हिंदुस्तान में रहे, चाहे किसी रंग, किसी जाति का क्यों न हो, वह हिंदू है।' भारतेंदु स्वयं नाट्य मंचन में भाग लेते थे।

उन्होंने संस्कृत, बँगला और अंग्रेजी भाषा के नाटकों का अनुवाद किया। उनके द्वारा रचित नाटक हैं- वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति, चंद्रावली नाटिका, विषस्य विषमौषधम, भारत दुर्दशा, नीलदेवी, अंधेर नगरी (1881ई.), प्रेम-जोगिनी, सती प्रताप। इनमें 'सती प्रताप' नाटक अधूरा रह गया था जिसे राधाकृष्ण दास ने पूरा किया। उनके द्वारा अनूदित नाटक हैं- विद्यासुंदर, पाखंड विडंबन, कर्पूर मंजरी, मुद्राराक्षस, भारत जननी इत्यादि। अपने नाटकों में भारतेंदु ने जीवन के सभी विषयों को समाविष्ट करने की चेष्टा की। वर्तमान विषयों पर केंद्रित उनका नाटक 'भारत दुर्दशा' है। इसमें मूल विषय समाज की दशा और दिशा जैसे गंभीर विषय को अत्यंत मनोरंजक शैली में लेखक ने प्रस्तुत किया है। इसके अतिरिक्त ऐतिहासिक विषयों के साथ प्रेम और पाखंड को भी उन्होंने अपने नाटकों में छुआ है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार 'नाटकों की रचना शैली में उन्होंने मध्यम मार्ग का अवलंबन किया। न तो बंगला के नाटकों की तरह प्राचीन भारतीय शैली को एकबारगी छोड़ वे अंग्रेजी नाटकों की नकल पर चले और न प्राचीन नाट्यशास्त्र की जटिलता में अपने को फंसाया।' बालकृष्ण भट्ट, लाला श्रीनिवासदास, बदरीनारायण चौधरी प्रेमघन ने भी इस विधा में अपना योगदान दिया। नाट्य विधा का विकास छायावाद युग में जयशंकर प्रसाद के नाटकों में देखने को मिला। इनकी नाट्य कृतियाँ हैं- राज्यश्री (1915ई.), अजातशत्रु (1922ई.), स्कंदगुप्त (1928ई.), चंद्रगुप्त मौर्य (1931ई.), ध्रुवस्वामिनी (1933ई.)। "हिंदी नाटक में प्रसाद के आने से गुणात्मक परिवर्तन होता है। सीधी-सपाट भाषा की तुलना में लाक्षणिक और अधिक अर्थ-संपन्न भाषा का प्रयोग होने लगता है, जिसे उन्होंने छायावादी कविता के तत्वावधान में विकसित किया। इसी के समानांतर देवता-राक्षस ध्रुवों से हट कर अधिक मानवीय चरित्र बनते हैं जिनमें अच्छाई और बुराई तत्व एक साथ हैं, और इसलिए उनमें संघर्ष और अंतर्द्वंद्व बराबर चलता रहता है। फिर अब तक के मनोरंजन, उपदेश या लालित्य भाव की तुलना में... प्रसाद के नाटक बराबर एक बौद्धिक विचारधारा का आधार लेते हैं।" प्रसाद के सानिध्य में नाट्य विधा ने परिपक्वता प्राप्त की। प्रसाद के बाद लक्ष्मीनारायण लाल और मोहन राकेश का इस क्षेत्र में उल्लेखनीय योगदान रहा। इनके प्रसिद्ध नाटक क्रमशः हैं- 'मादा कैक्टस' (1959ई.), 'आषाढ़ का एक दिन' (1958ई.)। 'आषाढ़ का एक दिन' के अतिरिक्त मोहन राकेश के दो और नाटक हैं- 'लहरों के राजहंस' और 'आधे अधूरे'। रामस्वरूप चतुर्वेदी के अनुसार लाल का नाट्य लेखन वैविध्यपूर्ण रहा है... लाल के एक दर्जन से अधिक पूर्णकालिक नाटक हैं जिनमें कई प्रकार के कथानक और नाट्य विधान हैं। वे शब्द के सच्चे अर्थ में नाटक हैं, मंच पर बार-बार उनका अभिनय हुआ है। रंगमंच के साथ क्रिया-प्रतिक्रिया में लक्ष्मीनारायण लाल ने बराबर सीखा है और नाट्य लेखन में वे अपने ढंग से बराबर प्रयोग करते रहे हैं।

'मादा कैक्टस' लक्ष्मीनारायण लाल का बहुचर्चित और बहुअभिनीत नाटक है। प्रकाशन के पूर्व यह अभिनीत हुआ है और प्रथम तथा द्वितीय संस्करण में नाट्य अनुभव का लाभ उठाते हुए रचनाकार ने उसमें आवश्यक परिवर्तन किए हैं। नाटक में कला और प्रणय के अंतर्विरोध की समस्या अंकित हुई है। कलाकार का प्रेम सामान्य स्नेह-संबंधों से अलग है क्योंकि उसका प्रधान दायित्व तो अपने रचनात्मक व्यक्तित्व तथा अपनी कला के प्रति है। एक ओर प्रणय और दूसरी

ओर अपने व्यक्तित्व तथा अपनी कला के बीच चित्रकार अरविंद किस प्रकार से अपनी पत्नी सुजाता और मित्र तथा शिष्य आनंदा (दूसरे संस्करण में मीनाक्षी) के जीवन को निस्सार तथा निरर्थक बना देता है, इसका सूक्ष्म अंकन 'मादा कैक्टस' में हुआ है।

रंग-विधान की दृष्टि से 'मादा कैक्टस' आधुनिक नाट्य पद्धतियों के अनुकूल है। नीलाम की डुगडुगी के साथ बेबी का मंच पर प्रवेश नाटक की प्रतीक योजना को एक गति देता है, जो अंत तक अवरुद्ध रहती है। अंत में मीनाक्षी के फेफड़ों के एक्स-रे चित्र को जिस ढंग से प्रस्तुत किया गया है वह काफी प्रभावपूर्ण है। पहले अंक में अनाथालय के बच्चों का प्रवेश अरविंद के व्यक्तित्व पर टिप्पणी करता है। अधुनातन नाट्य विधान में घटनाओं के स्थान पर संवेदन को अधिक महत्व दिया गया है, पर कुछ नाटक ऐसे हैं जो घटनापूर्ण होते हुए भी प्रकृति में नए हैं, जैसे जॉन आस्बर्न का 'लुक बैक इन एंगर'। लाल का 'मादा कैक्टस' कुछ इसी प्रकार का है।

रंगकर्मियों द्वारा नाट्य-मंचन से नाटक विधा को नवीन स्फूर्ति मिली और इसका स्वरूप अधिक निखरा। प्रसाद के नाटकों को भी इस समय के अंतर्गत नए स्वरूप में मंचित किया गया जिसे लोगों ने पसंद किया और सराहा। जिन आयोजकों ने नाट्य मंचन को प्रोत्साहित करने में अपना योगदान दिया उनमें कुछ उल्लेखनीय नाम इस प्रकार हैं- श्यामानंद जालान, ब.व.कारंत, प्रतिभा अग्रवाल, सत्यदेव दुबे, लक्ष्मीनारायण लाल, सत्यव्रत सिन्हा और हबीव तनवीर इत्यादि। नाट्य मंचन को अनुकूल वातावरण मिलने का श्रेय नेमिचंद्र जैन एवं सुरेश अवस्थी के द्वारा की गई नाट्य आलोचना को जाता है। इस क्षेत्र में 'नटरंग' पत्रिका का योगदान अतुलनीय रहा। इस पत्रिका का संपादन नेमिचंद्र जैन करते थे। प्रसादोत्तर नाटक में गुणात्मक परिवर्तन 'भुवनेश्वर' लाते हैं। इनका नाट्य संकलन 'कारवां' बहुत प्रसिद्ध रहा। नाट्य विधा में भुवनेश्वर ने जो प्रयोग किए उन्हें 'विपिन कुमार अग्रवाल' ने आगे बढ़ाया है। समकालीन मध्य वर्ग के जीवन पर केंद्रित इनके तीन नाट्य संकलन हैं- 'तीन अपाहिज', 'लोटन' और 'खोए हुए आदमी की खोज'। रंग कर्म हेतु उपयुक्तता की दृष्टि से सुरेंद्र वर्मा भी ख्यातिलब्ध नाटककार रहे हैं। इनके प्रसिद्ध नाटक हैं- द्रौपदी, सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक इत्यादि। सभी नाटक रंगमंच पर प्रदर्शित नहीं किए जा सकते। एकांकी जो पाश्चात्य की एक पूर्व प्रचलित विधा है उसे रंगमंच पर प्रदर्शन के उद्देश्य से हिंदी साहित्य का अंग बना लिया गया। एकांकी शब्द से ही स्पष्ट है 'एक अंक का'। इसमें मूल कथा और संवेदना भी एक ही रहती है। रामकुमार वर्मा कृत 'बादल की मृत्यु' हिंदी का पहला एकांकी है। संदेश प्रसार और प्रदर्शन की दृष्टि से ही नुक्कड़ नाटक खेले जाते हैं। रेडियो नाटक की रचना भी बहुत साहित्यकारों ने किया है। साहित्य में रेडियो नाटक के कई रूप प्रचलित हैं।

बोध प्रश्न

- लक्ष्मीनारायण लाल के नाटक का नाम बताइए।

उपन्यास

'हिंदी उपन्यास कोश' के संपादक डॉ. गोपाल राय के अनुसार पंडित गौरीदत्त द्वारा लिखित 'देवरानी जेठानी की कहानी' हिंदी का प्रथम मौलिक उपन्यास है जिसका प्रकाशन 1870 में हुआ। कुछ आलोचक श्रद्धाराम फुल्लौरी के 1877 में रचित और 1887 में प्रकाशित 'भाग्यवती' को यह स्थान देते हैं। जबकि आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने 1882 में प्रकाशित लाला श्रीनिवास दास के 'परीक्षा गुरु' को 'अंग्रेजी ढंग का पहला उपन्यास' कहा है। इन उपन्यासों से ही हिंदी साहित्य में सामाजिक उपन्यासों की परंपरा का प्रवर्तन हुआ। उपन्यास विधा का उदय भारतेंदु युग में हुआ। इस युग के उपन्यासों का स्वरूप ऐतिहासिक, तिलस्मी, जासूसी, प्रेमपरक और सामाजिक रहा है। उपन्यासकार किशोरीलाल गोस्वामी ने मानवीय प्रेम के विविध रूपों की व्यंजना अपने उपन्यासों में किया है। इस युग में बंगला, अंग्रेजी, मराठी और उर्दू भाषा के मौलिक उपन्यासों का अनुवाद भी किया गया। द्विवेदी युग में पहले की औपन्यासिक प्रवृत्ति का विकास हुआ। इस युग में सामाजिक उपन्यास कई लेखक लिख रहे थे। यह लेखन समाज सुधार की भावना से प्रेरित था। प्रेमचंद के आरंभिक उपन्यास (प्रेमा, रूठी रानी : 1907ई.), सेवासदन : 1918ई.) इसी युग में प्रकाशित हुए। उपन्यास जगत को प्रेमचंद ने एक नई दिशा दी। अपने उपन्यासों के माध्यम से उन्होंने विशेष रूप से जीवन की अंदरूनी समस्याओं और चरित्रों को उभारा। इस दृष्टि से उनके अंतिम उपन्यास 'गोदान' (1936ई.) को आज भी कृषक जीवन के महाकाव्य के नाम से जाना जाता है। यह वर्णनात्मक प्रविधि से लिखा गया उपन्यास है।

बोध प्रश्न

- हिंदी का पहला मौलिक उपन्यास कौन सा है?

हिंदी साहित्य में इसके बाद फणीश्वरनाथ रेणु का उपन्यास 'मैला आँचल' (1954ई.) मील का पत्थर साबित हुआ। यह आंचलिक उपन्यासों की श्रेणी में आता है। इसमें स्थूल वर्णन की जगह प्रधान रूप से विभिन्न विरोधी तत्वों का समावेश किया गया है। यह उपन्यास लेखन की अधुनातन विधि है। इसकी सफलता कथा प्रवाह में मार्मिक क्षणों की उत्पादकता में निहित है।

रामस्वरूप चतुर्वेदी के अनुसार 'ग्रामीण जीवन में व्याप्त हास्य और करुणा को 'मैला आँचल' में एक साथ उकेरा गया है, बालदेव और बामनदास के चरित्रों में। वैसे ही क्रूरता और सहानुभूति की मनोवृत्तियाँ संश्लिष्ट हुई हैं। सन 1942 के स्वतंत्रता-आंदोलन का उदात्त त्याग और विद्रूप भी इसी तरह एक-दूसरे से लगे लिपटे हैं, कहीं कुछ भी अकेला और निरपेक्ष नहीं है। इतनी सारी राजनैतिक उथल-पुथल के बीच डॉक्टर और कमला की कोमल व्यक्तिगत प्रणय-गाथा है। गाँव में गरीबी, रोग और रूढ़ियाँ हैं, पर इन सबके साथ और बावजूद, एक नए जीवन की आशा पल रही है। आँचल मैला भले हो गया हो पर उसकी ममता में कमी नहीं है। उपन्यास का यह नया विधान उसके भाषा प्रयोग से जुड़ा हुआ है।... 'मैला आँचल' की भाषा भी सीधे

इतिवृत्तपरक न होकर अपने आप में सर्जनात्मक है। यहाँ वर्णन और बिंबों की भाषा में अनुपात ठीक से सधा है, इसलिए ब्यौरों का चित्रण जितना कुशल है संवेदन का अंकन उतना ही सूक्ष्म।' मैला आँचल की यह लेखन शैली गोदान की शैली से एकदम अलग है। कथा साहित्य के अंतर्गत कहानी और उपन्यास विधा के अध्ययन के क्रम में युगों का विभाजन प्रेमचंद को केंद्र में रखकर किया गया है।

प्रेमचंदोत्तर उपन्यासकारों में 'जैनेंद्र और अज्ञेय फ्रायड के मनोविज्ञान से प्रभावित हैं, तो इलाचंद्र जोशी उसके मनोविश्लेषण से।' इनमें 'अपनी विशिष्ट विचारधारा और सर्जनात्मक शक्ति के कारण यशपाल ने अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व बना लिया है। 'गोदान' में प्रेमचंद ने आदर्शवाद से बहुत कुछ मुक्त होकर जिस यथार्थवादी दृष्टिकोण को ग्रहण किया था, उसकी परंपरा को बढ़ाने का श्रेय यशपाल को है।'(नगेंद्र)। यशपाल के ऐतिहासिक उपन्यास अमिता और दिव्या हैं। इसके अतिरिक्त उनके सामाजिक यथार्थवादी उपन्यास हैं - दादा कामरेड, देशद्रोही, झूठा सच इत्यादि। भगवतीचरण वर्मा और रामेश्वरशुक्ल अंचल ने इस परंपरा को बढ़ाया है। बाद के उपन्यासकारों में अमृतलाल नागर अपने उपन्यास 'बूंद और समुद्र', 'अमृत और विष', 'मानस का हंस' के लिए विशेष रूप से जाने जाते हैं। अब उपन्यास का एक बृहत आधुनिक क्षेत्र विस्तृत हो चुका था। इसमें ऐतिहासिक, मनोवैज्ञानिक, सामाजिक चेतना संपन्न, आधुनिकता बोध वाले प्रयोगशील उपन्यास लिखे जाने लगे। आधुनिकता बोध से युक्त उपन्यासों में 'लाल टीन की छत' (निर्मल वर्मा), 'आपका बंटी' (मन्नू भंडारी) सहित और भी कई उपन्यास हैं। उपन्यास विधा को समृद्ध करने में उल्लेखनीय योगदान देने वाले अन्य रचनाकार हैं- धर्मवीर भारती (सूरज का सातवाँ घोड़ा), श्रीलाल शुक्ल (राग दरबारी), शैलेश मटियानी, प्रभाकर माचवे, उपेंद्रनाथ अश्क, देवराज, रघुवंश, राही मासूम रज़ा, कृष्णा सोबती, रांगेय राघव, कमलेश्वर, उषा प्रियंवदा, ममता कालिया, नरेंद्र कोहली, चित्रा मुद्गल इत्यादि।

बोध प्रश्न

- आधुनिकता बोध से युक्त उपन्यासों के नाम बताइए।

कहानी

द्विवेदी युग की 'सरस्वती' (1900ई.) पत्रिका के माध्यम से आधुनिक कलात्मक कहानियों का अस्तित्व हिंदी साहित्य के पटल पर उभरा। 1912-18ई. के बीच यह विधा प्रतिष्ठित हो गई। इंदुमती, प्लेग की चुड़ैल, ग्यारह वर्ष का समय, दुलाईवाली- हिंदी की आरंभिक कहानियाँ हैं। वृंदावनलाल वर्मा ऐतिहासिक कहानियों के जनक माने जाते हैं। राधिकारमण सिंह की 'कानों में कंगना' (1913) और गुलेरी की 'उसने कहा था' (1915) महत्वपूर्ण कहानियाँ हैं। प्रेमचंद की सौत, पाँच परमेश्वर आदि कहानियाँ भी 'सरस्वती' पत्रिका में ही प्रकाशित हुई। अपनी कहानियों के माध्यम से प्रेमचंद जीवन का आदर्श प्रतिष्ठित कर रहे थे और प्रसाद मनुष्य के आंतरिक भाव-द्वंद्व को व्यक्त कर रहे थे। कहानी के उद्भव और उसकी विभिन्न धाराओं के विकास का श्रेय इसी युग को जाता है।

प्रेमचंद और प्रसाद छायावाद युग में भी छाए रहे। प्रेमचंद के बाद जैनेंद्र ने कहानी को नयापन दिया। यह नयापन था घटनाओं और चरित्रों का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण। 'पाजेब' उनकी बहुप्रचलित कहानी है। उन्होंने मनोवैज्ञानिक कहानियाँ लिखी। अज्ञेय, विष्णु प्रभाकर और सुभद्राकुमारी चौहान की कहानियाँ भी उल्लेखनीय हैं। छायावादोत्तर काल में कहानी के विषय, कथ्य-शिल्प और गठन से जुड़े कई आंदोलन चले और कहानी का स्वरूप उसके अनुसार बदलता रहा। इन आंदोलनों में सबसे पहले कहानी विधा के स्वरूप में परिवर्तन लाने का श्रेय 'नई कहानी' (1950 - 60) को जाता है। इसके प्रवर्तक माने गए राजेंद्र यादव, कमलेश्वर और मोहन राकेश।

कहानी के शिल्प में अन्य गद्य विधाओं का समावेश नई कहानी के दौर में ही हुआ। 1960 के बाद नई कहानी की प्रतिक्रिया में 'अकहानी' का जन्म हुआ। अकहानी को साठोत्तरी कहानी के नाम से भी जाना जाता है। इसके पुरस्कर्ताओं में दूधनाथ सिंह, गंगाप्रसाद विमल भी है। इसमें अनुभव संसार का विरोध किया गया और जीवन के सच को हू-ब-हू कागज पर तटस्थ रूप से उकेरने की पहल की गई। अपने स्वरूप में यह निबंध, संस्मरण, डायरी इत्यादि के निकट चला गया। इन कहानियों में विचार गौण था और शिल्प मुख्य। यह कथावस्तु के स्तर की क्षति थी। इस क्षतिपूर्ति के लिए सचेतन कहानी (1964,महीप सिंह) का अस्तित्व सामने आया। इससे जुड़े लेखकों का बल कहानी के कथ्य पर अधिक रहा। इससे नई कहानी के स्वरूप को विस्तार मिला। समानांतर कहानी (1972-78, कमलेश्वर) में 'आम आदमी' कहानी का केंद्र बना। इसी में कहानी की सहजता और स्वाभाविकता बनाए रखने के लिए सहज कहानी (अमृतराय, 1968) की वैचारिक परिकल्पना सामने आई। इसके अतिरिक्त सक्रिय कहानी (राकेश वत्स, 1979) और जनवादी कहानी (1982, मार्क्सवाद) इत्यादि कहानी आंदोलन भी उभरे। कथ्य और शिल्प के स्तर पर इन आंदोलनों से प्रभावित कहानियों में थोड़े बदलाव कुछ समय के लिए देखने को मिले।

'1979 की हिंदी कहानियाँ : एक कथा-वर्ष से गुजरते हुए' शीर्षक अपने आलेख में महीप सिंह ने वर्ष भर की कहानियों का केंद्रीय सूत्र ढूँढने को जोखिम भरा और श्रमसाध्य कार्य कहा है। महीप सिंह के शब्दों में, "उस वर्ष में प्रकाशित अनेक कहानियों के माध्यम से मैंने यह पहचानने की कोशिश की कि हमारी कहानियों में अधिकार के दुरुपयोग, धन और सेक्स की नंगी भूख, सभी स्तरों पर लगभग सभी वर्गों द्वारा शोषक और शोषित स्थितियों को ग्रहण करते चले जाने की मानसिकता और हफरा-तफरा से भरी ऐसी अवसरवादिता जिसे सैद्धांतिकता का निर्लज्ज जामा पहनाया जाता है, को किस प्रकार रेखांकित किया गया है।"

समकालीन कहानी में विविध विमर्श आधारित कहानियाँ देखने को मिलती हैं, जैसे - स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, किन्नर विमर्श, पर्यावरण, वृद्धावस्था विमर्श इत्यादि। कहानी संसार में स्त्री लेखिकाओं में कृष्णा सोबती, मृदुला गर्ग, उषा प्रियंवदा, सूर्यबाला, ममता कालिया इत्यादि उल्लेखनीय नाम हैं। इस अवधि में एक नई विधा 'लघुकथा' ने जन्म लिया है। नाम के अनुरूप

अपने कलेवर में छोटी पर प्रभावोत्पादक प्रकृति की ये लघुकथाएँ बहुत कम शब्दों में रची जाती हैं। किसी एक ही संवेदना को प्रकट करती हैं।

बोध प्रश्न

- समानांतर कहानी के केंद्र में कौन हैं?

निबंध

निबंध को आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने गद्य की कसौटी कहा है। यह ससीम व्यक्तित्व से असीम विचार तक पहुँचने की यात्रा है। समाज और समय के परिप्रेक्ष्य में जीवन से संबंधित चिंतन को अभिव्यक्त करने के लिए जिस गद्य विधा का प्रयोग किया जाता है उसे निबंध कहते हैं। इस विधा का आरंभ भारतेंदु युग में हुआ। साहित्य के साथ पत्रकारिता का भी प्रादुर्भाव उस युग में हो रहा था। ब्राह्मण, हिंदी प्रदीप, हरिश्चंद्र मैगजीन इत्यादि पत्र-पत्रिकाओं ने निबंध विधा को समृद्ध किया। इस समय राजनीति, समाज-सुधार, धर्म-अध्यात्म, अतीत का गौरव, आर्थिक दुर्दशा एवं प्रेरणास्पद चरित्रों को निबंध के विषय के रूप में चुना जाता था। बालकृष्ण भट्ट और प्रतापनारायण मिश्र ने इस विधा में उल्लेखनीय योगदान दिया जिसे देखते हुए रामचंद्र शुक्ल ने इन्हें 'स्टील और एडीसन' कहा। इस युग में विचारात्मक, भावात्मक, वर्णनात्मक, विवरणात्मक, कथात्मक, इतिवृत्तात्मक, शोधात्मक इत्यादि शैलियों में निबंध लेखन के तहत गद्य विधा की अभिव्यक्ति हुई। द्विवेदी युग में ही रामचंद्र शुक्ल के आरंभिक निबंध प्रकाशित हुए थे। इस युग के प्रमुख निबंधकार हैं - माधव प्रसाद मिश्र (माधवमिश्र निबंधमाला), सरदार पूर्ण सिंह (आचरण की सभ्यता, सच्ची वीरता, मजदूरी और प्रेम, कन्यादान), चंद्रधरशर्मा गुलेरी (कछुवा धरम, मारेसि मोहिं कुठाव) इत्यादि। छायावाद युग में निबंध विधा के अंतर्गत विषय के स्थान पर व्यक्ति और लालित्य को प्रधान माना गया।

रामचंद्र शुक्ल के वैचारिक और समीक्षात्मक निबंधों में इस विधा का चरम उत्कर्ष देखा जा सकता है। उनके निबंध चिंतामणि में संकलित हैं। उनके इन मनोविकार संबंधी निबंधों को रामस्वरूप चतुर्वेदी ने 'मानव स्वभाव का संश्लिष्ट चित्रण' कहा है।

शुक्ल युग के प्रमुख निबंधकार हैं- निराला, माखनलाल चतुर्वेदी, राहुल सांकृत्यायन, बाबू गुलाबराय इत्यादि। शुक्लोत्तर युग में वैचारिक निबंध की परंपरा बनी रही। इस युग में निबंध की ललित शैली और उसमें व्यंग्य का पुट देखने को मिला। निबंध में लालित्य का दर्शन आचार्य शुक्ल के निबंध में भी होता है।

रामविलास शर्मा, जैनेंद्र और नगेंद्र ने वैचारिक निबंध की परंपरा को आगे बढ़ाया। ललित निबंध में विचारों और भावों की प्रस्तुति में सरलता और सहजता का ध्यान रखा जाता है। इसकी वाक्य रचना लघु और भाषा सरस होती है। आत्मीयता, अनुभूति और कल्पना का सुंदर संयोजन ललित निबंध को उबाऊ होने से बचा लेते हैं।

विद्यानिवास मिश्र (मेरे राम का मुकुट भींज रहा है), हजारीप्रसाद द्विवेदी (अशोक के फूल, विचार और वितर्क), कुबेरनाथ राय (प्रिया नीलकंठी, रस आखेटक, विषाद योग) इत्यादि ललित निबंधकार हैं।

'ललित निबंध के क्षेत्र में अन्य प्रयोगकर्ता कृष्णबिहारी मिश्र तथा विवेकी राय हैं। 'बेहया का जंगल' कृष्णबिहारी मिश्र का संकलन है। कलकत्ता जैसे महानगर में रहकर अपने ग्रामीण अंचल की याद और उस अंचल के जीवन-क्रम को बेहतर बनाने की चिंता इन निबंधों के मूल में है। बेहया घास फैलती जाती है और ग्रामीण क्षेत्रों की मिट्टी में उर्वरा शक्ति को दिन-दिन कम करती जाती है, खेती-किसानी और अपने गाँव से जुड़े लेखक के मन में यह पीड़ा का समुचित कारण है। यह बेहया घास प्रतीकार्थ में विदेशी आरोपित संस्कृति है, जिसे फैशन कहना अधिक उपयुक्त होगा, जो जन-सामान्य के जीवन को अंदर से आधारहीन बनाती जा रही है। दोनों अर्थों में बेहया का प्रसार घातक है।... विष्णुकांत शास्त्री के निबंध ('कुछ चंदन की कुछ कपूर की') आलोचना तथा ललित निबंध के संधि-बिंदु पर रचे गए हैं। प्रभाकर माचवे अपेक्षया नए विषयों में रुचि लेते हैं। उनके संकलन 'खरगोश के सींग' में विनोद से आगे व्यंग्य की तिक्तता है।'

निबंध के माध्यम से व्यंग्य का भी अस्तित्व बना हुआ है। गद्य के माध्यम से इसकी शुरुआत भारतेंदु युग में हुई थी। इसके विकास की गति छिटपुट रही। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद हरिशंकर परसाई ने इसे एक स्वतंत्र विधा के रूप में प्रतिष्ठित किया। इस शैली के रचनाकार हैं- प्रभाकर माचवे, गोपाल प्रसाद व्यास, नामवर सिंह इत्यादि। समसामयिक विषयों पर हास्य-विनोद मिश्रित तीखी टिप्पणी इस विधा के लेखन की विशिष्टता है। समाज की अनैतिकताओं और अराजकताओं पर शाब्दिक लगाम और हल्की छींटाकशी के रूप में इसे देखा जा सकता है। इसका उद्देश्य विकृतियों की पहचान कर उसे उजागर करना है।

बोध प्रश्न

- रामचंद्र शुक्ल ने गद्य की कसौटी किसे माना है?

1.4 पाठ सार

अंग्रेजों द्वारा हिंदी गद्य लेखन की प्रवृत्ति में विस्तार से पूर्व ही इंशा कृत 'रानी केतकी की कहानी' और मुंशी सदासुखलाल की ज्ञानोपदेश वाली पुस्तक लिखी जा चुकी थी। अंग्रेजों के आश्रय से पूर्व ही जब मुगलों के आक्रमणों से दिल्ली और आस-पास का जन-जीवन अस्त-व्यस्त हो रहा था। यहाँ के लोग देश के अनेक भागों में आश्रय और जीविका की तलाश में गए। उनके साथ उनकी खड़ी बोली भी गई। धीरे-धीरे यह शिष्ट लोगों के बोल-चाल की भाषा बनी। तभी से इस भाषा में गद्य लेखन की प्रवृत्ति भी विकसित हुई। इससे पहले तक साहित्य का स्वरूप पद्यमय ही था।

हिंदी की काव्य-भाषा ब्रजभाषा थी और उर्दू की काव्य-भाषा अरबी-फारसी मिश्रित खड़ी बोली। इन उर्दू कवियों की भाषा धीरे-धीरे हिंदी कवियों को लुभा रही थी। खड़ी बोली

का एक रूप दरबारी उर्दू कवि गढ़ रहे थे और अपने स्वाभाविक रूप में खड़ी बोली हिंदू व्यापारियों के साथ अपना विकास कर रही थी।

आधुनिक हिंदी गद्य के विकास में 'ईसाई धर्म प्रचार' और 'अंग्रेजी शिक्षा पद्धति' का भी अच्छा योगदान रहा। पुस्तकों के मुद्रण के लिए छापेखानों की व्यवस्था की गई। फोर्ट विलियम कॉलेज और हिंदू कॉलेज इसी का एक भाग है। प्रो. गिलक्राइस्ट ने पाठ्य-पुस्तक लेखन हेतु हिंदी गद्य का चुनाव किया। उनकी इस परियोजना से देश के हिंदी प्रेमी जुड़े। इनमें सदल मिश्र और लल्लूलाल का नाम उल्लेखनीय है। मुंशी सदासुखलाल और इंशाअल्ला खाँ इस परियोजना का हिस्सा नहीं थे पर हिंदी गद्य लेखन की ओर प्रवृत्त थे।

ब्रह्म समाज, आर्य समाज, प्रार्थना समाज (1867ई.) और तदीय समाज ने भी जनजागरण की दृष्टि से इस क्षेत्र में अनुवाद और मौलिक लेखन जारी रखा। व्यक्तियों और संस्थाओं के सहयोग से कई जगह छापेखाने खोले गए। बंगदूत, उदन्त मार्तंड, बुद्धिप्रकाश, ज्ञानप्रदायिनी जैसे पत्र-पत्रिकाओं से गद्य की भाषा का स्वरूप स्थिर करने में मदद मिली।

राजा लक्ष्मण सिंह और शिवप्रसाद सितारे हिंद हिंदी-उर्दू विवाद के समय हिंदी का पक्ष मजबूती से थामे रहे और सृजन करते रहे। गद्य की विधा का स्वरूप निर्धारण और विकास भारतेंदु युग से आरंभ हुआ। भारतेंदु की लेखन शैली साहित्यिक हिंदी थी जिसमें न उर्दू के प्रति भावनात्मक झुकाव था और ना ही संस्कृत के प्रति। विषयानुरूप सधी हुई, इनके द्वारा व्यवहृत हिंदी भाषा का सभी ने अनुकरण किया। साहित्य के क्षेत्र में नाटक, उपन्यास, कहानी, निबंध, आलोचना, जीवनी और यात्रावृत्तांत का उदय इसी युग में हुआ।

1.5 पाठ की उपलब्धियाँ

आधुनिक हिंदी गद्य के उद्भव और विकास से संबंधित इस इकाई के अध्ययन से निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त हुए हैं -

1. मुंशी सदासुखलाल सबसे पहले गद्य लेखन की ओर उन्मुख हुए, इसलिए इन्हें आधुनिक हिंदी गद्य का प्रवर्तक माना जाता है।
2. आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने आधुनिक काल को गद्यकाल कहा।
3. अंग्रेजों के भारत आने से पहले भारत में हिंदी गद्य पर काम हो रहा था।
4. अंग्रेजों द्वारा अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली के कार्यान्वयन हेतु तदनुरूप पाठ्य पुस्तकों के निर्माण कार्य से हिंदी गद्य का अभूतपूर्व विकास हुआ।
5. मुंशी सदासुखलाल और लल्लूलाल का हिंदी गद्य उर्दू के प्रभाव से पूरी तरह मुक्त था।
6. भारतेंदु युग में गद्य साहित्य की विभिन्न आधुनिक विधाओं का उदय हुआ।
7. हिंदी गद्य के विकास में पत्रकारिता की भूमिका अविस्मरणीय है।

1.6 शब्द संपदा

1. क्रमिक = सिलसिलेवार
2. तदनुरूप = उसके अनुसार
3. प्रयुक्त = प्रयोग किया गया
4. बहिष्कृत = निकाल दिया जाना
5. लुप्त = अदृश्य हो जाना

1.7 परीक्षार्थ प्रश्न

खंड (अ)

दीर्घ श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 500 शब्दों में दीजिए।

1. आधुनिक हिंदी गद्य के उद्भव की पृष्ठभूमि पर प्रकाश डालिए।
2. आधुनिक हिंदी गद्य के विकास में किन प्रमुख व्यक्तियों का योगदान उल्लेखनीय है? चर्चा कीजिए।
3. काव्य-भाषा के समृद्ध साहित्य के रहते हुए, गद्य विधा की आवश्यकता क्यों महसूस हुई? स्पष्ट कीजिए।
4. आधुनिक हिंदी गद्य की प्रारंभिक विकसित विधाओं पर प्रकाश डालिए।

खंड (ब)

लघु श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 200 शब्दों में दीजिए।

1. आधुनिक हिंदी गद्य के विकास में पत्र-पत्रिकाओं के योगदान पर संक्षिप्त चर्चा कीजिए।
2. आधुनिक हिंदी गद्य विधाओं के स्वरूप विकास पर चर्चा कीजिए।
3. नाटक और एकांकी पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।
4. उपन्यास, कहानी साहित्य पर टिप्पणी लिखिए।
5. निबंध साहित्य पर टिप्पणी लिखिए।

खंड (स)

I. सही विकल्प चुनिए -

1. 'भाषा योगवशिष्ठ' के रचयिता कौन हैं? ( )

   (अ) रामप्रसाद निरंजनी (आ) अकबर (इ) गंग (ई) लल्लूलाल

2. हिंदी की प्रथम प्रौढ़ रचना कौन है? ( )

(अ) चंद छंद बरनन की महिमा (आ)भाषा योगवशिष्ठ (इ) अ, आ (ई) कोई नहीं

3. अंग्रेजी शिक्षा पद्धति का समर्थन किस अंग्रेज़ अधिकारी ने किया? ( )

(अ) भारतेंदु (आ) मेकाले (इ) जॉन गिलक्राइस्ट (ई) लल्लूलाल

II. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए -

1. बाइबिल का अनुवाद ..... ने किया।
2. हिंदी का पहला समाचार पत्र ..... है।
3. हिंदी निबंध के स्टील और एडीसन ..... और ..... हैं।
4. भाग्यवती उपन्यास के रचनाकार ..... हैं।

III. सुमेल कीजिए -

1. हिंदू कॉलेज	(अ) 1800
2. फोर्ट विलियम कॉलेज	(आ) महावीर प्रसाद द्विवेदी
3. ब्रह्म समाज	(इ) 1817
4. सरस्वती	(ई) राजा राममोहन राय

1.8 पठनीय पुस्तकें

1. हिंदी साहित्य का इतिहास : आचार्य रामचंद्र शुक्ल
2. हिंदी साहित्य का इतिहास : सं. नगेंद्र
3. हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास : रामस्वरूप चतुर्वेदी
4. हिंदी साहित्य का संक्षिप्त इतिहास : आचार्य नंददुलारे वाजपेयी

इकाई 2 : आधुनिक हिंदी गद्य की विधाएँ

रूपरेखा

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 मूल पाठ : आधुनिक हिंदी गद्य की विधाएँ
2.3.1 जीवनी और आत्मकथा
2.3.2 रेखाचित्र और संस्मरण
2.3.3 यात्रा वृत्तांत और रिपोर्ताज
2.3.4 पत्र, डायरी और साक्षात्कार
2.3.5 आलोचना
2.4 पाठ सार
2.5 पाठ की उपलब्धियाँ
2.6 शब्द संपदा
2.7 परीक्षार्थ प्रश्न
2.8 पठनीय पुस्तकें

2.1 प्रस्तावना

आधुनिक हिंदी गद्य की विधाओं को सामान्यतः 'कथा साहित्य' और 'कथेतर साहित्य' में विभाजित किया जाता है। कथा साहित्य के अंतर्गत नाटक, उपन्यास और कहानी एवं उनसे निःसृत विधाएँ आती हैं। शेष कथेतर गद्य विधाएँ हैं। जब इनको मुख्य और गौण विधाओं में वर्गीकृत किया जाता है तब कथा साहित्य, निबंध और आलोचना को मुख्य विधाओं के अंतर्गत रखा जाता है तथा अन्य विधाओं की पहचान गौण विधा के रूप में की जाती है। इन गौण विधाओं को 'अकाल्पनिक गद्य' भी कहा जाता है। "रेखाचित्र, संस्मरण, आत्मकथा, जीवनी, रिपोर्ताज आदि में कुछ विधाएँ पुरानी हैं, कुछ नई, किंतु उनके बीच की विभाजक रेखाएँ बहुत क्षीण होने के कारण वे एक-दूसरे से प्रभाव ग्रहण करती हैं।" (महादेवी वर्मा)। कथा साहित्य के साथ निबंध हिंदी साहित्य की आरंभिक गद्य विधा है। आलोचना भी साहित्य के समानांतर विकसित हुई है। इन अकाल्पनिक गद्य विधाओं का आधार निबंध साहित्य है।

2.2 उद्देश्य

प्रिय छात्रो! इस इकाई में आप आधुनिक हिंदी गद्य की विधाओं का अध्ययन करेंगे। इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप-

- आधुनिक गद्य विधाओं के विभिन्न प्रकारों से परिचित हो सकेंगे।
- आधुनिक गद्य विधाओं के स्वरूप से परिचित हो सकेंगे।
- आधुनिक गद्य विधाओं की उत्पत्ति और विकास को समझ सकेंगे।

- आधुनिक गद्य विधाओं की विशिष्टता एवं सीमाओं से परिचित हो सकेंगे।

2.3 मूल पाठ : आधुनिक हिंदी गद्य की विधाएँ

2.3.1 जीवनी और आत्मकथा

जीवनी : जीवनी और आत्मकथा हिंदी का प्रारंभिक सूचनात्मक गद्य-वृत्त है। किसी भी व्यक्ति के जीवन का समग्र लेखन जीवनी कहलाता है। इसमें व्यक्ति के जन्म-मृत्यु, शिक्षा एवं चरित्र का यथार्थ विवरण होता है। उसके द्वारा किए गए उल्लेखनीय कार्यों पर प्रकाश डाला जाता है। इन सब में उस समय की परिस्थितियों का भी अंकन हो जाता है। क्योंकि मनुष्य के द्वारा किए गए कार्य; देश-काल से सापेक्ष संबंध रखते हैं। देश और समाज के प्रभावी व्यक्तियों के चरित्र को ही जीवनी लेखन के लिए चुना जाता है। जीवनी विधा के अंतर्गत व्यक्ति स्वयं अपनी जीवनी नहीं लिख सकता है। इसमें चरितनायक एवं लेखक हमेशा दो अलग-अलग लोग होते हैं। जीवनी लेखक जीवनी लिखने के लिए जिन व्यक्तित्वों को चुनता है वे प्रायः अपने कार्यक्षेत्र में सर्वमान्य होते हैं। राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, वैज्ञानिक या अन्य किसी भी क्षेत्र से संबंधित प्रभावी व्यक्ति या अत्यंत सामान्य मनुष्य जो समाजोत्थान और लोकोपकारी कार्यों को निःस्वार्थ भाव से करने में अग्रणी हो; और निरंतर इसमें लगा रहे तथा औरों को भी प्रेरित करें - जीवनी नायक के रूप में चुने जाते हैं। एक चरित्र जो ज्ञान, सत्मार्ग, साहस, धैर्य, ईमानदारी, कर्तव्यनिष्ठा और उपकार की प्रेरणा अपनी कर्मवीरता, आत्मसंघर्ष और धीरोदात्तता से देता है; जीवनी का नायक चुना जाता है।

साहित्यिक जीवनी लेखन का आरंभ भारतेंदु युग से माना जाता है। इस क्षेत्र में कार्तिकप्रसाद खत्री, भारतेंदु हरिश्चंद्र और देवीप्रसाद मुंसिफ का योगदान विशेष रूप से उल्लेखनीय है। कार्तिकप्रसाद खत्री ने 'अहिल्याबाई का जीवनचरित्र' (1887ई.), 'शिवाजी का जीवनचरित्र' (1890ई.) और 'मीराबाई का जीवनचरित्र' (1893ई.) लिखा। देवीप्रसाद मुंसिफ़ ने महाराजाओं के जीवन पर केंद्रित ऐतिहासिक जीवनियाँ लिखी। काशीनाथ खत्री ने भारत की स्त्रियों के जीवन पर केंद्रित जीवनियाँ लिखी। साहित्यिक भाषा और शैली के स्तर पर इस काल की रचनाओं को अधिक परिमार्जन की आवश्यकता थी। द्विवेदी युग का जीवनी साहित्य विषय वैविध्य और भाषिक परिष्कार की दृष्टि से अधिक समृद्ध था। इस युग में भारतीयता और राष्ट्रीय चेतना संपन्न जीवनियाँ लिखने की ओर लेखकों का रुझान रहा।

आधुनिक युग से पहले भी जीवनियाँ लिखी गईं हैं। उस समय इनका स्वरूप चारित्रिक महत्ता को रूपायित करना रहा। प्रायः जीवनी लेखन हेतु चुने गए विषय पौराणिक होते थे। धीरे-धीरे इस पौराणिकता का स्थान ऐतिहासिक चरित्रों ने ले लिया। इन जीवन चरित्रों की व्याख्या अब आधुनिकता की कसौटी पर की जाने लगी। विश्व प्रसिद्ध 'नेपोलियन बोनापार्ट' यूरोप का एक ऐतिहासिक व्यक्तित्व है। राधामोहन गोकुल जी ने इनकी जीवनी लिखी जिसे नागरी प्रचारिणी सभा ने 'नेपोलियन-बोनापार्ट' शीर्षक से 1917ई. में प्रकाशित किया। भारत के महापुरुषों में स्वामी विवेकानंद, महात्मा गांधी, लाला लाजपतराय सहित कई दिव्य

विभूतियों की जीवनी उपलब्ध हैं। इन प्रयोगों से जीवनी लेखन की भाषा और शैली प्रौढ़ हो रही थी। विवरण और अद्यतन सूचना का वर्णन पहले से अधिक वस्तुपरक ढंग से किया जाने लगा। लेखक की सर्जनात्मक शक्ति के अनुरूप जीवनी में साहित्यिक भाषा-शैली के प्रयोग का स्तर भी विकसित हो रहा था। सीताराम चतुर्वेदी कृत 'महामना पं. मदनमोहन मालवीय' (1937ई.) शीर्षक जीवनी विशेष उल्लेखनीय है। इसमें सूचनाओं के साथ आवश्यकतानुसार साहित्यिक भाषा का प्रयोग भी द्रष्टव्य है। हिंदी लेखकों की भी जीवनियाँ लिखी जाती रहीं। बालमुकुंद गुप्त ने प्रतापनारायण मिश्र का जीवन चरित्र (1907ई.) 'भारत मित्र' में लिखा था। भारतेंदु हरिश्चंद्र की कई जीवनियाँ लिखी गईं। निराला ने 'कुल्ली भाट' (1939ई.) की जीवनी लिखी। अब तक जीवनी प्रभावशाली व्यक्तियों के ऊपर लिखी गई थी। निराला ने एक साधारण व्यक्ति को जीवनी नायक बनाकर समाज का चित्र प्रस्तुत किया। उनका यह नया प्रयोग साहित्य में सराहा गया। छायावादोत्तर काल में "जीवनी-लेखन में विदेशी मनीषियों को उन्मुक्त भाव से चरितनायक के रूप में स्वीकार किया गया। अब जीवनीकार अपने चरित्रों को सुधारक या उपदेशक-मात्र की दृष्टि से नहीं देखता, उसका ध्यान मानवीय व्यक्तित्व के संघटन की ओर अधिक उन्मुख होता है। राहुल सांकृत्यायन कृत 'स्तालिन', 'कार्ल मार्क्स' और 'लेनिन' (1954ई.) में मानवीय व्यक्तित्व और उसके संघर्षों के अध्ययन की ओर रुचि बढ़ती दिखाई देती है। भारतीय नेताओं और मनीषियों में राष्ट्रपति राजेंद्र प्रसाद तथा श्रेयार्थी जमनालाल की जीवनियाँ क्रमशः शिवपूजनसहाय तथा हरिभाऊ उपाध्याय ने प्रस्तुत की।" (रामस्वरूप चतुर्वेदी)। इस काल में कुछ और महत्वपूर्ण जीवनियाँ लिखी गईं, जो इस प्रकार हैं - 'प्रेमचंद: कलम के सिपाही (अमृतराय, 1962ई.), निराला की साहित्य साधना (रामविलास शर्मा, 1969ई.), सुमित्रानंदन पंत : जीवन और साहित्य (शांति जोशी, 1970ई., 1977ई.), आवारा मसीहा (विष्णु प्रभाकर, 1974ई.)। 'आवारा मसीहा' बंगला उपन्यासकार शरतचंद्र की जीवनी है।

आत्मकथा : आत्मकथा के अंतर्गत व्यक्ति अपना आत्मचित्रण आप ही करता है। यानी इस विधा के अंतर्गत व्यक्ति अपने जीवन के विविध प्रसंगों और अनुभवों को स्वयं चुनता और लिखता है। अपने जीवन की कथा जब व्यक्ति स्वयं लिखता है तब वह जीवनी न रहकर 'आत्मकथा' हो जाती है। इस लेखन में अधिक तटस्थता, ईमानदारी और सजगता की माँग होती है क्योंकि यहाँ आत्मविश्लेषण करना है। जीवन के अपने अनुभवों को सबसे साझा करना है। केवल मीठे और सुखद अनुभव ही नहीं वरन कड़वे और अपमानजनक, उन महत्वपूर्ण क्षणों को भी साझा करना है जिनके सामने आने से आने वाली पीढ़ी को अपने विषम समय में कोई रास्ता सूझे। बनारसीदास जैन कृत 'अर्द्धकथा' (1641ई.) हिंदी की पहली आत्मकथा है। यह पद्यमय है। दूसरी भाषाओं में लिखी गई महत्वपूर्ण आत्मकथाओं का हिंदी में अनुवाद करने की भी परंपरा रही है। इस विधा का व्यवस्थित आरंभ भारतेंदु के युग से ही माना जाता है। कुछ आपबीती कुछ जगबीती (भारतेंदु), रामकहानी (सुधाकर द्विवेदी), निजवृत्तांत (अंबिकदत्त व्यास), आत्मचरित (स्वामी दयानंद), प्रवासी की आत्मकथा (भवानीदयाल सन्यासी) इत्यादि कुछ उल्लेखनीय आरंभिक आत्मकथाएँ हैं। प्रेमचंद के संपादन में हंस पत्रिका ने आत्मकथा विशेषांक (1932ई.)

निकाला। यह ऐतिहासिक महत्व का है। हिंदी की पहली और सुप्रसिद्ध आत्मकथा होने का गौरव 'मेरी आत्मकहानी' (बाबू श्यामसुंदरदास, 1941ई.) को प्राप्त है। इसमें उन्होंने काशी का इतिहास भी बताया है। कुछ और उल्लेखनीय आत्मकथाएं हैं- आत्मकथा (राजेंद्र प्रसाद, 1947ई.), मेरी असफलताएँ (गुलाबराय, 1941ई.), मेरी जीवन यात्रा (1946ई.), आत्मनिरीक्षण (सेठ गोविंददास, 1958ई.), मेरा जीवन प्रवाह (वियोगी हरि), साधना के पथ पर (हरिभाऊ उपाध्याय), पत्रकार की आत्मकथा (मूलचंद अग्रवाल) इत्यादि। छायावादोत्तर युग में बच्चन की आत्मकथा चार खंडों में प्रकाशित हुई है- 'क्या भूलूँ क्या याद करूँ' (1969ई.), 'नीड़ का निर्माण फिर' (1970ई.), 'बसेरे से दूर' (1977ई.), 'दशद्वार से सोपान तक' (1985ई.)।

आत्मकथा की विशिष्टताओं पर अपना विचार प्रकट करते हुए नगेंद्र लिखते हैं, छायावादोत्तर युग "में देश-विदेश के अनेक व्यक्तियों की आत्मकथाओं के भारत तथा विश्व की विभिन्न भाषाओं से अनुवाद भी प्रकाशित हुए। भारतीय लेखकों में के. एम. मुंशी, काका कालेलकर, विनायक दामोदर सावरकर, डॉ. राधाकृष्णन, अबुलकलाम आजाद, रवींद्रनाथ ठाकुर, वेद मेहता, जोश मलीहाबादी, अमृता प्रीतम, कमला दास, मिलखा सिंह, मुहम्मद यूनुस, बलवंत गार्गी तथा कर्तार सिंह दुग्गल, कर्ण सिंह आदि के नाम उल्लेखनीय हैं तो विदेशी लेखकों में हिटलर, टॉलस्टाय, एक्रमा, हैलेन केलर, खान अब्दुल गफ्फार खां की आत्मकथाएँ उल्लेखनीय हैं।

समग्रतः हिंदी का आत्मकथा साहित्य पर्याप्त वैविध्यपूर्ण है। साहित्यकारों, राजनीतिज्ञों, पत्रकारों, शिक्षकों, वकीलों, समाजसेवकों, फिल्मी कलाकारों आदि ने अपनी-अपनी आत्मकथाएँ लिखकर भारतीय समाज के विविध रूपों का अत्यंत सजीव एवं प्रामाणिक चरित्र उभारा है। प्रायः सभी आत्मकथाकारों ने पारिवारिक जीवन की अपेक्षा अपने कार्यक्षेत्र संबंधी प्रकरणों को ही प्रमुखता प्रदान की है। लेकिन पारिवारिक प्रकरणों का सर्वथा अभाव भी नहीं है। समूचे आत्मकथा साहित्य के पारिवारिक परिदृश्य को समवेत रूप में देखने पर यह पता लगता है कि ये विविधरूपी हैं - इनमें परिवार के व्रत, उत्सव, अंधविश्वास, परंपराएँ, जीवनमूल्य आदि सभी को स्थान मिला है। सच तो यह है कि भारत का सामाजिक इतिहास लिखने के लिए ये महत्वपूर्ण सामग्री प्रदान करती हैं। शिल्प की दृष्टि से इनमें पत्र, डायरी, संस्मरण आदि सबका सम्मिलित रूप मिलता है। ये प्रेरणा की अक्षय स्रोत हैं तथा पढ़ने में उपन्यास का-सा आनंद देती हैं।"

बोध प्रश्न

- जीवनी किसे कहते हैं?
- आत्मकथा और जीवनी में क्या अंतर है?

2.3.2 रेखाचित्र और संस्मरण

रेखाचित्र : इस विधा के अंतर्गत शब्दों के द्वारा किसी व्यक्ति, घटना, दृश्य या जीव का विवरण इस तरह प्रस्तुत किया जाता है कि उसका जीवंत चित्र आँखों के समक्ष उपस्थित हो

जाता है। शब्द रेखाओं के द्वारा व्यक्ति, घटना, दृश्य या जीव के बाह्य चित्र की यह प्रस्तुति रेखाचित्र कहलाती है। इसकी सामग्री का स्रोत अनुभूति है। अपनी या औरों की अनुभूति के आधार पर रेखाचित्र का निर्माण किया जा सकता है। इसकी वृत्ति स्थिर होती है। पं. बनरसीदास चतुर्वेदी द्वारा लिखित रेखाचित्र 'औरंगजेब' (1912ई.) 'मर्यादा' में प्रकाशित हुआ। इस विधा में कल्पना की जरा भी गुंजाइश नहीं होती है। जो जैसा है उसका वैसा ही अंकन कर देना इस विधा की विशेषता है। रेखाचित्र का संबंध अतीत के साथ होना आवश्यक नहीं है।" 'रेखाचित्र' शब्द चित्रकला के क्षेत्र से साहित्य में संक्रमित हुआ है, परंतु रूढ़ अर्थ में उसका साहित्य-क्षेत्र में सीमा विस्तार हो गया है। रेखाओं की भाषा चाक्षुष होने के कारण उनकी पहचान में कोई बाधा नहीं उत्पन्न होती। परंतु साहित्य के पास शब्द का ऐसा माध्यम है, जिसकी प्रतीति चाक्षुष नहीं होती। प्रत्यक्ष ज्ञान में वस्तु का बिंब मनोजगत में बोध-ग्रहण के उपरांत बनता है, किंतु साहित्य में शब्दों द्वारा बिंब पहले मनोजगत में बनाना पड़ता है, फिर मन के उद्वेलन में उसकी पहचान होती है।" (महादेवी वर्मा)। 'मेरा परिवार' (1972ई.) में महादेवी वर्मा ने पशु पक्षियों का रेखाचित्र बनाया है जो संस्मरणात्मक है। इन्होंने बहुत साधारण लोगों को अपने रेखाचित्र के लिए चुना, जैसे- रामा, घीसा, फेरीवाला इत्यादि। इनके अन्य रेखाचित्र संकलन हैं- अतीत के चलचित्र (1941ई.), स्मृति की रेखाएँ (1947ई.) और स्मारिका (1971ई.)। महादेवी वर्मा के संस्मरणात्मक रेखाचित्र साहित्य पर प्रकाश डालते हुए नगेंद्र लिखते हैं, "यद्यपि महादेवी की रचनाओं की विधा के संबंध में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद रहा है- इन्हें निबंध, संस्मरण और कहानी में से कोई एक संज्ञा भी दी जाती रही है; किंतु अधिकांश विद्वान उन्हें संस्मरणात्मक रेखाचित्र ही मानते हैं। अपने संपर्क में आनेवाले शोषित व्यक्तियों, दीन-हीन नारियों, साहित्यकारों, जीव-जंतुओं आदि का संवेदनात्मक चित्रण उन्होंने अत्यंत मार्मिक रूप में किया है। अपनी संवेदना को कवित्वपूर्ण शैली के माध्यम से मूर्त कर देने में उन्हें विशेष कौशल प्राप्त है। वे साहित्यकार होने के साथ-साथ चित्रकर्त्री भी हैं, फलस्वरूप उनके रेखाचित्रों में चित्रोपमता का गुण अनायास समाविष्ट हो गया है।" आगे रेखाचित्र विधा के विकास में योग देने वाले विद्वानों का उल्लेख करते हुए; उनका मत स्पष्ट है कि रेखाचित्र तथा संस्मरण के तत्त्वगत अंतर को ध्यान में रखते हुए इन दोनों विधाओं की श्रीवृद्धि में योग देनेवाले लेखकों में प्रकाशचंद्र गुप्त का स्थान काफी ऊँचा है। 'पुरानी स्मृतियाँ' (1947ई.) में इनके स्मृति चित्र संकलित हैं तथा 'रेखाचित्र' (1940ई.) में निर्जीव वस्तुओं और स्थानों से संबंधित रेखाचित्र हैं।

हिंदी साहित्य के कुछ उल्लेखनीय रेखाचित्र संकलन इस प्रकार हैं- रेखाचित्र, सेतुबंध (बनरसीदास चतुर्वेदी, 1952ई.), बोलती प्रतिमा (श्रीराम शर्मा, 1937ई.), रेखा और रंग (विनयमोहन शर्मा, 1955ई.), गेहूँ और गुलाब (रामवृक्ष बेनीपुरी, 1950ई.), माटी की मूरतें (रामवृक्ष बेनीपुरी, 1946ई.), वे दिन वे लोग (शिवपूजन सहाय, 1965ई.), अमिट रेखाएँ (सत्यवती मल्लिक, 1951ई.), रेखाएँ बोल उठीं (देवेंद्र सत्यार्थी, 1949ई.)।

रेखाचित्र साहित्य के विकास में हंस पत्रिका के 'रेखाचित्र विशेषांक' का योगदान उल्लेखनीय है। यह विशेषांक मार्च 1939ई. में निकाला गया था। इस विशेषांक में हिंदी के साथ उर्दू, बंगला, मराठी, गुजराती, तमिल, कन्नड़ इत्यादि भाषाओं के लेखकों के रेखाचित्रों को भी सम्मिलित किया गया। बनारसीदास चतुर्वेदी ने 'मधुकर' के रेखाचित्र विशेषांक का संपादन किया तथा इसी दौरान उन्होंने अपने रेखाचित्र संग्रहों को भी प्रकाशित किया। इनके रेखाचित्रों में देशप्रेम एवं राष्ट्रीयता संबंधी विषय मुख्य रहे हैं।

संस्मरण : संस्मरण का प्रवर्तन द्विवेदी युग में 'सरस्वती' पत्रिका के माध्यम से हुआ। इस पत्रिका में महावीर प्रसाद द्विवेदी के साथ कई लेखकों के संस्मरण प्रकाशित होते रहते थे। इनमें से अधिकांश संस्मरण लेखक प्रवासी भारतीय थे। इस युग का उल्लेखनीय संस्मरण ग्रंथ 'हरीऔध जी के संस्मरण' है। इसके रचयिता बालमुकुंद गुप्त हैं। इससे पहले उन्होंने 'प्रतापनारायण मिश्र' पर 1907ई. में एक संस्मरण लिखा था। कुछ विद्वान इसे हिंदी का पहला संस्मरण मानते हैं और कुछ लोग इसे जीवन चरित्र कहते हैं। इस विधा को कलात्मक ऊँचाई पर पहुँचाने का श्रेय 'पद्मसिंह शर्मा' को जाता है। इन्होंने अपने संस्मरण संकलन 'पद्मपराग' (1929ई.) में जिस विनोद भाव का प्रयोग किया है, उससे इनके संस्मरणों की साहित्यिक सुंदरता बढ़ी है। कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर, बनरसीदास चतुर्वेदी (संस्मरण, 1952ई.), श्रीनारायण चतुर्वेदी, किशोरीदास वाजपेयी (साहित्यिक जीवन के अनुभव और संस्मरण), ब्रजमोहन वर्मा, रघुवीर सिंह (शेष स्मृतियाँ), रामनरेश त्रिपाठी, घनश्यामदास बिड़ला (बापू, 1940ई.) इत्यादि लेखकों ने इस विधा में अपना योगदान दिया है।

संस्मरण का संबंध अतीत की यादों से जुड़ा हुआ रहता है। अतीत में जिए गए उन क्षणों की स्मृति जिनका मन पर गहरा प्रभाव है और जो बिना प्रयास के अकारण ही वर्तमान में भी मन में कोई भाव जगा जाता है- संस्मरण कहलाता है। ये क्षण हर्ष और विषाद- किसी के भी हो सकते हैं। गहरी छाप छोड़ने वाली मनुष्य की स्वानुभूतियों की स्मृति का लिप्यंकित सर्जनात्मक साहित्य संस्मरण है। इसका स्वरूप भावमय है। एक उत्कृष्ट संस्मरण वही है जो पाठक को भी भावनाओं के वशीभूत कर दे। अर्थात तटस्थता की यहाँ कोई उपयोगिता और आवश्यकता नहीं है। संस्मरण केवल मनुष्य के लिए मनुष्य की स्मृति तक सीमित नहीं है। सृष्टि का कोई भी जीव, स्थान या घटना मनुष्य की स्मृति का हिस्सा हो सकता है। न भुला सकने वाली आत्मीय स्मृतियाँ संस्मरण के रूप में लिखी जाती हैं। संस्मरण को महादेवी वर्मा ने 'किसी भाव का पर्व-स्नान' कहा है। महादेवी वर्मा का संस्मरण संकलन 'पथ के साथी' (1956ई.) है। यह उन्होंने अपने समकालीन लेखकों पर लिखा है। उनके अन्य संस्मरण संकलन 'मेरे प्रिय संस्मरण' में संकलित हैं जो मार्मिक हैं।

आधुनिक गद्य विधा के रूप में संस्मरण विधा पर रामस्वरूप चतुर्वेदी ने निम्नलिखित शब्दों में प्रकाश डाला है- संस्मरण का माध्यम आत्मकथा से प्रेरित होने पर भी शिल्प में उससे भिन्न है। वस्तुतः अकाल्पनिक गद्य-वृत्तों की धारणा सबसे पहले संस्मरण को ही देख कर बनती है। जीवनी और आत्मकथा के साथ इतिहास का संबंध कुछ इस तरह जुड़ा रहा कि उनका

साहित्यिक रूप बहुत बाद में विकसित हो पाया। पर संस्मरण आरंभ से ही सर्जनात्मक गद्य का उपयोग करता दिखाई पड़ता है और अपनी व्यापक प्रकृति के कारण विविध गद्य रूपों के बीच केंद्रीय स्थिति में है। तीव्र भावात्मक गठन और गहरी सर्जनात्मक भाषा के परंपरागत काव्य-रूप जैसे उपन्यास, नाटक, कविता आधुनिक त्वरित संचार से उत्पन्न तनावों के युग में सब समय पाठक के लिए रुचिकर नहीं हो पाते। वैसी स्थिति में वह पत्रकारिता के विविध रूपों की ओर उन्मुख होता है, जो अपनी प्रकृति में मूलतः सूचनात्मक और वस्तुपरक होते हैं। संस्मरण, रेखाचित्र, रिपोर्ताज जैसे नए गद्य रूप इन दोनों स्थितियों के बीच के अंतराल में विकसित हुए हैं, और जैसा पहले संकेत किया गया, आधुनिक कलावृत्ति के अनुकूल स्वचेतनता और निर्वैयक्तिकता के विरोधी ध्रुवों के बीच समतुलित क्षेत्र का विस्तार करते हैं। भाषा प्रयोग की दृष्टि से ये हल्की सर्जनात्मकता का रूप लिए सामान्य और असघन मनःस्थितियों का अंकन करते हैं, जो प्रायः विशिष्ट साहित्य-रूपों में उतनी संगति प्राप्त नहीं कर पाती। इस दृष्टि से इन काव्य-रूपों की सर्जनात्मकता में भाषिक स्तर पर एक विशेष प्रकार की दक्षता अपेक्षित होती है, क्योंकि कविता और पत्रकारिता के बीच का संतुलन इन माध्यमों की भाव-भूमि है।

बोध प्रश्न

- रेखाचित्र किसे कहते हैं?
- संस्मरण किसे कहते हैं?

2.3.3 यात्रावृत्तांत और रिपोर्ताज

यात्रावृत्तांत : यात्रावृत्तांत इसे 'यात्रा वृत्त' कहा जाता है। जब इस विधा में संस्मरण विधा को मिला कर नया प्रयोग किया गया तब से इसे 'यात्रा संस्मरण' के नाम से भी जाना जाने लगा। इसमें लेखक वर्णित स्थान के विभिन्न परतों के साथ स्वयं अपने भीतर की कई परतों को भी उधेड़ डालता है। पर्यटन से जुड़े इस विधा का एक पक्ष भूगोल से संबंधित है। "देशदर्शन यात्रा संस्मरण की मूल वृत्ति है। जिसमें एक ओर प्रकृति की पुकार है, दूसरी ओर साहसिक जिज्ञासा। यात्रा मानो विराट मानवीय विकास का ही एक सीमित प्रतीक है।" (रामस्वरूप चतुर्वेदी)। भारतेंदु युग में 'यात्रा वृत्तांत' का साहित्य भी उपलब्ध रहा है। इस युग में भारत के भीतर की यात्रा का वृत्तांत तीर्थयात्रा के रूप में उपलब्ध है जबकि विदेशी यात्रावृत्तांत के संदर्भ में 'लंदन' मुख्य विषय रहा। 1871ई. से 1879ई. तक के 'कविवचन सुधा' पत्रिका के अंकों में भारतेंदु हरिश्चंद्र के कुछ यात्रावृत्त प्रकाशित हुए थे। इनके विषय हैं- 'सरयू पार की यात्रा, लखनऊ की यात्रा, हरिद्वार की यात्रा' इत्यादि। बालकृष्ण भट्ट की 'गया यात्रा' (1894ई.) और प्रतापनारायण मिश्र की 'विलायत यात्रा' (1897ई.) का प्रकाशन 'हिंदी प्रदीप' में हुआ था। द्विवेदी युग में इस विधा का विकास हुआ। पत्रिकाओं के साथ इस विधा के स्वतंत्र ग्रंथ भी अधिक संख्या में प्रकाशित हुए, जैसे- चीन में तेरह मास (ठाकुर गदाधर सिंह: 1902ई.), बद्रिकाश्रम यात्रा (देवीप्रसाद खत्री : 1902ई.), लंका-यात्रा का विवरण (गोपालराम गहमरी : 1916ई.) इत्यादि। इससे आगे बढ़कर बाबू शिवप्रसाद गुप्त ने अपने 'विश्व भ्रमण' के संस्मरणों की चित्रसहित प्रस्तुति 'पृथ्वी प्रदक्षिणा' (1924ई.) नामक पुस्तक में किया है। आरंभ के

यात्रावृत्तांतकारों का विदेश से मोह उनकी रचनाओं में प्रकट होता है। हिंदी की इस विधा में योगदान करने वालों में राहुल सांकृत्यायन अग्रणी रहे हैं। इस क्षेत्र में उनकी लेखन शैली इतिवृत्त प्रधान है। जहाँ तक और यात्रावृत्तकार अपने वृत्तांत में स्थान के भूगोल तक सीमित रहे हैं, वहीं राहुल स्थान के पोर-पोर को छू लेने में सक्षम प्रतीत होते हैं। इनके यात्रा वृत्तांतों में भूगोल के साथ उस स्थान का समाज, इतिहास और वहाँ की संस्कृति- सबको साफ-साफ देखा जा सकता है। इनके महत्वपूर्ण यात्रा वृत्तांत हैं- 'मेरी लद्दाख यात्रा', मेरी यूरोप यात्रा, 'मेरी तिब्बत यात्रा', 'किन्नर देश में', 'एशिया के दुर्गम खंडों में' इत्यादि। जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है कि 'यात्रा वृत्तांत' अपने आरंभिक स्वरूप में केवल यात्रा वृत्त ही था। इसे 'यात्रा संस्मरण' के रूप में पहचान दिलाने का श्रेय अज्ञेय को जाता है। इनके प्रमुख यात्रा-संस्मरण हैं- अरे यायावर रहेगा याद? (1953ई.), एक बूंद सहसा उछली (1960ई.) और स्मृति लेखा (1982ई.)। 'अरे यायावर रहेगा याद?' यात्रा-संस्मरण विधा की पहली रचना मानी जाती है। इसमें यात्रावृत्त और संस्मरण विधा का मिला हुआ स्वरूप देखने को मिलता है।

रामस्वरूप चतुर्वेदी के अनुसार "विदेश यात्रा के सुगम, सुलभ और उत्तरोत्तर प्रचलित होने के साथ-साथ यात्रा-संस्मरण लिखने और पढ़ने में रुचि बढ़ती है। भगवतशरण उपाध्याय, भदंत आनंद कौसल्यायन, यशपाल, अमृतराय, दिनकर और प्रभाकर माचवे जो कुछ अन्य अकाल्पनिक वृत्तों के लिए भी गद्य का सर्जनात्मक प्रयोग करते रहे हैं, यात्रा-संस्मरण के माध्यम को विकसित करते हैं। यह स्मरणीय है कि इन सभी लेखकों ने प्रायः विदेश-यात्रा का वर्णन प्रस्तुत किया है।.... नई कविता युग के लेखकों ने यात्रा-संस्मरण विशेष रुचि और अंतर्दृष्टि के साथ लिखे हैं। इस प्रसंग में पहल अज्ञेय कर चुके हैं। मोहन राकेश का यात्रा-संस्मरण 'आखिरी चट्टान तक' (1953) दक्षिण भारत के कुछ हिस्सों को प्राकृतिक दृश्यों और चरित्रों के माध्यम से अंकित करता है। पूरी रचना का गठन तोषप्रद है, पर शैली कहीं-कहीं अतिनाटकीयता और अतिभावुकता से बोझिल हो गई है। रघुवंश की 'हरी घाटी' (1961) में शिल्प का नया और प्रीतिकर प्रयोग इस रूप में है कि यहाँ रेखाचित्र, संस्मरण, डायरी और यात्रा-वृत्त की विधाएँ एक-दूसरे में घुल-मिल गई हैं। यात्रा-स्थल है रांची-हजारीबाग के आसपास की छोटी पहाड़ियों वाला प्रदेश और लेखक के प्रवास में केंद्रीय स्थान है, वहाँ के कैथलिक मिशनरियों की 'सेमिनरी'। 'हरी घाटी' में अधिकतर सामान्य और अकिंचन लगने वाली घटनाओं को रेखांकित करने का यत्न हुआ है, यों ऐसे स्थल भी हैं जहाँ गंभीर और दार्शनिक समस्याओं पर सहज भाव से विचार किया गया है। पूरी रचना में जो कमी खटकती है वह है विनोद भाव के न होने की। इससे वर्णन में कहीं-कहीं एकरसता आ जाती है। अन्य व्यवस्थित यात्रा-वृत्त प्रभाकर द्विवेदी तथा कन्हैयालाल नंदन ने लिखे हैं। निर्मल वर्मा का यात्रा-संस्मरण 'चीड़ो पर चाँदनी' (1964) यूरोप प्रवास पर आधारित है।" अकाल्पनिक गद्य विधाओं के संदर्भ में अजितकुमार का योगदान उल्लेखनीय है।

रिपोर्ताज : रिपोर्ताज फ्रेंच भाषा का एक शब्द है। यह अंग्रेजी के 'रिपोर्ट' शब्द से मिलता हुआ शब्द है। अभिव्यक्ति के स्तर पर दोनों में सूक्ष्म अंतर है। रिपोर्ट का संबंध किसी विषय की

सूचना देने भर से है पर रिपोर्ताज इससे आगे बढ़कर शब्दों के माध्यम से उस सूचनात्मक संसार की जीवंत प्रस्तुति करता है। किसी भी तथ्य या घटना की कल्पनारहित कलात्मक, प्रभावोत्पादक और मार्मिक प्रस्तुति रिपोर्ताज है। घटना की सत्यता को अवांछनीय प्रभावों से मुक्त रखने के लिए, लेखन में 'तटस्थता' इस विधा की आवश्यक शर्त है। महादेवी वर्मा के अनुसार यह एक 'नवीन विधा है, जो युद्ध-क्षेत्र की खाइयों में गये साहसी पत्रकारों के युद्ध-विवरण से उत्पन्न हुई है।' इस विधा का आरंभ द्वितीय विश्वयुद्ध (1936ई.) के आस-पास हुआ। इसके प्रचार-प्रसार में रूसी साहित्यकारों का अधिक योगदान रहा। हिंदी साहित्य में रिपोर्ताज लेखन की परंपरा 'रूपाभ' पत्रिका के दिसंबर (1938ई.) अंक में प्रकाशित शिवदान सिंह की रचना 'लक्ष्मीपुरा' से आरंभ हुई। रांगेय राघव का रिपोर्ताज संकलन 'तूफानों के बीच' (1946ई.) में अकाल के दौरान विभिन्न क्षेत्रों में हो रहे अमानवीय कृत्यों का विवरण प्रस्तुत किया है। भूख से बेहाल नर कंकालों को और बेहाल करते मुनाफाखोरों, पूँजीपतियों और व्यापारियों की अमानवीयता का चरम विवरण अत्यंत हृदय विदारक है। रिपोर्ताज लेखक की मर्मभेदी दृष्टि 'दुराचारियों के दुराचार और जरूरतमंदों की विह्वलता' को एक साथ भाँप लेता है। युद्ध और दैव विभीषिका की स्थिति की भयावहता का आंकलन करते उसके तीक्ष्ण शब्द प्रहार संवेदनशील लोगों को झकझोर कर रख देते हैं। 'रिपोर्ताज लेखन की दिशा में कतिपय अन्य उल्लेखनीय हस्ताक्षर हैं - भदन्त आनंद कौसल्यायन, शिवसागर मिश्र, डॉ. धर्मवीर भारती, कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर, शमशेर बहादुर सिंह, श्रीकांत वर्मा तथा फणीशवरनाथ रेणु जिन्होंने क्रमशः 'देश की मिट्टी बुलाती है', 'वे लड़ेंगे हजार साल' (1966ई.), 'युद्ध-यात्रा' (1972ई.), 'क्षण बोले कण मुस्काएँ', 'प्लाट का मोर्चा', 'अपोलो का रथ' तथा 'ऋणजल धनजल' (1975ई.) सदृश सशक्त रचनाओं के माध्यम से रिपोर्ताज लेखन को नए आयाम दिए हैं।' (डॉ.नगेंद्र)। समय-समय पर पत्र-पत्रिकाओं में रिपोर्ताज लेखन प्रकाशित होते रहते हैं। कमलेश्वर, विवेकीराय, जगदीशप्रसाद चतुर्वेदी, रेणु, निर्मल वर्मा इत्यादि रचनाकारों ने इस विधा को निरंतर समृद्ध किया है। इनके रिपोर्ताज नया पथ, ज्ञानोदय, कल्पना, माध्यम, साप्ताहिक हिंदुस्तान, धर्मयुग, दिनमान इत्यादि पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं।

बोध प्रश्न

- यात्रावृत्तांत की मूल वृत्ति क्या है?
- रिपोर्ताज से आप क्या समझते हैं?

2.3.4 पत्र, दैनंदिनी और साक्षात्कार

पत्र : पत्र साहित्य की एक असजग विधा है। साहित्यिक संदर्भ में भी पत्र लेखन आवश्यकता और अपनत्व के अनुरूप ही किया जाता है। इस लेखन के पीछे विशेष विधा का सृजन या प्रकाशन, उद्देश्य रूप में नहीं रहता है। किसी लेखक की स्वाभाविक भाषा-शैली से परिचित होने का सबसे अच्छा माध्यम उनका पत्र है। इस साहित्य का प्रवर्तन द्विवेदी युग में हुआ। स्वामी दयानंद सरस्वती संबंधी पत्रों का संकलन महात्मा मुंशीराम ने प्रकाशित करवाया।

यह हिंदी साहित्य का पहला प्रकाशित पत्र संग्रह है। इसका प्रकाशन वर्ष 1904ई. है। 1909 ई. में 'ऋषि दयानंद का पत्र-व्यवहार' नामक पत्र संग्रह पं.भगवददत्त ने प्रकाशित कराया। छायावाद युग में कुछ पत्र संग्रह प्रकाशित हुए, जैसे- पत्रांजलि (1922ई.), विवेकानंद पत्रावलि, पत्रावलि (नेताजी सुभाषचंद्र बोस के 153 पत्रों का संग्रह), पिता के पत्र पुत्री के नाम। 'पिता के पत्र पुत्री के नाम'- यह अंग्रेजी पत्रों का संग्रह है जिसका हिंदी अनुवाद 'प्रेमचंद' ने किया। ये जवाहरलाल नेहरू द्वारा अपनी बेटी इंदिरा को लिखे गए शिक्षात्मक पत्र हैं। छायावादोत्तर युग में पत्र साहित्य का विकसित स्वरूप देखने को मिलता है। अध्ययन की दृष्टि से पत्र साहित्य की तीन श्रेणियाँ बना ली गई- व्यक्तिगत पत्र संकलन, ग्रंथों के परिशिष्ट में संकलित पत्र और पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित पत्र। इन श्रेणियों में संकलित पत्रों की भी तीन कोटियाँ बनाई जा सकती हैं- 'सूचनात्मक, साहित्यिक और इतिवृत्तिपरक'। किसी भी श्रेणी का पत्र हो उससे लेखक की रचना प्रक्रिया को समझा जा सकता है। इस संदर्भ में रामस्वरूप चतुर्वेदी का मत उल्लेखनीय है, "सीधी, स्वच्छंद और निर्भीक अभिव्यक्ति, अनौपचारिक, आत्मीय शैली और सारगर्भित स्थितियों का सही, यथार्थ अंकन, ये कुछ ऐसी विशेषताएँ हैं जो लेखकों के पत्रों को विशेष प्रकार के साहित्य-रूप की कोटि दे देती हैं। साहित्य, जो लिखते समय नहीं, लिख जाने के बाद साहित्य की संज्ञा प्राप्त करता है।"

हिंदी की इस पत्र विधा को समृद्ध करने में पद्मसिंह शर्मा, द्विवेदी (द्विवेदी पत्रावली), हरीऔध, प्रेमचंद (चिट्ठी-पत्री), पुरुषोत्तमदास टंडन, बच्चन, पंत, दिनकर, निराला और राहुल सांकृत्यायन का योगदान उल्लेखनीय है। कुछ लेखक सजग भाव से पत्र साहित्य की रचना में प्रवृत्त हुए। इनमें उल्लेखनीय नाम हैं- बालमुकुंद गुप्त (शिवशंभु के चिट्ठे, चिट्ठे और खत), विश्वंभरनाथ शर्मा कौशिक (चिट्ठा)इत्यादि। पत्र लेखन की शैली सभी लेखकों की अलग होती है। यह विषय के अनुरूप भी बदलता है।

दैनंदिनी (डायरी): डायरी मनुष्य के निजी कर्मों और समाज के प्रति उसकी संवेदना का कैटलॉग है। इसमें वही अंकित किया जाता है जो मनुष्य दिखाना चाहता है। इसका लेखन निजता को निज के लिए अंकित करने के असजग प्रयास से यह मानकर आरंभ किया गया कि अपनी डायरी का लेखक ही उसका पाठक भी होगा। एक सामान्य व्यक्ति भी अपने जीवन की महत्वपूर्ण घटनाओं का तिथिवार सहित अंकन कर, उसे सहेज सकता है। साहित्यकार का डायरी लेखन समान्य मनुष्य के डायरी लेखन से विशिष्ट होता है। उसकी साहित्यदृष्टि का विस्तार उसकी निजता में भी परिलक्षित होता है। डायरी रूपी उसके निजी दस्तावेज़ में भी देश-दुनिया के बृहत्तर आयामों की झलक मिलती है। अपने कथा साहित्य में लेखक इस विधा का सजग प्रयोग करते हैं। "हिंदी में आरंभिक डायरी शैली में लिखे वृत्त हैं- श्रीराम शर्मा की 'सेवाग्राम डायरी' (1946ई.) और घनश्यामदास बिड़ला की 'डायरी के पन्ने'। विश्वविद्यालयीय हिंदी शोध और अध्यापन के आदि व्यवस्थापक प्रो.धीरेंद्र वर्मा ने अपनी एक संक्षिप्त डायरी प्रकाशित की है 'मेरी कॉलेज की डायरी'। डायरी का अधिक बौद्धिक और चिंतन प्रधान रूप जर्नल आगे चलकर नयी कविता युग में प्रचार पाता है। यों डायरी और जर्नल के बीच का लेखन भारतेंदु के

'कालचक्र' में द्रष्टव्य है, जहाँ अपने समय तक के भारतीय इतिहास की प्रमुख तिथियाँ और घटनाएँ अंकित की गई हैं, और जिसमें उन्होंने नोट किया था- 'हिंदी नए चाल में ढली, सन 1873ई।" (रामस्वरूप चतुर्वेदी)। आगे समाहार के साथ ही हिंदी साहित्य के विकास में इन सभी नव्यतम गद्य विधाओं के योगदान को स्पष्ट करते हुये चतुर्वेदीजी लिखते हैं- आधुनिककालीन गद्य के विकास और परिष्कार में नए माध्यमों का गुणात्मक योगदान रहा है, क्योंकि यहाँ लेखक कल्पना का सहारा न लेकर पूरी तरह से भाषिक क्षमता के विकास में संलग्न रहता है। इस रूप में नाटक, उपन्यास, कहानी जैसी पूर्व प्रचलित गद्य विधाएँ कविता के अधिक निकट हैं, भले उनका वाक्य-विन्यास अलग-अलग तरह का हो। गद्य का वास्तविक रूप जीवनी-आत्मकथा, संस्मरण-रेखाचित्र-यात्रावृत्त जैसे नए माध्यमों में ही देखने को मिलता है। और यहीं आचार्य शुक्ल का आधुनिक काल के लिए प्रस्तावित नाम 'गद्य-काल' सही ढंग से चरितार्थ होता है, यद्यपि स्वयं इतिहासकार का ध्यान इन गद्य रूपों की ओर नहीं था। और अपने इतिहास में उसने इनका स्वतंत्र रूप से उल्लेख नहीं किया है।

हिंदी में डायरी विधा की कुछ प्रमुख कृतियाँ हैं- एक साहित्यिक की डायरी (मुक्तिबोध, 1964ई.), पंचरत्न (रामविलास शर्मा, 1980ई.), वनतुलसी की गंध (फणीशवरनाथ रेणु, 1984ई.), मेरी जेल डायरी (जयप्रकाश नारायण, 1975-77ई.), मनबोध मास्टर की डायरी (विवेकीराय, 1984ई.), मलयज की डायरी (नामवर सिंह, 2000ई.) इत्यादि। हिंदी साहित्य की यह विधा भी विषय की विविधता से पूर्ण है। एक डायरी लेखक अपनी डायरी के माध्यम से जहाँ अपनी विशिष्ट अनुभूतियों को अंकित करता है वहीं वह समाज की विविध परिस्थितियों पर भी अपनी रुचि के अनुरूप प्रकाश डालता है। अर्थात न सिर्फ व्यक्ति के मनोभाव वरन समाज की विभिन्न परिस्थितियों (सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक और सांस्कृतिक) का सूक्ष्म जगत भी डायरी के माध्यम से उजागर होता है। किसी घटना या मानसिक उद्वेग की दशा में जिसे केवल अनुभूत भर कर सकने का समय रहता है; उन अनुभूतियों को शब्दबद्ध कर प्रस्तुत करने की लेखन शैली डायरी कहलाती हैं। यह भी ध्यातव्य है कि सभी अनुभूतियाँ मधुर नहीं होतीं। इनके तीक्ष्ण और कटु होने से डायरी की मार्मिकता अधिक प्रभावित होती है।

साक्षात्कार : साहित्य की विधा के रूप में साक्षात्कार को नव्यतम विधा कहा जाता है। इसका आरंभ भारतेंदु युग से ही माना जाता है। 'भेंटवार्ता', 'अंतरंग बातचीत' और 'परिचर्चा' इसके पर्यायवाची शब्द हैं। अंग्रेजी में इसे इंटरव्यू कहते हैं। इस विधा का मुख्य आधार प्रश्नावली है। प्रश्नकर्ता किसी निश्चित उद्देश्य से प्रेरित होकर प्रश्नावली का निर्माण करता है। उसका उद्देश्य साहित्यिक, राजनीतिक, वैज्ञानिक, सांस्कृतिक, सामाजिक या अन्य विषयों से संबंधित हो सकता है। साहित्य के अंतर्गत साक्षात्कारकर्ता का मुख्य उद्देश्य किसी लेखक के व्यक्तित्व और कृतित्व की पूरी जानकारी प्राप्त करना रहता है। इसके साथ वह साहित्य की सामयिक परिस्थिति और उसके विकल्प पर भी चर्चा कर सकता है। किसी विषय विशेषज्ञ से उनकी विशेषज्ञता के क्षेत्र के संदर्भ में बात की जा सकती है। समाज की किसी विशेष घटना को परिचर्चा का मुद्दा बनाया जा सकता है। साक्षात्कार की मुख्य प्रविधि तो यह है कि जिनका

साक्षात्कार करना है उनसे मिलने का समय लेकर ही मिला जाय। मिलने से पूर्व चर्चा के मुद्दे का परिचय भी प्रश्नावली के रूप में दे दिया जाए। प्रश्नावली का उत्तर पत्राचार द्वारा भी प्राप्त किया जा सकता है। आजकल समय का अभाव है और संचार क्रांति का दौर है। इस दौर में टेलीफोन द्वारा भी बातचीत कर साक्षात्कार लिया जा सकता है। बहुत बार बिना प्रश्नावली के त्वरित साक्षात्कार भी किए जाते हैं। इन साक्षात्कारों को लिपिबद्ध करके जिनका साक्षात्कार लिया है उन्हें दिखाकर, उनकी अनुमति से इसे पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित भी कराया जाता है। वीणा, विशाल भारत, साधना और हंस जैसी पुरानी पत्रिकाओं में कुछ साक्षात्कार प्रकाशित हुए हैं। वर्तमान समय की पत्र-पत्रिकाओं में भी साक्षात्कार को प्रमुखता से छापा जाता है। 'हंस' (दिसंबर, 1947ई.) पत्रिका में एक महत्वपूर्ण साक्षात्कार 'अपने ही घर में सरस्वती का अपमान' प्रकाशित हुआ था। यह श्री नरोत्तम नागर द्वारा निराला से लिया गया साक्षात्कार है। इसमें निराला ने सरोष अपना मत प्रकट किया है कि राजनेताओं के सामने साहित्यकारों को तुच्छ समझा जाता है। इस विधा की पहली स्वतंत्र कृति बेनीमाधव शर्मा कृत 'कवि दर्शन' है। यह बीसवीं सदी के पाँचवे दशक की रचना है। पद्मसिंह शर्मा कमलेश कृत 'मैं इनसे मिला' (1952ई.) इस विधा की सर्वाधिक चर्चित पुस्तक है। इसके बाद देवेंद्र सत्यर्थी कृत 'कला के हस्ताक्षर' की चर्चा है। कुछ अन्य महत्वपूर्ण साक्षात्कार संग्रह इस प्रकार हैं- अपरोक्ष (अज्ञेय, 1979ई.), शौक सुराही (अमृता प्रीतम, 1979ई.), अभिमन्यु अनत : एक बातचीत (कमलकिशोर गोयनका, 1985ई.) इत्यादि। साक्षात्कार का दायरा बहुत विस्तृत है। यह केवल विषयगत विधाओं में सिमटा हुआ नहीं है। दुनिया की किसी भी महत्वपूर्ण हलचल को साक्षात्कार का विषय बनाया जा सकता है।

बोध प्रश्न

- डायरी किसे कहते हैं?
- साक्षात्कार किसे कहते हैं?

2.3.5 आलोचना

आलोचना का आरंभ रचना के समानांतर ही होता है। आधुनिक हिंदी गद्य का प्रणयन भारतेंदु युग में नाट्य विधा से हुआ। उसी समय उस विधा की आलोचना का भी जन्म हुआ। 1883ई. में भारतेंदु हरिश्चंद्र ने 'नाटक' शीर्षक एक लंबा निबंध (60 पृष्ठ) लिखकर आलोचना का सूत्रपात किया। इस युग में 'हिंदी प्रदीप' पत्र ही स्तरीय आलोचनाएँ प्रकाशित करता था। बदरीनारायण चौधरी प्रेमघन की पुस्तक समीक्षाएँ 'आनंद कादंबिनी' में प्रकाशित हुई। उन्होंने श्रीनिवासदास कृत 'संयोगिता स्वयंवर' और गदाधर सिंह कृत 'बंग-विजेता' के अनुवादों की विस्तृत आलोचना की थी। द्विवेदी युग में आलोचना की पाँच पद्धतियाँ विकसित हुईं- 1) शास्त्रीय आलोचना 2) तुलनात्मक आलोचना 3) शोधपरक आलोचना 4) परिचयात्मक आलोचना 5) व्याख्यात्मक आलोचना। इनमें शास्त्रीय आलोचना का संबंध रीतिकालीन ग्रंथों से है। द्विवेदी युग में इस परंपरा को जगन्नाथप्रसाद भानु (काव्य प्रभाकर 1910ई. , छंद सारावली 1917ई.) और लाला भगवानदीन (अलंकार मंजूषा, 1916ई.) ने जीवित रखा है। तुलनात्मक

आलोचना द्विवेदी युग की प्रमुख आलोचना पद्धति रही है। इसका सूत्रपात पद्मसिंह शर्मा ने बिहारी और सादी की तुलना द्वारा 1907 ई. में किया। मिश्रबंधुओं ने अपने ग्रंथ 'हिंदी नवरत्न' (1910ई.) में भी तुलनात्मक आलोचना की महत्ता को प्रतिष्ठापित किया। कृष्ण बिहारी मिश्र और लाला भगवानदीन 'देव और बिहारी' को तुलनात्मक आलोचना पद्धति से एक-दूसरे से बड़ा बताने की जुगत करते रहे। शोधपरक आलोचना का विकास 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' (1897ई.) के प्रकाशन से माना जाता है। मिश्रबंधु विनोद (1913ई.) में इस आलोचना दृष्टि को महत्व दिया गया। इसी क्रम में इसमें कवियों के काव्य के संबंध में समीक्षकों के मतों का प्रकाशन किया गया। कवियों की उपलब्ध एवं अनुपलब्ध कृतियों के विवरण के साथ ही उनके जीवन वृत्त को भी प्रकाशित किया गया। चंद्रधरशर्मा गुलेरी ने एक गंभीर आलोचना पत्र निकाला 'समालोचक' (1902ई.)। यह पत्र कुछ समय ही चल सका पर इससे हिंदी आलोचना का स्तर ऊँचा हो गया। परिचयात्मक आलोचना का अस्तित्व भारतेंदु युग से ही है। द्विवेदी युग में इस आलोचना पद्धति का स्वरूप स्थिर हुआ। इसका श्रेय महावीर प्रसाद द्विवेदी एवं उनके द्वारा संपादित पत्रिका 'सरस्वती' को जाता है। इस आलोचना पद्धति के अंतर्गत किसी ग्रंथ या शोध प्रबंध का पूर्ण परिचय देने की कोशिश की जाती थी। आलोच्य ग्रंथ/ प्रबंध 'किस विषयवस्तु पर आधारित है, इसकी लेखन शैली क्या है, यह किसी के लिए उपयोगी है या नहीं, इस तरह के ग्रंथ किसी के लिए आवश्यक हैं या नहीं, जीवन के किसी दृष्टिकोण में कुछ नवीनता लाने में सक्षम हैं या नहीं, इसकी भाषा और सर्जनात्मकता दोषरहित है या नहीं'- इन सब तथ्यों का परीक्षण और उसके बाद ग्रंथ का विश्लेषण ही परिचयात्मक आलोचना का आधार हैं। आचार्य द्विवेदी की महत्ता को आचार्य शुक्ल ने स्वीकारा है। आलोचना विधा का अध्ययन आचार्य शुक्ल को ही केंद्र में रखकर किया जाता है। व्याख्यात्मक आलोचना का सूत्रपात बदरीनारायण चौधरी प्रेमघन ने किया। बालकृष्ण भट्ट और बालमुकुंद गुप्त ने इस परंपरा को आगे बढ़ाया। इसके तहत किसी भी कृति की मूल्यपरक आलोचना की जाती है। ये मूल्य नैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, राष्ट्रीय एवं सौंदर्यपरक हो सकते हैं। यह आलोचना विधा का आरंभिक चरण था जिसे शुक्ल पूर्व हिंदी आलोचना कहा जाता है। समर्थ सैद्धांतिक आलोचक के रूप में आचार्य रामचंद्र शुक्ल इस क्षेत्र में उभरे। उनकी समर्थता का प्रमाण है कि आलोचना साहित्य को अध्ययन की दृष्टि से शुक्ल पूर्व युग, शुक्ल युग और शुक्लोत्तर युग में विभाजित किया गया। यह घटना छायावाद युग में घटित हुई। 1908ई. तक आलोचना का स्वरूप सामाजिक-सांस्कृतिक रहा। इसी वर्ष रामचंद्र शुक्ल का आलोचनात्मक निबंध 'कविता क्या है' सरस्वती में प्रकाशित हुआ। हिंदी की सैद्धांतिक आलोचना को कई विद्वानों ने प्रस्तुत किया, जो इस प्रकार हैं- गुलाबराय (नवरस, 1920ई.), श्यामसुंदरदास (साहित्यालोचन, 1922ई.), रामचंद्र शुक्ल (काव्य में रहस्यवाद, 1929ई.) इत्यादि। इन विद्वानों ने भारतीय और पाश्चात्य आलोचना सिद्धांतों का एक समन्वित स्वरूप हिंदी साहित्य संसार के लिए बनाया। इसमें रामचंद्र शुक्ल का योगदान सबसे अधिक रहा। आलोचकों ने इनकी परंपरा को आगे बढ़ाया। हजारीप्रसाद द्विवेदी, विश्वनाथप्रसाद मिश्र, नंददुलारे वाजपेयी, रामविलास शर्मा, डॉ. सत्येंद्र, नगेंद्र, नामवर सिंह इत्यादि हिंदी साहित्य के प्रमुख आलोचक रहे हैं। शुक्लोत्तर युग में समीक्षा-दृष्टि पूर्ण विकसित हो चुकी थी। उन दृष्टियों के

आधार पर आलोचना के स्वरूप का विकास हुआ। स्वच्छंदतावादी, ऐतिहासिक, मनोविश्लेषणात्मक, मार्क्सवादी और नई समीक्षा इत्यादि आलोचना की शाखाओं के फूटने से इस विधा की सघनता बढ़ी।

बोध प्रश्न

- आलोचना, साहित्य को गतिमान करने हेतु क्यों आवश्यक है?

2.4 पाठ सार

प्रिय छात्रो! इस इकाई में आप ने अकाल्पनिक गद्य विधाओं का अध्ययन किया है। जीवनी और आत्मकथा व्यक्ति के जीवन चरित्र से संबंधित विधाएँ हैं। इनका संबंध इतिहास से भी है। जब भी कोई जीवन चरित्र लिखा जाता है तब उस व्यक्ति के समय की आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों का उल्लेख भी किया जाता है। अपनी आत्मकथा व्यक्ति स्वयं लिख सकता है पर जीवनी लिखने के लिए उसे किसी अन्य व्यक्ति के चरित्र का चुनाव करना होता है। रेखाचित्र और संस्मरण भी परस्पर संबद्ध है। रेखाचित्रकार किसी की अंतरंगता में प्रवेश नहीं कर सकता है। वह किसी का भी बाह्य रेखा ही खींच सकता है। रेखाचित्र की रचना निर्लिप्त और तटस्थ होकर की जाती है। संस्मरण साहित्य गत्यात्मक है। इसमें भाव-संचरण होता रहता है। संस्मरण लेखक अंतःअनुभूति से विभोर होकर अपनी स्मृतियों का अंकन करता है। यात्रा वृत्तांत पर्यटन से जुड़ा हुआ है और रिपोर्ताज पत्रकारिता से संबंधित है। डायरी और पत्र बेहद निजी दस्तावेज़ हैं। प्रायः इन्हें प्रकाशन के निमित्त नहीं लिखा जाता लेकिन महत्वपूर्ण पत्र और डायरी प्रकाशित होती हैं। इनसे साहित्य समृद्ध हुआ है। साक्षात्कार विधा भी ज्ञानोपयोगी है। इन सभी विधाओं का उपयोग कथा साहित्य में किसी-न-किसी रूप में किया जाता है। 'आलोचना' साहित्य की मुख्य विधा है और साहित्य की गुणवत्ता का मापक भी। विद्वानों के अनुसार देवराज द्वारा लिखित पुस्तक 'छायावाद का पतन' (1948ई.) से आलोचना विधा में गुणात्मक परिवर्तन आया। आलोचना विधा के कुछ प्रमुख हस्ताक्षर हैं- नामवर सिंह, विजयदेवनारायण साही, रघुवंश, विद्यानिवास मिश्र, इंद्रनाथ मदान, रमेशचंद्र शाह, सावित्री सिन्हा, निर्मला जैन इत्यादि।

2.5 पाठ की उपलब्धियाँ

इस इकाई के अध्ययन से निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त हुए हैं -

1. सर्जनात्मक गद्य का वास्तविक रूप जीवनी-आत्मकथा, संस्मरण-रेखाचित्र-यात्रावृत्तांत, रिपोर्ताज में ही देखने को मिलता है।
2. स्मृति आधारित इन नई विधाओं को अकाल्पनिक गद्य विधाएँ कहा जाता है, क्योंकि इनमें कथा साहित्य की तरह कल्पना की छूट नहीं होती।

3. महादेवी वर्मा के रेखाचित्र और संस्मरणों की सर्जनात्मकता को रामस्वरूप चतुर्वेदी ने आधुनिक काल के 'गद्य काल' नामकरण की सार्थकता का आधार माना है।
4. आधुनिक हिंदी गद्य की सभी अकाल्पनिक गद्य विधाओं का आधार निबंध साहित्य रहा है।

2.6 शब्द संपदा

1. निज = अपना
2. निजता = गोपनीयता
3. सरोष = रोष के साथ, आक्रोश

2.7 परीक्षार्थ प्रश्न

खंड (अ)

दीर्घ श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 500 शब्दों में दीजिए।

1. जीवनी के स्वरूप विकास का परिचयात्मक विवरण दीजिए।
2. हिंदी में आत्मकथा साहित्य के आरंभ और विकास की चर्चा कीजिए।
3. रेखाचित्र और संस्मरण आपस में किस प्रकार संबंधित हैं? स्पष्ट कीजिए।
4. हिंदी साहित्य में आलोचना विधा के स्वरूप विकास को रेखांकित कीजिए।

खंड (ब)

लघु श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 500 शब्दों में दीजिए।

1. आत्मकथा और जीवनी में क्या अंतर है? स्पष्ट करें।
2. रेखाचित्र और संस्मरण किसे कहते हैं? दोनों एक बीच निहित अंतर को स्पष्ट कीजिए।
3. पत्र, डायरी, यात्रावृत्तांत और रिपोर्ताज विधा का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
4. साक्षात्कार की साहित्यिक उपयोगिता पर प्रकाश डालिए।

खंड (स)

I. सही विकल्प चुनिए -

1. द्विवेदी युग में आलोचना की कितनी पद्धति विकसित थी? ( )

   (अ) 1 (आ) 5 (इ) 4 (ई) 2

2. मेरी तिब्बत यात्रा के रचनाकार कौन हैं? ( )

   (अ) दिनकर (आ) चंद्रधर शर्मा गुलेरी (इ) राहुल सांकृत्यायन (ई) कोई नहीं

3. व्याख्यात्मक आलोचना का सूत्रपात किसने किया? ( )

   (अ) बदरीनारायण चौधरी प्रेमघन (आ) बलकृष्ण भट्ट (इ) द्विवेदी (ई) शुक्ल

II. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए -

1. ..... बंगला उपन्यासकार शरतचंद्र की जीवनी है।
2. बच्चन की आत्मकथा ....., ..., ... और .....है।
3. .....साक्षात्कार विधा की सबसे चर्चित पुस्तक है।
4. 'शिव शंभु के चिट्ठे' ..... विधा की रचना है।

III. सुमेल कीजिए -

1. प्रेमचंद: कलम के सिपाही	(अ) रामविलास शर्मा, 1969
2. निराला की साहित्य साधना	(आ) विष्णु प्रभाकर, 1974
3. सुमित्रानंदन पंत:जीवन और साहित्य	(इ) अमृतराय, 1962
4. आवारा मसीहा	(ई) शांति जोशी, 1970, 1977

2.8 पठनीय पुस्तकें

1. हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास : रामस्वरूप चतुर्वेदी
2. हिंदी साहित्य का इतिहास : सं. नगेंद्र
3. साहित्यिक विधाएँ - पुनर्विचार : हरिमोहन
4. हिंदी का गद्य साहित्य : रामचंद्र तिवारी

इकाई 3 : रामचंद्र शुक्ल :एक परिचय

रूपरेखा

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 मूल पाठ : रामचंद्र शुक्ल : एक परचिय
3.3.1 जीवन परिचय
3.3.2 रचना यात्रा
3.3.3 आचार्य शुक्ल की निबंध कला
3.3.4 शुक्ल जी की समीक्षा पद्धति
3.3.5 शुक्ल जी की भाषा-शैली
3.3.6 हिंदी साहित्य में शुक्ल जी का स्थान
3.4 पाठ सार
3.5 पाठ की उपलब्धियाँ
3.6 शब्द संपदा
3.7 परीक्षार्थ प्रश्न
3.8 पठनीय पुस्तकें

3.1 प्रस्तावना

आचार्य रामचंद्र शुक्ल एक बहुमुखी प्रतिभा के साहित्यकार हैं। जिस क्षेत्र में भी अपनी लेखनी चलाई उसपर उन्होंने अपनी अमिट छाप छोड़ी। आधुनिक हिंदी के विकास क्रम में आचार्य रामचंद्र शुक्ल का व्यक्तित्व अनेक दृष्टियों से अप्रतिम है। शुक्ल जी शायद हिंदी के पहले समीक्षक हैं जिन्होंने वैविध्यपूर्ण जीवन के ताने-बाने में गुंफित काव्य के गहरे और व्यापक लक्ष्यों का साक्षात्कार करने का वास्तविक प्रयत्न किया है। उन्होंने भाव या रस को काव्य की आत्मा माना है।

शुक्ल जी ने साहित्य में विचारों के क्षेत्र में अत्यंत महत्वपूर्ण कार्य किया है। नलिनविलोचन शर्मा ने अपनी पुस्तक 'साहित्य का इतिहास दर्शन' में कहा है कि शुक्ल जी से बड़ा समीक्षक संभवतः उस युग में किसी भी भारतीय भाषा में नहीं थे, और यह बात विचार करने पर सत्य प्रतीत होती है। ऐसा लगता है कि समीक्षक के रूप में शुक्ल जी अब भी अपराजेय हैं। अपनी समस्त सीमाओं के बावजूद उनका पैनापन, उनकी गंभीरता एवं उनके बहुत से निष्कर्ष एवं स्थापनाएँ किसी भी भाषा के समीक्षा साहित्य के लिए महत्वपूर्ण हैं। इस इकाई में आप आचार्य रामचंद्र शुक्ल के व्यक्तित्व और कृतित्व के आयामों का अध्ययन करेंगे।

3.2 उद्देश्य

प्रिय छात्रो !इस इकाई के अध्ययन से आप-

- आचार्य रामचंद्र शुक्ल के व्यक्तित्व से परिचित हो सकेंगे।
- शुक्ल जी की रचनाओं से संबंधित जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- शुक्ल जी की रचनाओं की विशेषताओं से अवगत हो सकेंगे।
- शुक्ल जी की समीक्षा पद्धति से परिचित हो सकेंगे।
- हिंदी साहित्य में आचार्य रामचंद्र शुक्ल के महत्व को जान सकेंगे।

3.2 मूल पाठ : रामचंद्र शुक्ल : एक परिचय

3.2.1 जीवन परिचय

हिंदी के महान रचनाकार और आलोचक आचार्य रामचंद्र शुक्ल का जन्म 1884 ई .की आश्विन शुक्ल पूर्णिमा को उत्तर प्रदेश के बस्ती जिले के अगोना ग्राम में हुआ। उनके पूर्वज उत्तर प्रदेश के गोरखपुर जिले के राप्ती नदी के किनारे स्थित 'भेड़ी' ग्राम के निवासी थे। इनके पिता का नाम चंद्रबली शुक्ल था। वे एक तीव्र बुद्धि तथा पढ़ाई में मन लगाने वाले छात्र थे। अतः वे जल्दी ही काशी के 'क्वींस' कालेजियट स्कूल से एंट्रेंस पास कर सरकारी नौकरी में लग गए।

सन् 1880 ई .में शुक्ल जी जब केवल चार वर्ष के थे, उनके पिता चंद्रबली शुक्ल हमीरपूर की राठ तहसील में सूपरवाइज़र कानूनगो हो गए। राठ में ही बालक रामचंद्र शुक्ल का पंडित गंगा प्रसाद के हाथों अक्षरारंभ हुआ। शुक्ल जी को शुरू से ही मातृभाषा हिंदी के प्रति लगाव था किंतु उस समय उर्दू-फारसी से बहुत अधिक लगाव था। रामचंद्र शुक्ल ने अपने पिता से छिप-छिपकर हिंदी की पुस्तकें पढ़ा करते थे। इस तरह राठ में लगभग चार वर्षों तक आरंभिक शिक्षा के उपरांत उन्हें मिर्जापुर जाने का अवसर मिला। इसी बीच पं .रामचंद्र शुक्ल की माता स्वर्ग सिधार गईं। मातृ सुख के अभाव के साथ-साथ विमाता से मिलने वाले दुःख ने उनके व्यक्तित्व को अल्पायु में ही परिपक्व बना दिया।

अध्ययन के प्रति लगनशीलता शुक्ल जी में बाल्यकाल से ही थी, किंतु इसके लिए उन्हें अनुकूल वातावरण न मिल सका। मिर्जापूर के लंदन मिशन स्कूल से उन्होंने 1901 ई .में स्कुल फाइनल परीक्षा उत्तीर्ण की। उनके पिता की यह इच्छा थी कि शुक्ल जी कचहरी में जाकर दफतर का काम सीखें, किंतु शुक्ल जी उच्च शिक्षा प्राप्त करना चाहते थे। उनके पिता ने उन्हें वकालत पढ़ने के लिए इलाहाबाद भेजा पर उनकी रुचि साहित्य में थी। इसका परिणाम यह हुआ कि वे उसमें अनुत्तीर्ण रहे। शुक्ल जी के पिजाजी ने उन्हें नायब तहसीलदारी की जगह दिलाने का प्रयास किया, किंतु उनकी स्वभिमानी प्रकृति के कारण यह संभव न हो सका। परिक्षाओं की सफलता या असफलता से अलग वे बराबर साहित्य, मनोविज्ञान, इतिहास आदि के अध्ययन में लगे रहे। मिर्जापुर के पंडित केदारनाथ पाठक, बदरी नारायण चौधरी 'प्रेमघन' के

संपर्क में आकर उनके अध्ययन को और बल मिला। यहीं पर उन्होंने हिंदी, उर्दू, संस्कृत एवं अंग्रेजी के साहित्य का गहन अध्ययन प्रारंभ किया, जिसका उपयोग वे आगे चलकर अपने लेखन में जमकर कर सके।

मिर्जापुर के तत्कालीन कलेक्टर ने रामचंद्र शुक्ल को एक कार्यालय में नौकरी भी दे दी थी, पर हेड क्लर्क से उनके स्वाभिमानी स्वभाव की पटी नहीं। उसे उन्होंने छोड़ दिया। फिर कुछ दिनों तक रामचंद्र शुक्ल मिर्जापुर के मिशन स्कूल में चित्रकला के अध्यापक रहे। सन् 1909-1910 ई .के लगभग वे 'हिंदी शब्द सागर' के संपादन में वैतनिक सहायक के रूप में काशी आ गए। उसके बाद काशी नागरी प्रचारिणी सभा के विभिन्न कार्यों से जुड़े रहें। चंद्रशेखर शुक्ल ने सच ही कहा है कि मिर्जापुर को शुक्ल जी के विकास और निर्माण की भूमि कहा जाए तो काशी को उनका कर्म क्षेत्र कहने में कोई अतिरंजना नहीं।

'हिंदी शब्द-सागर' का संपादन जिस तत्परता और मनोयोग से शुक्ल जी ने किया है, उसे बाबु श्यामसुन्दर दास ने 'मेरी आत्म कहानी' में इन शब्दों में कहा है - "यदि यह कहा जाय कि शब्द सागर की उपयोगिता एवं सर्वांगीणता का अधिकांश श्रेय पं .रामचंद्र शुक्ल को ही है तो इसमें कोई अत्युक्ति न होगी। एक प्रकार से यह उन्हीं के परिश्रम, विद्वत्ता और विचारशीलता का फल है। अतः यह भी सच है कि 'कोश' ने शुक्ल जी को बनाया और 'कोश' को शुक्ल जी ने। सन् 1919 ई .में शुक्ल जी ने काशी हिंदू विश्वविद्यालय में अध्यापन कार्य शुरू किया। जहाँ बाबू श्याम सुंदर दास की मृत्यु के बाद 1937 से जीवन के अंतिम काल) 1941) तक विभागाध्यक्ष के पद पर रहें। 2 फरवरी, 1941 ई .को हृदय की गति रूक जाने से शुक्ल जी का देहांत हो गया।

बोध प्रश्न

- 'हिंदी शब्द सागर' का संपादन किसने किया?

3.2.2 रचना यात्रा

रामचंद्र शुक्ल हिंदी साहित्य के मूर्धन्य आलोचक, श्रेष्ठ निबंधकार, निष्पक्ष इतिहासकार, शैलीकार और युग-प्रवर्तक आचार्य थे। इन्होंने सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक दोनों प्रकार की आलोचनाएँ लिखीं। इनकी विद्वत्ता के कारण ही 'हिंदी शब्द सागर' के संपादन कार्य में सहयोग के लिए इन्हें बुलाया गया। इन्होंने 19 वर्षों तक 'काशी नागरी प्रचारिणी' पत्रिका का संपादन भी किया। इन्होंने अंग्रेजी और बंगला में कुछ अनुवाद भी किए। आलोचना इनका मुख्य और प्रिय विषय था। शुक्ल जी की प्रमुख रचनाएँ इस प्रकार हैं-

मौलिक कृत्तियाँ

आलोचनात्मक ग्रंथ :सूर, तुलसी, जायसी पर की गई आलोचनाएँ, काव्य में रहस्यवाद, काव्य में अभिव्यंजनावाद, रसमीमांसा

निबंधात्मक ग्रंथ :उनके निबंध चिंतामणि नामक ग्रंथ के दो भगों में संग्रहीत है। चिंतामणि के निबंधों के अतिरिक्त शुक्लजी ने कुछ अन्य निबंध भी लिखे हैं, जिनमें मित्रता, अध्ययन आदि

निबंध सामान्य विषयों पर लिखे गए निबंध हैं। मित्रता निबंध जीवनोपयोगी विषय पर लिखा गया है, जिसमें शुक्लजी की लेखन शैली की विशेषताएँ झलकती हैं। क्रोध निबंध में उन्होंने सामाजिक जीवन में क्रोध का महत्व, कारण, उसकी मानसिकता आदि अनेक पहलुओं का विश्लेषण किया है।

ऐतिहासिक ग्रंथ -:हिंदी साहित्य का इतिहास

अनदित कृतियाँ -:शुक्ल जी की अनुदित कृतियाँ कई हैं। 'शशांक' बंगला से अनुवादित उपन्यास है। इसके अतिरिक्त उन्होंने अंग्रेजी से 'विश्वप्रपंच', 'आदर्श जीवन', 'मेगस्थनीज का भारतवर्षीय वर्णन', 'कल्पना का आनंद' आदि रचनाओं का अनुवाद किया।

संपादित कृतियाँ -:हिंदी शब्दसागर, नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भ्रमरगीत सार, सूर, तुलसी जायसी ग्रंथावली

निबंध : शुक्ल जी के निबंधों को इस प्रकार वर्गीकृत किया जा सकता है -

(1) **सैद्धांतिक आलोचनात्मक निबंध** - कविता क्या है, काव्य में लोकमंगल की साधनावस्था, साधारणीकरण और व्यक्ति वैचित्र्यवाद आदि निबंध सैद्धांतिक आलोचना के अंतर्गत आते हैं। आलोचना के साथ-साथ अन्वेषण और गवेषण करने की प्रवृत्ति भी शुक्ल जी में पर्याप्त मात्रा में है।

(2) **व्यावहारिक आलोचनात्मक निबंध** - भारतेंदु हरिश्चंद, तुलसी का भक्ति मार्ग, मानस की धर्म भूमि आदि निबंध व्यावहारिक आलोचना के अंतर्गत आते हैं।

(3) **मनोवैज्ञानिक निबंध** - मनोवैज्ञानिक निबंधों में करुणा, श्रद्धा भक्ति, लज्जा, ग्लानि, क्रोध, लोभ और प्रीति आदि भावों तथा मनोविकारों पर लिखे गए निबंध आते हैं। शुक्ल जी के ये मनोवैज्ञानिक निबंध सर्वधा मौलिक हैं। शुक्ल जी के निबंधों में उनकी अभिरुचि, विचारधारा, अध्ययन आदि को देखा जा सकता है। वे लोकादर्श के पक्के समर्थक थे। इस समर्थन की छाप उनकी रचनाओं में सर्वत्र मिलती है।

3.2.3 आचार्य शुक्ल की निबंध कला

आचार्य रामचंद्र शुक्ल हिंदी के सर्वश्रेष्ठ निबंधकार माने जाते हैं। 'चिंतामणि' में संकलित निबंधों में शुक्ल जी की निबंध कला का पूर्ण उत्कर्ष दिखाई देता है। इनके निबंधों में हृदय और बुद्धि का समन्वय दिखाई देता है, वैसे तो इनके निबंध विचार प्रधान ही अधिक है तथा उनमें हृदय तत्व को भी स्थान-स्थान पर देखा जाता है। भाषा की पूर्ण-शक्ति का विकास निबंधों में दिखाई पड़ता है। शुक्ल जी के अनुसार "शुद्ध विचारात्मक निबंधों का चरम-उत्कर्ष वहीं होता है जहाँ एक-एक पैराग्राफ में विचार दबा-दबाकर ठूँसे गए हैं और एक-एक वाक्य इसी ससंबद्ध विचार खंड के लिए हो।" शुक्ल जी की निबंध कला में निम्नलिखित विशेषताएँ देखने को मिलती हैं -

1. **विचारों की संपन्नता और सुसंबद्धता** -:

शुक्ल जी के निबंध मौलिक विचारों से संपन्न हैं। उनमें विचारों की गहनता और प्रोढ़ता के दर्शन होते हैं। उनका प्रत्येक वाक्य सुविचारित, सुचिंतित तथा व्यंजक होता है। इस प्रकार उनके निबंधों का प्रत्येक अनुच्छेद गंभीर विचारों से ओत-प्रोत दिखाई देता है। उनके निबंधों की प्रमुख विशेषता सुसंबद्धता है।

2. **मौलिक चिंतन -:**

शुक्ल जी एक मौलिक चिंतक हैं। मनोविकार संबंधी निबंधों में वे जिस मनोविकार का वर्णन करते हैं, उसके प्रत्यक पक्ष पर मौलिक ढंग से विचार करते हैं। उसका विश्लेषण इतने सूक्षम ढंग से करते हैं कि उस मनोविकार का प्रत्येक पक्ष उजागर हो जाता है। कभी-कभी तो ऐसा लगता है कि मनोविकारों के विश्लेषण में वे मनोविज्ञान के पंडितों को भी मात दे रहे हैं। इसी प्रकार काव्य समीक्षा संबंधी निबंधों में उनका चिंतन भी मौलिक दिखाई पड़ता है। अतः उन्होंने अपने निबंध 'कविता क्या है' में काव्य की परिभाषा बहुत ही मौलिक ढंग से की है। जैसे - "हृदय की इसी मुक्ति की साधना के लिए मनुष्य की वाणी जो शब्द विधान करती आई है, उसे कविता कहते हैं।"

3. **विचार विश्लेषण एवं विषय विवेचन क्षमता** -:

शुक्ल जी के निबंध विचार प्रधान होते हैं। विषय के अनुरूप विश्लेषण की अद्‌भुत क्षमता उनके निबंधों की प्रमुख विशेषता कही जा सकती है। शुक्ल जी ने भारतीय काव्यशास्त्र और पाश्चात्य समीक्षा-शास्त्र के गहन अनुशीलन के उपरांत समीक्षा की एक नई पद्धति विकसित की, जिसमें सभी विचारों की सम्यक जाँच करने के साथ-साथ वे अपना मौलिक चिंतन भी योजनापूर्वक प्रस्तुत करते हैं।

4. **भाषा की पूर्ण शक्ति का विकास -:**

शुक्ल जी के निबंधों की भाषा विषय के अनुरूप प्रौढ़, गंभीर एवं साहित्यिकता का पुट लिए हुए हैं। उनमें भाव प्रकाशन की अद्‌भुत क्षमता है। प्रत्येक शब्द ऐसा जड़ा हुआ है कि उसे हटा पाना असंभव है, इसी प्रकार उनकी वाक्य रचना निर्दोष व्याकरण उपयुक्त है। शुक्ल जी की भाषा की शक्ति का परिचय मनोविकारों की परिभाषा में दिखाई पड़ता है। जहाँ सूत्रात्मक शैली का प्रयोग है। संदर्भ के अनुसार भाषा का प्रयोग पाया जाता है।

5. **प्रकृति प्रेम -:**

शुक्ल जी के निबंधों में प्राकृतिक प्रेम का परिचय अनेक स्थानों पर देखने को मिलता है। ऐसे स्थलों पर उनके हृदय का उल्लास देखते ही बनता है। निम्नलिखित पंक्तियों में उनके प्रकृति प्रेम की व्यंजन हुई है- "आँखें खोलकर देखो खेत कैसे लहलहा रहे हैं, नाले झाड़ियों के बीच कैसे बह रहे हैं, टेसू के फूल से वनस्थली कैसी लाल हो रही है, चैपायों के झुंड चरते हैं, चरवों तान लड़ा रहे हैं और अमराइयों के बीच में गाँव झाँक रहे हैं।"

6. **हास्य एवं व्यंग्य की प्रधानता** -:

शुक्ल जी के निबंध विचार प्रधान होते हैं किंतु भावाकर्षक स्थलों पर उनका हृदय पक्ष प्रबल हो जाता है। यही कारण है कि विषय निरूपण करते समय जहाँ तहाँ शुक्ल जी ने अपने निबंधों में हास्य-व्यंग्य करते हुए वे कहते हैं -"मोटे आदमियो! तुम ज़रा से दुबले हो जाते अपने अंदेश से ही सही, तो न जाने कितनी ठठरियों पर मांस चढ़ जाता।"

7. **देश प्रेम एवं मानव प्रेम -:**

शुक्ल जी के निबंधों में देश प्रेम और मानव प्रेम को अनेक स्थलों में देखा जा सकता है। शुक्ल जी का देश प्रेम दिखावा मात्र नहीं है अपितु उनके हृदय का सच्चा भाव झलकता दिखाई देता है। वे यह मानते हैं कि जिसे अपने देश से प्रेम होगा वह अपने देश के मनुष्य, पशु, पक्षी, लता, पेड़, पौधे आदि सबसे प्रेम करेगा। शुक्ल जी के शब्दों में - "यदि किसी को अपने देश से प्रेम है तो उसे अपने देश के मनुष्य, पशु-पक्षी, लता-पेड़-पत्ते-वन-पर्वत-नदी व निर्झर सबसे प्रेम होगा। जो यह भी नहीं जानते कि कोयल किस चिड़िया का नाम है, जो यह भी नहीं जानते कि किसानों की झोपड़ी के अंदर क्या हो रहा है, वे यदि इस बने ठने मित्रों के बीच प्रत्येक भारतवासी की औसत आमदनी का पता कर देश-प्रेम का दावा करें तो उनसे पूछना चाहिए कि बिना परिचय का यह प्रेम कैसा?" शुक्ल जी का दृष्टिकोण मानवतावादी था। उन्होंने अपने निबंध 'मानस की धर्म-भूमि' में मानवतावाद की बहुत ही सुंदर व्याख्या की है।

अतः हम कह सकते हैं कि आचार्य रामचंद्र शुक्ल के निबंध विचार प्रधान हैं। हिंदी साहित्य में इनके निबंध वस्तुतः मानदंड बन गए हैं। अतः शुक्ल जी की निबंध कला अप्रतिम, अद्वितीय और सर्वश्रेष्ठ है।

बोध प्रश्न

- कविता के संबंध में रामचंद्र शुक्ल ने क्या कहा?
- रामचंद्र शुक्ल के निबंध किस प्रकार के हैं?

3.2.4 आचार्य रामचंद्र शुक्ल की समीक्षा पद्धति

हिंदी समालोचना का प्रारंभ वैसे तो शुक्ल जी से पूर्व भारतेंदु काल में ही हो चुका था पर उसको पोषित कर उसके स्वरूप को वैज्ञानिक बनाने का श्रेय आचार्य रामचंद्र शुक्ल को ही है। शुक्ल जी हिंदी के पहले समालोचक थे, जिन्होंने भारतीय और पाश्चात्य समालोचना का समन्वय किया। उन्होंने भारतीय समालोचना सिद्धांतों का पुनर्निर्माण वैज्ञानिक आधार पर किया। उन्होंने प्राचीन और नवीन काव्य सिद्धांतों के समन्वय पर अपनी गूढ़ सम्मति देकर समालोचना के नए सिद्धांत निश्चित किए। शुक्ल जी की समालोचना पद्धति व्याख्यात्मक और निर्णायक दोनों के बीच की है।

शुक्लजी की समालोचना पद्धति की विशेषताएँ

आचार्य रामचंद्र शुक्ल की समीक्षा पद्धति की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित मानी जा सकती हैः-

1. शुक्ल जी ने किसी कृति के भावपक्ष और कलापक्ष की सूक्ष्मातिसूक्षम मनोवैज्ञानिक व्याख्या समान रूप से की है। कवि की अन्तवृत्तियों की खोज करने की पद्धति भी इनकी समीक्षा पद्धति में पाई जाती है।

2. शुक्ल जी की मान्यताएँ पाश्चात्य एवं भारतीय विचारकों के समन्वय से निर्मित हुई हैं, फिर भी उसमें अपनी मौलिकता है। उन्होंने कृतियों की आलोचना में अपनी मान्यताओं को कसौटी बनाया है।

3. शुक्ल जी में निर्णय करने की प्रवृत्ति भी पाई जाती है।

4. शुक्ल जी की समीक्षा में बात को अधिक से अधिक स्पष्ट करने की प्रवृत्ति दिखाई देती है। इसके लिए वे नाना प्रकार के उदाहरण देते हैं और ऐसे संदर्भों का सहारा लेते हैं जो सर्व सुलभ हों।

बोध प्रश्न

- शुक्ल जी की समालोचना की विशेषता क्या है?

3.2.5 शुक्ल जी की भाषा-शैली

आचार्य रामचंद्र शुक्ल हिंदी के सर्वश्रेष्ठ निबंधकार माने जाते हैं। भाषा और शैली की दृष्टि से उनके निबंध अत्यंत उच्च कोटि के हैं। विचारों के विवेचन, विषय निरूपण और सिद्धांत प्रतिपादन में उनकी भाषा-शैली अत्यंत सक्षम और सशक्त है। उनके निबंधों की भाषा और शैली संबंधित विशेषताएँ निम्नलिखित हैं -

शुक्ल जी की भाषा संबंधी विशेषताएँ

1. शुक्ल जी की भाषा विशुद्ध साहित्यिक परिनिष्ठित हिंदी है, जिसमें संस्कृत के तत्सम शब्दों की प्रमुखता है।
2. शुक्ल जी की भाषा में अधिकतर शब्द तत्सम शब्द हैं, जिसमें बीच-बीच में तद्भव या देशज शब्द नगीनों की भाँति जड़ दिए गए हैं। जैसे -छेड़-छाड़, गड़बड़-झाला, सैंत-मैंत, धड़ा-धड़ आदि।
3. उनका भाषा विषयक दृष्टिकोण अत्यंत उदार था, उन्होंने संस्कृत शब्दों के साथ-साथ अरबी फारसी और अंग्रेजी के शब्दों का भी प्रयोग किया है। जैसे -शैकीन, बदतमीजी, बेवकूफी, इनट्यूशन, इमेज आदि।
4. शुक्ल जी का वाक्य विन्यास पूर्णतः व्याकरण सम्मत और सुगठित है। अंग्रेजी ढंग की वाक्य रचना से उनकी भाषा मुक्त है।

5. शुक्ल जी की भाषा में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों का प्रयोग देखा जा सकता है। लाक्षणिक भाषा का प्रयोग भी दिखाई देता है।

बोध प्रश्न

- शुक्ल जी की भाषा में किस प्रकार के शाब्दिक प्रयोग को देखा जा सकता है?

शुक्ल जी की शैली संबंधी विशेषताएँ

शुक्ल जी ने अपने निबंधों में विषय के अनुरूप विविध शैलियों का प्रयोग किया है।

1. **आलोचात्मक शैली** -:इस शैली का प्रयोग शास्त्रीय समीक्षा संबंधी निबंधों में किया है। यह चिंतन प्रधान शैली है, जिसमें तर्क और विश्लेषण की प्रधानता है। चिंतन की गम्भीरता तथा भाषा की सुव्यवस्था इस शैली में दिखाई पड़ती है।
2. **गवेषणात्मक शैली** -:सैद्धांतिक समीक्षा संबंधी निबंधों में इस शैली के दर्शन होते हैं, इसमें विषय प्रतिपादन की अद्‌भुत क्षमता है।
3. **भावात्मक शैली** -:शुक्ल जी के निबंध में हृदय और बुद्धि का संतुलित समन्वय हुआ है। चिंतन की गंभीरता तथा भावात्मकता का समावेश दोनों देखा जाता है।
4. **हास्य-व्यंग्यपूर्ण शैली** -:शुक्ल जी के निबंधों में जगह-जगह पर हास्य-व्यंग्य का पुट पाया जाता है। सामाजिक विसंगतियों को व्यक्त करने के लिए वे इस शैली का प्रयोग करते हैं।
5. **समास शैली** -:शुक्ल जी ने अपने साहित्य में जगह-जगह में समास शैली का प्रयोग किया है।
6. **संस्कृत बहुला अलंकृत शैली** -:शुक्ल जी के निबंधों में कहीं संस्कृत बहुल पदों वाली अलंकृत का भी प्रयोग देखा जाता है। अतः संक्षेप में हम यह कह सकते हैं कि शुक्ल जी की भाषा-शैली उनके व्यक्तित्व के अनुरूप है। विषय के अनुरूप उन्होंने भाषा और शैली को परिवर्तित किया है।

बोध प्रश्न

- शुक्ल जी के निबंधों में किस प्रकार की शैलियों को देखा जा सकता है?

3.2.6 आचार्य रामचंद्र शुक्ल का हिंदी साहित्य में स्थान

बहुमुखी प्रतिभा के धनी आचार्य रामचंद्र शुक्ल को हिंदी साहित्य के उन्नायकों में विशिष्ठ स्थान प्राप्त है। इन्होंने निबंधकार, समालोचक, संपादक, अनुवादक, कोशकार आदि विभिन्न रूपों में हिंदी साहित्य को समृद्ध किया है।

आचार्य शुक्ल को हिंदी के मनोवैज्ञानिक निबंध लेखन परंपरा का जनक माना जाता है। उन्होंने हिंदी-साहित्य में इतिहास लेखन की परंपरा की शुरूआत की। इस दृष्टि से उनके 'हिंदी-साहित्य का इतिहास' को आज भी विशिष्ट स्थान प्राप्त है।

शुक्ल जी शायद हिंदी के पहले समीक्षक हैं, जिन्होंने वैविध्यपूर्ण जीवन के ताने बाने में गुंफित काव्य के गहरे और व्यापक लक्ष्यों का साक्षात्कार करने का वास्तविक प्रयत्न किया है।

उन्होंने भाव और रस को काव्य की आत्मा माना है। जायसी, सूर और तुलसी की समीक्षाओं द्वारा शुक्ल जी ने व्यावहारिक आलोचना का उच्च प्रतिमान प्रस्तुत किया है। इन आलोचनाओं में शुक्ल जी की काव्यमर्मज्ञता, जीवनविवेक, विद्वत्ता और विश्लेषण क्षमता का असाधारण प्रमाण मिलता है।

शुक्ल जी के मनोविकार संबंधी निबंध में भावों का मनोवैज्ञानिक रूप स्पष्ट रूप से देखा जाता है तथा मानव जीवन में उनकी आवश्यकता, मूल्य और महत्व का निर्धारण हुआ है। शुक्ल जी का 'हिंदी साहित्य का इतिहास' हिंदी साहित्य का एक आकर ग्रंथ कहा जा सकता है। अतः यह कह सकते हैं कि शुक्ल जी बहुमुखी प्रतिभा के साहित्यकार थे। जिस क्षेत्र में भी कार्य किया उस पर उन्होंने अपनी अमिट छाप छोड़ी।

3.4 पाठ सार

रामचंद्र शुक्ल हिंदी के प्रमुख साहित्यकार के रूप में माने जाते हैं। इनका जन्म बस्ती जिले के अगोना नामक गाँव में सन् 1884 ई .में हुआ था। आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी की प्रारम्भ से ही साहित्य में विशेष रूचि रही, वे बराबर साहित्य, मनोविज्ञान, इतिहास आदि के अध्ययन में लगे रहे। उन्हें हिंदी, उर्दू, संस्कृत एवं अंग्रेजी सभी के साहित्य का ज्ञान था। रामचंद्र शुक्ल 'हिंदी शब्द सागर' के संपादन में वैतनिक सहायक के रूप में काशी आ गए। यहीं पर काशी नागरी प्रचारिणी सभा के विभिन्न कार्यों को करते हुए उनकी प्रतिभा चमकी। बाद में शुक्ल जी की नियुक्ति काशी हिंदू विश्वविद्यालय में हिंदी के अध्यापक के रूप में हुई। और बाद में इसी विश्वविद्यालय के विभागाध्यक्ष नियुक्त किए गए।

शुक्ल जी एक बहुत ही उच्च कोटि के साहित्यकार और युग प्रवर्तक आलोचक तथा निबंधकार थे। आपने सैद्धान्तिक तथा व्यवहारिक दोनों प्रकार की समीक्षाए लिखी है। शुक्ल जी के निबंध 'चिंतामणि' भाग-1 एवं भाग-2 तथा 'विचारवीथी' में संकलित है। आपने सूरदास, तुलसीदास एवं जायसी के काव्य पर भी समीक्षाए की है। आपके द्वारा लिखा गया 'हिंदी साहित्य का इतिहास) 1929)' एक श्रेष्ठ ग्रंथ है।

शुक्ल जी का भाषा पर बहुत ही बेजोड़ अधिकार था। उनकी भाषा शुद्ध, परिष्कृत एवं मानक हिंदी है। शुक्ल जी का सम्पूर्ण साहित्य हिंदी जगत के लिए एक अनमोल रत्न के समान है। इनके निबंध हिंदी निबंध कला के निकर्ष है। इस प्रकार हम पाते हैं कि शुक्ल जी बहुमुखी प्रतिभा के साहित्यकार है। इन्होंने साहित्य के सभी क्षेत्रों में अपनी लेखनी चलाई है।

3.5 पाठ की उपलब्धियाँ

इस इकाई के अध्ययन से निम्नलिखित महत्वपूर्ण बिंदु निष्कर्ष के रूप में प्राप्त हुए हैं -

1. आचार्य रामचंद्र शुक्ल एक बहुमुखी प्रतिभा के साहित्यकार थे।

2. शुक्ल जी कुशल आलोचक, श्रेष्ठ निबंधकार, निष्पक्ष इतिहासकार तथा महान शैलीकार आचार्य माने जाते हैं।
3. शुक्ल जी एक कुशल अनुवादक भी थे।
4. शुक्ल जी के निबंध अधिकतर विचार प्रधान होते थे।
5. आचार्य शुक्ल को हिंदी के मनोवैज्ञानिक निबंध लेखन परम्परा का जनक माना जाता है।
6. आचार्य शुक्ल कृत 'हिंदी साहित्य का इतिहास' ने हिंदी में साहितयेतिहास परंपरा को सुनिश्चित स्वरूप प्रदान किया।

3.6 शब्द संपदा

1. चमत्कार = करिश्मा
2. प्रौढ़ = अनुभवी, कुशल
3. विशुद्ध = सच्चा, पवित्र
4. सहायक = मददगार

3 7.परीक्षार्थ प्रश्न

खंड (अ)

दीर्घ श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 500 शब्दों में दीजिए।

1. आचार्य रामचंद्र शुक्ल की आलोचना दृष्टि पर प्रकाश डालिए।
2. आचार्य शुक्ल के निबंधकला की विवेचना कीजिए।
3. आचार्य रामचंद्र के रचना संसार पर प्रकाश डालिए।

खंड (ब)

लघु श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 200 शब्दों में दीजिए।

1. हिंदी साहित्य में आचार्य रामचंद्र शुक्ल के व्यक्तित्व का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
2. शुक्ल जी की भाषा-शैली पर प्रकाश डालिए।

खंड (स)

I. सही विकल्प चुनिए -

1. 'मनोविकार संबंधी निबंध' इनमें से किस लेखक ने लिखे हैं? ( )

(अ) हरिशंकर परसाई (आ) रामचंद्र शुक्ल (इ) हजारी प्रसाद द्विवेदी (ई) प्रतापनारायण मिश्र

2. आचार्य शुक्ल का निबंध संकलन इनमें से कौन सा है? ( )

(अ) विचार और विकारण्र (आ) रस आरवेटक (इ) चिंतामणि (ई) रसज्ञरंजन

3. आचार्य शुक्ल की समीक्षा-दृष्टि मूलतः किससे प्रभावित है? ( )

(अ) सूरसागर से (आ) पद्मावत से (इ) रामचरितमानस से (ई) विनयपत्रिका से

III. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए -

1. आचार्य शुक्ल जी का जन्म सन् ..... में हुआ था।
2. आचार्य शुक्ल जी के निबंध ..... में संकलित है।
3. शुक्ल जी ने काव्य को कर्मयोग एवं ज्ञानयोग के समकक्ष रखते हुए ..... कहा है।

III. सुमेल कीजिए -

1. मानस की धर्म भूमि	(अ) आलोचनात्मक
2. ग्यारह वर्ष का समय	(आ) निबंध
3. रस मीमांसा	(इ) कहानी
4. शशांक	(ई) अनुदित कृति

3.8 पठनीय पुस्तकें

1. हिंदी साहित्य का इतिहास : सं .नगेंद्र और हरदयाल
2. हिंदी का गद्य साहित्य : रामचंद्र तिवारी
3. हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास : रामस्वरूप चतुर्वेदी
4. आधुनिक हिंदी साहित्य का इतिहास : बच्चन सिंह

इकाई 4 : 'करुणा' : समीक्षात्मक अध्ययन

रूपरेखा

4.1 प्रस्तावना
4.2 उदेश्य
4.3 मूल पाठ : 'करुणा' : समीक्षात्मक अध्ययन
4.3.1 हिंदी निबंध का विकास क्रम
4.3.2 'करुणा' : निबंध की समीक्षा
4.4 पाठ सार
4.5 पाठ की उपलब्धियाँ
4.6 शब्द संपदा
4.7 परीक्षार्थ प्रश्न
4.8 पठनीय पुस्तकें

4.1 प्रस्तावना

निबंध उस गद्य रचना को कहते हैं जिसमें लेखक किसी विषय पर अपने विचारों को स्वच्छंद रूप में इस प्रकार व्यक्त करता है कि सारी रचना एक सूत्र में बंधी हुई प्रतीत होती है। हिंदी की अन्य गद्य विधाओं के समान हिंदी निबंध का विकास भी भारतेंदु युग से प्रारंभ हुआ। इस काल में भारतीय समाज में एक नई चेतना का विकास हो रहा था। पढ़े-लिखे लोग अपने विचारों को स्वच्छंदतापूर्वक व्यक्त करने लगे थे। इस समय तक हिंदी की अनेक पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित होने लगी थीं, जिनमें 'हरिश्चंद्र चंद्रिका', 'उदंत मार्तण्ड', 'ब्राह्मण', 'प्रदीप', 'बनारस अखबार', 'सार-सुधानिधि' आदि महत्वपूर्ण थीं। इन समाचार पत्र-पत्रिकाओं में विविध विषयों पर जो विचार व्यक्त किए जाते थे, उन्हें ही हिंदी निबंध का प्रारंभिक रूप कहा जा सकता है। 'चिंतामणि' आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा रचित निबंधों का संकलन है। 'चिंतामणि' भाग 1 के निबंध ही शुक्ल जी की निबंध कला का परिचय देने के लिए पर्याप्त हैं। 'करुणा' एक मनोविकार संबंधी निबंध है। इस इकाई में आप 'करुणा' का समीक्षात्मक अध्ययन करेंगे।

4.2 उद्देश्य

प्रिय छात्रो! इस इकाई के अध्ययन से आप -

- हिंदी निबंध के विकास क्रम से परिचित हो सकेंगे।
- रामचंद्र शुक्ल के निबंध 'करुणा' की विषय वस्तु से परिचित हो सकेंगे।
- करुणा के विभिन्न रूपों को जान सकेंगे।
- सामाजिक जीवन के लिए करुणा की आवश्यकता को समझ सकेंगे।
- विवेच्य निबंध की समीक्षा कर सकेंगे।

4.3 मूल पाठ : 'करुणा' : समीक्षात्मक अध्ययन

4.3.1 हिंदी निबंध का विकास क्रम

हिंदी निबंध के विकास को चार कालों में विभक्त किया जा सकता है - भारतेंदु युग, द्विवेदी युग, शुक्ल युग और शुक्लोत्तर युग।

भारतेंदु युग

भारतेंदु युग को हिंदी निबंध की विकास यात्रा का प्रारंभिक चरण माना जा सकता है। भारतेंदु जी के निबंध ही हिंदी के प्राथमिक निबंध हैं, जिनमें निबंध कला की मूलभूत विशेषताएँ उपलब्ध होती हैं। भारतेंदु ने हिंदी गद्य की अनेक विधाओं का न केवल सूत्रपात किया अपितु उन्हें पल्लवित करने का श्रेय भी उन्हें ही प्राप्त है। भारतेंदु के निबंध विषय एवं शैली की दृष्टि से वैविध्यपूर्ण हैं। उन्होंने इतिहास, समाज, धर्म, राजनीति, यात्रा, प्रकृति वर्णन एवं व्यंग्य विनोद जैसे विषयों पर निबंधों की रचना की। भारतेंदु युग के प्रमुख निबंधकारों में भारतेंदु हरिश्चंद्र के अतिरिक्त बालकृष्ण भट्ट, बालमुकुंद गुप्त, राधाचरण गोस्वामी, अम्बिकादत्त व्यास आदि उल्लेखनीय हैं। इन निबंधकारों ने भी हिंदी निबंध के विकास में पर्याप्त योगदान किया है।

बोध प्रश्न

- भारतेंदु ने किन-किन विषयों पर निबंध लिखा है?

द्विवेदी युग

हिंदी निबंध के विकास के द्वितीय चरण को आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के नाम पर द्विवेदी युग कहा गया है। द्विवेदी जी ने 'सरस्वती' पत्रिका का संपादकत्व सन् 1903 ई. में संभाला था, अत: द्विवेदी युग का प्रारंभ इसी समय से माना जाता है। दिवेदी जी ने 'सरस्वती' के माध्यम से भाषा संस्कार एवं व्याकरण शुद्धि के जो प्रयास प्रारंभ किए उनका प्रभाव तत्कालीन सभी निबंधकारों पर किसी न किसी रूप में अवश्य पड़ा।

द्विवेदी ने 'बेकन' के निबंधों को आदर्श निबंध मानते हुए उनके निबंधों का हिंदी अनुवाद 'बेकन विचार रत्नावली' के नाम से किया। इसके अतिरिक्त उनके अपने निबंधों का संग्रह 'रसज्ञ रंजन' नाम से प्रकाशित हुआ है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि द्विवेदी युग में विचार प्रधान निबंधों की रचना अधिक हुई है। भारतेंदु युग की अपेक्षा इस युग के निबंधकारों की भाषा शैली में प्रौढ़ता दिखाई पड़ती है। इन निबंधकारों ने युगीन समस्याओं की अपेक्षा साहित्यिक एवं वैचारिक समस्याओं पर अपना ध्यान केंद्रित करते हुए निबंधों के विषयों की खोज की। हास्य व्यंग्य के स्थान पर इनमें गंभीरता अधिक है।

बोध प्रश्न

- द्विवेदी युग किस प्रकार की निबंधों की रचना अधिक मात्रा में हुई?

शुक्ल युग

हिंदी निबंध के तृतीय चरण को शुक्ल युग की संज्ञा प्रदान की गई है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के निबंध क्षेत्र में पदार्पण करने से निबंध साहित्य को नए आयाम एवं नई दिशाएँ प्राप्त हुईं। उन्होंने 'चिंतामणि' में जो निबंध संकलित किए हैं उनसे हिंदी निबंध अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँच गए। वस्तुतः निबंध कला के सभी गुण इनके निबंधों में उपलब्ध होते हैं। शुक्ल जी ने विषयानुरूप सभी शैलियों का प्रयोग किया है। इसमें संदेह नहीं कि शुक्ल युग हिंदी निबंध के विकास का 'स्वर्ण युग' है। इस युग में निबंधों का विषय क्षेत्र अधिक व्यापक है। साथ ही उसमें गंभीरता एवं सूक्ष्मता भी आई। ये निबंध मनोविज्ञान, साहित्य, संस्कृति, इतिहास सभी विषयों को समाविष्ट किए हुए हैं। भाषा-शैली की दृष्टि से यह युग द्विवेदी युग की तुलना में अधिक विकसित एवं प्रौढ़ है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल इस युग की महानतम उपलब्धि हैं और वे हिंदी के सर्वश्रेष्ठ निबंधकार कहे जाते हैं।

बोध प्रश्न

- शुक्ल युग को निबंधों के विकास का स्वर्ण युग क्यों कहा जाता है?

शुक्लोत्तर युग

शुक्ल जी ने हिंदी निबंध को जो नए आयाम दिए। उससे हिंदी निबंध का परवर्तीकाल में विविधमुखी विकास हुआ। विषय, क्षेत्र, वैचारिकता, भाषा-शैली सभी दृष्टियों से हिंदी निबंध ने नई दिशाएँ खोजी। इस काल में न केवल समीक्षात्मक और विचारात्मक निबंधों की ही रचना हुई, अपितु ललित निबंधों की भी पर्याप्त रचना हुई। शुक्लोत्तर निबंधकारों में आचार्य हजारी प्रसाद, आचार्य नंददुलारे वाजपेयी, नगेंद्र, रामधारी सिंह दिनकर, जयशंकर प्रसाद, इलाचंद्र जोशी, जैनेंद्र, प्रभाकर माचवे, भगीरथ मिश्र, रामविलास शर्मा, विद्यानिवास मिश्र आदि उल्लेखनीय हैं।

बोध प्रश्न

- शुक्ल काल के बाद किस प्रकार के निबंधों की रचना होने लगी?
- कुछ निबंधकारों के नाम बताइए।

4.3.2 'करुणा' : निबंध की समीक्षा

आचार्य रामचंद्र शुक्ल का प्रमुख निबंध करुणा एक साहित्यिक निबंध है। इसमें भारतीय विचारकों के अतिरिक्त पाश्चात्य विद्वानों के विचारों का भी अध्ययन किया गया है। पाश्चात्य विचारकों के अनुसार समर्थ व्यक्ति में ही करुणा संचारित होती है। किंतु भारतीय विद्वानों के अनुसार दीन, दुखी एवं अपाहिजों द्वारा करुणा का अंकुर उत्पन्न किया जाता है। व्यावहारिक जीवन में इसे देखा जा सकता है। जिस समय बच्चे को कार्य और कारण के संबंध का ज्ञान होने लगता है तब दुख के उस रूप की नींव पड़ती है, जिसे करुणा कहते हैं। दुख का स्रोत जब निर्मित होता है, तो यही दुख करुणा में परिणत होता है। करुणा का आधार ही दुख है। करुणा शारीरिक

और मानसिक दो प्रकार की होती है। वियोग में भी करुणा देखी जाती है। करुणा क्रोध का विपरीत मनोभाव है। करुणा में दया का अंश होता है, जबकि क्रोध में हानि की चेष्टा की जाती है। सात्विक भाव की उत्पत्ति करुणा से होती है। करुणा दिखाने वाला अन्य व्यक्तियों के लिए श्रद्धा का पात्र बनता है।

इसी प्रकार हम देखते हैं कि करुणा एवं सहानुभूति में भी अंतर है। दूसरों के दुखों के प्रति दिखाए गई करुणा सहानुभूति कहलाती है। दुख से उत्पन्न मनोभाव में करुणा के पात्र को कभी हानि नहीं पहुँचाई जाती, भले ही उसमें संबंधित अन्य किसी को हानि का सामना करना पड़े।

क्रोध करुणा का विपरीत भाव है। क्रोध में दूसरे को हानि पहुँचाने का काम किया जाता है और करुणा में भलाई का। जिस व्यक्ति से मन प्रसन्न होता है, उसके दुख से दुखी होने से करुणा का भाव संचरित होती है। लोभी व्यक्ति उस व्यक्ति या वस्तु को कभी हानि नहीं पहुँचाता जिससे उसे लाभ की आशा हो। भले ही उस से संबंधित अन्य को हानि पहुँचा दे।

बोध प्रश्न

- करुणा और सहानुभूति में क्या अंतर हो सकता है?

करुणा दुख का आधार है। ज्यों-ज्यों मनुष्य सामाजिक संबंध स्थापित करता चला जाता है,त्यों-त्यों उसके जीवन का क्षेत्र तथा मनोविकारों के प्रवाह का क्षेत्र विस्तृत होता चला जाता है। वह समाज के व्यक्ति के क्रियाकलापों से प्रभावित होता है। उनके सुख दुख में सम्मिलित होने लगता है, किंतु सुख की अपेक्षा दुख अधिक व्यापक विस्तृत तथा प्रभावशाली है। हम दूसरों के दुख से दुखी हो सकते हैं, उसके सुख से सुखी नहीं। करुणा के लिए दुख के अतिरिक्त किसी विशेषता की अपेक्षा नहीं पर आनंदित हम ऐसे ही व्यक्ति के सुख को देखकर होते हैं जो सहृदय है या संबंधी है अथवा अत्यंत सज्जन, शालीन, चरित्रवान, समाज का मित्र अथवा हितैषी है।

दूसरों के दुख से दुखी होने वाले दुख को करुणा या दया आदि का नाम दिया गया है, किंतु दूसरों के सुख से सुखी होने पर किसी अन्य मनोवेग का नाम नहीं दिया जाता, क्योंकि इसमें वेग या क्रियोत्पादकता नहीं है। करुणा उत्पन्न होने के पश्चात कारण को दूर करने की प्रेरणा मन में जागृत होती है।

करुणा जैसे मनोविकार शील और सात्विकता के संस्थापक हैं - मनुष्य की सज्जनता और दुर्ज्जनता का ज्ञान अन्य प्राणियों के संसर्ग द्वारा ही व्यक्त होता है। जीवन का उद्देश्य सुख की स्थापना और दुख का निवारण है। अतः जिन कर्मों या साधनों से इस उद्देश्य की पूर्ति हो, वे उत्तम हैं, शुभ हैं तथा सात्विक हैं। कृपा अथवा प्रसन्नता द्वारा दूसरे के सुख की कल्पना की जाती हैं, परंतु कृपा और प्रसन्नता में आत्मिक भाव की कमी होती है। अतः आत्मिक भाव की प्रेरणा से पहुँचाया गया सुख एक प्रकार का प्रीतिकर होता है। इसके अतिरिक्त नवीन सुख को प्राप्त करने की अपेक्षा दुख की निवृत्ति की इच्छा अधिक तीव्र होती है।

करुणा एक मनोविकार है - वह तीव्र अनुभूति जो दूसरों के दुख को देखकर उत्पन्न होती है। हमारा आचरण यदि ऐसे क्रियाकलापों से बचता चलें जिनसे किसी को दुख या कष्ट पहुँचने

की आशंका है, तो यह मनोविकार शील के अंतर्गत आएगा। प्रचलित भाषा में शील का अर्थ कोमलता या प्रेम से लिया जाता है। उदाहरण के लिए उनकी आँखों में शील नहीं, शील तोड़ना अच्छा नहीं। उदात्त भावनाओं की रक्षा हेतु तोड़े गए नियम दोष के अंतर्गत स्वीकार नहीं किए जाते। उदाहरण के लिए किसी असहाय या पीड़ित व्यक्ति को अनुचित दंड मिलने पर बोला गया झूठ दोष नहीं होता। करुणा सात्विक भावनाओं की जननी है। जैन और बौद्ध धर्म में करुणा की प्रधानता है करुणा से सात्विक वृतियों की उत्पत्ति होती है। गोस्वामी तुलसीदास जी का भी यही कथन है।

परहित सरिस धर्म नहीं भाई।
पर-पीड़ा सम नहि अधभाई॥

करुणा का श्रद्धा व सात्विक शीलता से संबंध है - श्रद्धा किसी न किसी रूप में सात्विक शीलता ही है। सात्विकता का करुणा से संबंध है। अतः श्रद्धा और करुणा में भी निकटता हुई। किसी पुरुष को दूसरे पर करुणा करना करते देख कर तीसरे व्यक्ति के मन में भी करुणा करने वाले के प्रति श्रद्धा का भाव बढ़ेगा।

बोध प्रश्न

- करुणा से किस प्रकार की भावनाओं का जन्म होगा?

अंत:करण की सारी वृत्तियाँ मनोवेगों की सहायक हैं - मनुष्य का आचरण मनोवेग या प्रकृति का ही फल है। कुछ दार्शनिकों ने कहा है कि हमारे निश्चयों का अंतिम आधार बुद्धि नहीं, अनुभव व कल्पना की तीव्रता है।

प्रिय के वियोग में करुणा का स्वरूप - प्रिय के वियोग में हृदय में जो पीड़ा होती है, वह करुणा कहलाती है; क्योंकि उसमें भी दया और करुणा का भाव सम्मिलित रहता है। इस प्रकार की करुणा प्रिय की अनुपस्थिति में होने वाले सुख के अभाव द्वारा उत्पन्न होती है। भगवान राम के वनवास के समय माँ कौशल्या के दुख से दुखी होना इस भाव के अंतर्गत आता है।

वन को निकरि गए दौउ भाई
सावन बरसे भादवो बरसे पवन चलै पुरवाई
कोऊ बिरिछ तर भीजत है, राम लखन दौउ भाई

करुणा में प्रतीकार की इच्छा नहीं होती। करुणा करने वाले के हृदय में बदले की भावना नहीं होती। करुणा तो प्रतीकार रहित होती है। करुणा करने वाले के प्रति श्रद्धा, कृतज्ञता अथवा प्रेम उत्पन्न हो सकता है। क्रोध आदि मनोवेगों के प्रति श्रद्धा या प्रेम की जागृति कभी नहीं होती।

मानव जीवन की सजीवता मनोवेगों पर निर्भर है मनुष्य की सजीवता मनोवेग व प्रवृत्ति में ही है। नीतिज्ञों एवं धार्मिकों का मनोवेगों को दूर करने का उद्देश्य कोरा पाखंड है। शुक्ल जी ने इस विषय में सच्चा प्रयत्न किया है। वे मनोविकारों को परिष्कृत एवं परिमार्जित करने को परामर्श देते हैं, नष्ट करने का नहीं। स्मृति, अनुमान और बुद्धि के अतिरिक्त मनोवेगों का होना अनिवार्य है। इनके अभाव में मनुष्य जड़ एवं निर्जीव जान पड़ता है। दिन प्रतिदिन बदलती

सभ्यता और जीवन के प्रभाव मनुष्य के मनोवेगों को शक्तिहीन बनाते जा रहे हैं। इसी कारण वास्तविक आनंद का अभाव सा होता जा रहा है। प्राकृतिक सौंदर्य भी मानव मन को अधिक नहीं मोहता। उसे कृतिमता अधिक भाति है। दुराचार, अनाचार एवं अत्याचार से उसे घृणा तो है, किंतु शिष्टाचार के नाते तथा परिस्थितियों के दबाव के कारण उसे चुप रहना पड़ता है। अथवा दुर्जन व्यक्ति की प्रशंसा करनी पड़ती है। अंतःकरण की भावुकता दिन प्रतिदिन लुप्त होती जा रही है। हृदयगत उद्गार मन में दबे रह जाते हैं। मनुष्य को उदात्त एवं मानवीय भावनाओं की अवहेलना करके क्रूर आवश्यकताओं के हाथों की कठपुतली बनना पड़ता है। अपने सुख की इच्छा से दूसरों की आँखों में धूल झोंकने पड़ती है। समाज में जीवित रहने के लिए दिखावा करना पड़ता है। आधुनिक भौतिकवादी युग में विवशता सबसे बड़ा भूत है, जिसके वशीभूत होने पर मानव को सब कुछ करने को तैयार रहना पड़ता है, भले ही वह उचित हो अथवा नियम भंग।

ऐसा मानना है कि जीवन के लिए मनोवेगों की उपस्थिति अनिवार्य है। इनसे रहित जीवन रसहीन है। नियम, आवश्यकता और न्याय मनोवेगों के बाधक हैं, साधक नहीं। इन तीनों के जाल में फँसने पर मानव को अपने मनोविकारों का हनन करना पड़ता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार करुणा समाज की पुष्टता एवं कल्याण के लिए आवश्यक मनोवेग है।

जब बच्चे को संबंध-ज्ञान कुछ-कुछ होने लगता है तभी दुख से उस भेद की नींव पड़ जाती है, जिसे करुणा कहते हैं। बच्चा पहले परखता है कि जैसे हम हैं वैसे ही ये और प्राणी भी हैं और बिना किसी विवेचना-क्रम के स्वाभाविक प्रवृत्ति द्वारा वह अपने अनुभवों का आरोप दूसरे प्राणियों पर करता है, फिर कार्य-कारण-संबंध से अभ्यस्त होने पर दूसरों के दुख के कारण या कार्य को देखकर उसके दुख का अनुमान करता है और स्वयं एक प्रकार का दुख अनुभव करता है। प्रायः देखा जाता है कि जब माँ झूठ-मूठ 'ऊँ-ऊँ' करके रोने लगती है तब कोई-कोई बच्चे भी रो पड़ते हैं। इसी प्रकार जब उनके किसी भी भाई या बहन को कोई मारने उठता है तब वे कुछ चंचल हो उठते हैं।

दुख की श्रेणी में प्रवृत्ति के विचार से करुणा का उलटा क्रोध है। क्रोध जिसके प्रति उत्पन्न होता है उसकी हानि की चेष्टा की जाती है। करुणा जिसके प्रति उत्पन्न होती है उसकी भलाई का उद्योग किया जाता है। किसी पर प्रसन्न होकर भी लोग उसकी भलाई करते हैं। इस प्रकार पात्र की भलाई की उत्तेजना दुख और आनंद दोनों की श्रेणियों में रखी गई है, आनंद की श्रेणी में ऐसा कोई शुद्ध मनोविकार नहीं है, जो पात्र की हानि की उत्तेजना करे, पर दुख की श्रेणी में ऐसा मनोविकार है जो पात्र की भलाई की उत्तेजना करता है, लोभ से, जिसे मैंने आनंद की श्रेणी में रखा है, चाहे कभी-कभी और व्यक्तियों या वस्तुओं को हानि पहुँच जाए पर जिसे जिस व्यक्ति या वस्तु का लोभ होगा, उसकी हानि वह कभी न करेगा ।

ऊपर कहा जा चुका है कि मनुष्य ज्यों ही समाज में प्रवेश करता है, उसे सुख और दुख का बहुत-सा अंश दूसरे की क्रिया या अवस्था पर अवलंबित हो जाता है और उसके मनोविकारों के प्रवाह तथा जीवन के विस्तार के लिए अधिक क्षेत्र हो जाता है। वह दूसरों के दुख से दुखी और दूसरों के सुख से सुखी होने लगता है। अब देखना यह है कि दूसरों के दुख से दुखी होने का नियम

जितना व्यापक है क्या उतना ही दूसरों के सुख से सुखी होने का भी। मैं समझता हूँ, नहीं, हम अज्ञात-कुल-शील मनुष्य के दुख को देखकर भी दुखी होते है। किसी दुखी मनुष्य को सामने देख हम अपना दुखी होना तब तक के लिए बंद नहीं रखते जब तक कि यह न मालूम हो जाए कि वह कौन है, कहाँ रहता है और कैसा है। यह बात है कि यह जानकर कि जिसे पीड़ा पहुँच रही है उसने कोई भारी अपराध या अत्याचार किया है। हमारी दया दूर या कम हो जाए, ऐसे अवसर पर हमारे ध्यान के सामने वह अपराध या अत्याचार आ जाता है और उस अपराधी या अत्याचारी का वर्तमान क्लेश हमारे क्रोध की तुष्टि या साधक हो जाता है।

सारांश यह है कि करुणा की प्राप्ति के लिए पात्र में दुख के अतिरिक्त और किसी विशेषता की अपेक्षा नहीं, पर आनंदित हम ऐसे ही आदमी के सुख को देखकर होते हैं जो या तो हमारा सुहृदय या संबंधी हो अथवा अत्यंत सज्जन, शीलवान या चरित्रवान होने के कारण समाज का मित्र या हितकारी हो, यों ही किसी अज्ञात व्यक्ति का लाभ या कल्याण सुनने से हमारे हृदय में किसी प्रकार के आनंद का उदय नहीं होता, इससे प्रकट है कि दूसरों के दुख से दुखी होने का नियम बहुत व्यापक है और दूसरों के सुख से सुखी होने का नियम उसकी अपेक्षा परिमित है। इसके अतिरिक्त दूसरों को सुखी देखकर जो आनंद होता है उसका न तो कोई अलग नाम रखा गया है और न उसमें वेग या प्रेरणा होती है, पर दूसरों के दुख के परिज्ञान से जो दुख होता है, वह करुणा, दया आदि नामों से पुकारा जाता है और अपने कारण को दूर करने की उत्तेजना होता है।

प्रिय के वियोग से जो दुख होता है उसमें कभी-कभी दया या करुणा का भी कुछ अंश मिला रहता है। ऊपर कहा जा चुका है कि करुणा का विषय दूसरे का दुख है। अतः प्रिय के वियोग में इस विषय की भावना किस प्रकार होती है, यह देखना है। प्रत्यक्ष निश्चित कराता है और परोक्ष, अनिश्चय में डालता है। प्रिय व्यक्ति के सामने रहने से उसके सुख का जो निश्चय होता रहता है, वह उसके दूर होने से अनिश्चय में परिवर्तित हो जाता है। अतः प्रिय के वियोग पर उत्पन्न करुणा का विषय प्रिय के सुख का निश्चय है, जो करुणा हमें साधारण जनों के वास्तविक दुख के परिज्ञान से होती है, वही करुणा हमें प्रियजनों के सुख के अनिश्चय मात्र से होती है। साधारण जनों का तो हमें दुख असह्य होता है, पर प्रियजनों के सुख का अनिश्चय ही, अनिश्चय बात पर सुखी या दुखी होना ज्ञानवादियों के निकट अज्ञान है। इसी से इस प्रकार के दुख का करुणा को किसी-किसी प्रांतिक भाषा में 'मोह' भी कहते हैं। सारांश यह कि प्रिय से वियोग-जनित दुख में जो करुणा का अंश रहता है उसका विषय प्रिय के सुख का अनिश्चय है। राम-जानकी के वन चले जाने पर कौशल्या उनके सुख के अनिश्चय पर इस प्रकार दुखी होती हैं-

बन को निकरि गए दोउ भाई।
सावन गरजै, भादौं बरसै, पवन चलै पुरवाई।
कौन बिरिछ तर भीजत है हैं राम लखन दोउ भाई (...गीता.)

जिस व्यक्ति से किसी की घनिष्ठता और प्रीति होती है वह उसके जीवन के बहुत से व्यापारों तथा मनोवृत्तियों का आधार होता है। उसके जीवन का बहुत-सा अंश उसी के संबंध

द्वारा व्यक्त होता है। मनुष्य अपने लिए संसार आप बनाता है। संसार तो कहने-सुनने के लिए है। वास्तव में किसी मनुष्य का संसार तो वे ही लोग हैं जिनमें उसका संसर्ग या व्यवहार है। अत: ऐसे लोगों में से किसी का दूर होना उसके संसार के एक प्रधान अंश का कट जाना या जीवन के एक अंश का खंडित हो जाना है। किसी प्रिय या सहृदय के चिरवियोग या मृत्यु के शोक के साथ करुणा या दया का भाव मिलकर चित्त को बहुत व्याकुल करता है। किसी के मरने पर उसके प्राणी उसके साथ किए हुए अन्याय या कुव्यवहार तथा उसकी इच्छा-पूर्ति करने में अपनी त्रुटियों का स्मरण कर और यह सोचकर कि उसकी आत्मा को संतुष्ट करने की भावना सब दिन के लिए जाती रही, बहुत अधीर और विकल होते हैं।

करुणा अपना बीज अपने आलंबन या पात्र में नहीं फेंकती है अर्थात जिस पर करुणा की जाती है वह बदले में करुणा करने वाले पर भी करुणा नहीं करता, जैसा कि क्रोध और प्रेम में होता है, बल्कि कृतज्ञ होता अथवा श्रद्धा या प्रीति करता है। बहुत सी औपन्यासिक कथाओं में यह बात दिखाई गई है कि युवतियाँ दुष्टों के हाथ से अपना उद्धार करने वाले युवकों के प्रेम में फँस गई हैं। कोमल भावों की योजना में दक्ष बँगला के उपन्यास-लेखक करुणा और प्रीति के मेल से बड़े ही प्रभावोत्मादक दृश्य उपस्थित करते हैं।

यह ठीक है कि मनोवेग उत्पन्न होना और बात है और मनोवेग के अनुसार व्यवहार करना और बात, पर अनुसारी परिणाम के निरंतर अभाव के मनोवेगों का अभ्यास भी घटने लगता है। यदि कोई मनुष्य आवश्यकतावश कोई निष्ठुर कार्य अपने ऊपर ले ले तो पहले दो-चार बार उसे दया उत्पन्न होगी, पर जब बार-बार दया की प्रेरणा के अनुसार कोई परिणाम वह उपस्थित न कर सकेगा तब धीरे-धीरे उसका दया का अभ्यास कम होने लगेगा, यहाँ तक कि उसकी दया की वृत्ति ही मारी जाएगी।

सामाजिक पूर्णता के लिए करुणा का क्षेत्र विस्तृत होना चाहिए करुणा का प्रचार और प्रसार परम आवश्यक है इस भाव से सहयोग सहानुभूति दया क्षमा दया और परोपकार जैसी उदास भावनाओं का जन्म होता है पश्चात दार्शनिक करना हो स्वार्थी भाव विषय में रखते हैं, यह अनुचित है क्योंकि ध्वनि की विशेषता होती तो करुणा का भाव दीक्षित श्रीपद दलित के प्रति ना होता जिसे किसी प्रकार की रक्षा अथवा हिचकी आशा नहीं ही जा सकती अनाथ पर अत्याचार हो तो करुणा से अपना होता है मन करुणा की तरंगों से उमड़ पड़ता है किंतु इतनी करुणा उस समय पर नहीं होती जब कोई पहलवान पीट रहा हो। समाज के कल्याण और जीत के लिए करुणा जैसी संस्कृतियों या मनोवेगों का होना अनिवार्य है। समाज ऐसी वृत्तियों से ही पूर्ण और सुरक्षित बनता है।

हम कह सकते हैं कि करुणा की श्रेणी का अनुभव है तात्पर्य है मनोभावों को अगर दुख और सुख दो बाजारों पर बाटा जाए तो करुणा का मनोविकार सुख की श्रेणी में आएगा करुणा किसी ऐसे व्यक्ति पर की जाती है जो दुखी हो घायल दिमाग दुखी और विलाप करते हुए व्यक्ति पर देखने वाले के मन में करना उत्पन्न हो जाती हैं करना करने वाले को भी दुखी हो देखकर और उस पर करुणा करते समय दुख ही होता है किसी की दुर्दशा देखकर किसी की दुर्दशा

देखकर जब हमारा हृदय विगलित हो जाता है, द्रवित हो जाता है, तभी हम किसी पर करो ना या दया करते हैं आचार्य शुक्ल जी ने करुणा और क्रोध दोनों ही मनोभावों को समाज की स्थिति और सामाजिक जीवन की निर्वाह के लिए आवश्यक माना है।

बोध प्रश्न

- करुणा का उलटा किस विकार को माना गया है?

4.4 पाठ सार

'करुणा' निबंध में शुक्ल जी ने करुणा नामक मनोभाव का विश्लेषण किया है। शुक्ल जी का अनुभव था कि सुख-दुख की मूल अनुभूतियाँ ही विषय भेद से प्रेम, हास, उत्साह, आश्चर्य, क्रोध, भय, करुणा, घृणा आदि मनोविकारों का रूप धारण करती हैं। ये मनोविकार अत्यंत महत्वपूर्ण होते हैं।

करुणा दु:ख की अनुभूति का एक प्रकार है। क्रोध भी दु:ख की अनुभूति में ही गिना जा सकता है किंतु उसका परिणाम करुणा से विपरीत होता है, क्योंकि क्रोध जिसके प्रति उत्पन्न होता है उसकी हानि की चेष्टा की जाती है। करुणा जिसके प्रति उत्पन्न होती है उसकी भलाई का उद्योग किया जाता है। इस प्रकार करुणा के भाव के मूल में पात्र की भलाई की उत्तेजना की भूमिका होती है।

शुक्ल जी के अनुसार तीन अवसर ऐसे होते हैं जिनमें करुणा के मनोवेग का महत्व घट जाता है। ये अवसर हैं आवश्यकता, नियम और न्याय। ये ऐसी स्थितियाँ हैं जहाँ करुणा व्यवस्था और कर्तव्य के मार्ग में बाधक बनती है। अत: उसकी भूमिका गौण हो जाती है। फिर भी इन तीनों परिस्थितियों में यदि संबंधित व्यक्ति के दुख से करुणा उत्पन्न होती है तो दुखी व्यक्ति के दुख को व्यक्तिगत स्तर पर दूर किया जा सकता है क्योंकि करुणा का द्वार तो सबके लिए खुला है।

करुणा समाज के कल्याण का आधार है। इससे समाज जीवित और स्थिर रहता है। अतः करुणा का समाज में होना श्रेयसकर है। समाज की भलाई इसी भाव पर निर्भर है। दूसरों के दुख में दुखी होना करुणा कहलाता है। स्पष्ट है कि करुणा ही मानव समाज में सात्विक गुणों का दिव्य प्रकाश करने वाला मनोभाव है। यह सात्विक ज्योति मानव के अंतःकरण में सदैव विराजमान रहती हैं। करुणा ही श्रद्धा, प्रेम और कृतज्ञता और दया की जन्मदात्री है। यह शालीनता और सात्विकता की स्थापना करने वाली भावना है।

4.5 पाठ की उपलब्धियाँ

इस इकाई के अध्ययन से निम्नलिखित निष्कर्ष के रूप में प्राप्त हुए हैं -

1. भावों और मनोविकारों पर आधारित निबंधों में शुक्ल जी ने अत्यंत सहजता से काव्यशास्त्र की गुत्थियों को सुलझाया है।
2. 'करुणा' में आचार्य शुक्ल ने करुणा नामक मनोविकार की मनोवैज्ञानिक और काव्यशास्त्रीय व्याख्या की है।
3. छायावाद युग को निबंध साहित्य के संदर्भ में 'शुक्ल युग' कहा जाता है क्योंकि रामचंद्र शुक्ल ने 'चिंतामणि' के अपने निबंधों द्वारा इस विधा को उच्च शिखर तक पहुँचाया।

4.6 शब्द संपदा

1. अपाहिज = लाचार, मजबूर
2. आलंबन = मदद, सहायता
3. करुणा = दया, रहम
4. घनिष्ठता = नजदीकी, करीबी
5. दुर्जनता = दुष्टता, पापकर्म, दुराचार
6. निराकरण = अलग करना, दूर हटाना
7. निवृत्ति = समाप्ति, रुकावट
8. सहानुभूति = हमदर्दी, संवेदना, कृपा
9. सात्विकता = सभी गुणों से संपन्न, अच्छी आदत

4.7 परीक्षार्थ प्रश्न

खंड (अ)

दीर्घ श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 500 शब्दों में दीजिए ।

1. 'करुणा' निबंध की विषय वस्तु को स्पष्ट कीजिए।
2. हिंदी निबंध की विकास यात्रा पर प्रकाश डालिए।
3. सामाजिक जीवन के लिए करुणा की आवश्यकता पर प्रकाश डालिए।

खंड (ब)

लघु श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 200 शब्दों में दीजिए।

1. हिंदी निबंध के विकास क्रम में भारतेंदु युग के योगदान का वर्णन कीजिए।
2. हिंदी निबंध के विकास क्रम में शुक्ल युग के योगदान का वर्णन कीजिए।

3. 'करुणा' निबंध के माध्यम से आचार्य रामचंद्र शुक्ल क्या कहना चाहते हैं?
4. करुणा के विभिन्न रूपों की चर्चा कीजिए।
5. 'करुणा' निबंध की समीक्षा कीजिए।

खंड (स)

I. सही विकल्प चुनिए -

1. पाश्चात्य विचारकों के अनुसार करुणा कैसे व्यक्ति में संचारित होती है? ( )
   (अ) समर्थ (आ) कमजोर (इ) उनमत्त (ई) विरक्त

2. करुणा का अंकुर कैसे लोगों द्वारा उत्पन्न किया जाता है? ( )
   (अ) संत-महात्मा (आ) महाजन (इ) दीन-दुखी (ई) पराक्रमी

3. करुणा का आधार क्या है? ( )
   (अ) सुख (आ) दुख (इ) प्रेम (ई) क्रोध

4. करुणा किस का विपरीत मनोभाव है? ( )
   (अ) ममता (आ) दया (इ) क्रोध (ई) वात्सल्य

II. रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए -

1. निबंध में लेखक अपने विचारों को ..... रूप में व्यक्त करता है।
2. 'करुणा' ..... संबंधी निबंध है ।
3. शुक्ल युग हिंदी निबंध के विकास का ..... है।
4. शुक्ल युग भाषा-शैली की दृष्टि से ..... की तुलना में अधिक विकसित एवं प्रौढ़ है।

III. सुमेल कीजिए -

1. करुणा	(अ) लाभ की आशा
2. क्रोध	(आ) दया का अंश
3. लोभ	(इ) सहृदय का सुख
4. आनंद का आधार	(ई) हानि की चेष्टा

4.8 पठनीय पुस्तकें

1. चिंतामणि : रामचंद्र शुक्ल
2. हिंदी साहित्य का इतिहास : नगेंद्र

इकाई 5 : महादेवी वर्मा : एक परिचय

रूपरेखा

5.1 प्रस्तावना
5.2 उद्देश्य
5.3 मूल पाठ : महादेवी वर्मा : एक परिचय
5.3.1 जीवन परिचय
5.3.2 रचना यात्रा
5.3.3 रचनाओं का परिचय
5.3.4 महादेवी का दर्शन
5.3.5 महादेवी की भाषा और शैली
5.3.6 हिंदी साहित्य में महादेवी का स्थान एवं महत्व
5.4 पाठ सार
5.5 पाठ की उपलब्धियाँ
5.6 शब्द संपदा
5.7 परीक्षार्थ प्रश्न
5.8 पठनीय पुस्तकें

5.1 प्रस्तावना

छायावाद के एक महत्वपूर्ण कवयित्री के रूप में हमारे सामने आती हैं महादेवी वर्मा। हिंदी साहित्य के क्षेत्र में उनके योगदान को कभी भुलाया नहीं जा सकता। उनका महत्व विभिन्न दृष्टिकोणों से स्वीकार किया जा सकता है। छात्रो! इस इकाई में आप महादेवी वर्मा के जीवन और साहित्यिक योगदान के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे।

5.2 उद्देश्य

प्रिय छात्रो! इस इकाई को पढ़ने के बाद आप-

- महादेवी वर्मा के जीवन से अवगत हो सकेंगे।
- महादेवी वर्मा के साहित्यिक अवदान को समझ सकेंगे।
- महादेवी वर्मा के दर्शन की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- महादेवी वर्मा की भाषा और शैली से परिचित हो सकेंगे।
- महादेवी वर्मा के हिंदी साहित्य में स्थान व महत्व को समझ सकेंगे।

5.3 मूल पाठ : महादेवी वर्मा : एक परिचय

प्रिय छात्रो! अब हम महादेवी वर्मा के व्यक्तित्व और कृतित्व को निम्नलिखित बिंदुओं के माध्यम से जानने और समझने की कोशिश करेंगे-

5.3.1 जीवन परिचय

छायावाद की अत्यंत महत्वपूर्ण साहित्यकार महादेवी वर्मा का जन्म 24 मार्च, 1907 को हुआ था। इनके पिता जी का नाम गोविंद प्रसाद वर्मा तथा माताजी का नाम हेमरानी देवी था। इनकी माता जी धार्मिक प्रवृत्ति की महिला थीं। इसका प्रभाव महादेवी जी के व्यक्तित्व पर भी पड़ा था। इनके परिवार में कई पीढ़ियों से लड़की का जन्म नहीं हुआ था। इसलिए किसी लड़की के जन्म के लिए इनके बाबा (दादा) ने कुलदेवी दुर्गा की मनौती मानी थी। जब इनका जन्म हुआ तो सभी बहुत प्रसन्न हुए। इनके लिए विभिन्न तरह की सुख-सुविधाएँ जुटाई जाने लगीं। इन्हें विदुषी बनाने के विविध प्रयास होने लगे। कुलदेवी का आशीर्वाद मानकर ही इनका नाम 'महादेवी' रखा गया।

बोध प्रश्न

- महादेवी वर्मा का जन्म किस वर्ष हुआ था?

व्यक्तिगत जीवन

महादेवी वर्मा के पिताजी इंदौर के राजकुमारों के कॉलेज में उप-प्राचार्य थे। महादेवी का बचपन इंदौर में गुजरा। महादेवी वर्मा जब अपने माता पिता के साथ इंदौर गईं उस समय इनकी उम्र 3 साल थी। वहाँ ये छावनी में रहती थीं। इसलिए इनके साथी पशु-पक्षी ही रहे। इनके पास एक सेवक था जिसका नाम रामा था। वही इनकी जिज्ञासाओं को शांत करता था। रामा के विषय में महादेवी ने अपनी किताब 'अतीत के चलचित्र' में लिखा है। 1912 में इंदौर के मिशन स्कूल में इनका दाखिला करवाया गया। इसके साथ-साथ घर पर पढ़ाने के लिए एक पंडित जी, एक मौलवी साहब, एक चित्र शिक्षक और एक संगीत शिक्षक आया करते थे। इनकी पढ़ाई-लिखाई में कोई बाधा न पहुँचे इसका पूरा ख्याल रखा जाता था।

1916 में 9 वर्ष की अवस्था में इनका विवाह स्वरूप नारायण वर्मा के साथ कर दिया गया। इसके पहले लगभग 6-7 साल की उम्र में ये छोटी-छोटी कविताएँ लिखने लगी थीं। 10 साल की होते-होते ये समस्यापूर्ति भी करने लगीं। इधर ये धीरे-धीरे वैवाहिक जीवन से विरक्त होने लगीं। कुछ दिन इन्होंने मिशन स्कूल में पढ़ाई की। बाद में इनके पिता जी के अन्य मित्रों की बालिकाओं हेतु एक छोटा सा स्कूल खोला गया। बाद में वही स्कूल 'लेडी ओड़वायर गर्ल्स स्कूल' के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

महादेवी का प्रवेश इलाहाबाद स्थित 'क्रॉस्थवेट गर्ल्स कॉलेज' में करवा दिया गया था। यहाँ इन्हें हिंदी की एक और प्रमुख कवयित्री सुभद्रा कुमारी चौहान से भेंट हुई। इन्होंने उनके लिए 'बहिन' शब्द का प्रयोग किया है। यहीं आकार इन्हें हिंदी खड़ीबोली में लिखने की अबाध स्वतंत्रता मिली। 1919 में क्रॉस्थवेट गर्ल्स कॉलेज में प्रवेश लेने के बाद इन्होंने 1921 में मिडल, 1925 में इंटरेंस और 1929 में बी.ए. की परीक्षा उत्तीर्ण की। फिर कुछ स्वास्थ्य संबंधी समस्याएँ आने के कारण इनकी पढ़ाई में कुछ व्यवधान उत्पन्न हो गया। फिर इन्होंने 1932 में प्रयाग (इलाहाबाद) विश्वविद्यालय से संस्कृत विषय के साथ एम.ए. उत्तीर्ण किया। बी.ए. पास करने के

बाद इनका गौना करने का प्रयास हुआ। लेकिन तब तक ये पूरी तरह वैवाहिक जीवन से विरत हो चुकी थीं। इसलिए इन्होंने सीधे तौर पर वैवाहिक और गृहस्थ जीवन व्यतीत करने से मना कर दिया। बी.ए. के बाद 1932 में इन्हें प्रयाग महिला विद्यापीठ के प्रधानाचार्य की जिम्मेदारी मिली। इसके साथ वे 'चाँद' पत्रिका का अवैतनिक संपादन भी करने लगीं।

बोध प्रश्न

- 1932 में एम.ए. करने के बाद इन्होंने क्या निर्णय लिया और कौन सी जिम्मेदारी संभाली?

साहित्यिक संस्था की स्थापना और कार्य

महादेवी वर्मा सब का कल्याण करने में विश्वास रखती थीं। साहित्यकारों के हितों की रक्षा के लिए उन्होंने 1944 ई. में प्रयाग में 'साहित्यकार संसद' की स्थापना की। 1945 में साहित्यकार संसद के लिए गंगा किनारे रसूलाबाद, प्रयाग में एक भवन भी खरीदा। इसके अलावा प्रयाग में ही नाट्य संस्थान 'रंगवाणी' की स्थापना की। इसके साथ उन्होंने 'चाँद' पत्रिका का संपादन, 'विश्ववाणी' के 'बुद्ध अंक' का संपादन, 'साहित्यकार' का प्रकाशन व संपादन किया। इसके साथ-साथ प्रयाग शहर से सटे हुए गाँवों में जाकर बच्चों को पढ़ाती थीं।

बोध प्रश्न

- महादेवी वर्मा द्वारा स्थापित किसी एक संस्था का नाम बताइए।

सम्मान

महादेवी बचपन से ही प्रतिभाशाली थीं। मिडिल की परीक्षा में पूरे प्रांत में वे प्रथम आई थीं। 1952 में उत्तर प्रदेश विधान परिषद की सदस्य रहीं। 1954 में वे साहित्य अकादेमी की संस्थापक सदस्य चुनी गईं। 1960 में प्रयाग महिला विद्यापीठ की कुलपति बनी। उनकी साहित्य सेवा को देखते हुए भारत सरकार ने उन्हें पद्मभूषण और फिर पद्मविभूषण जैसे अलंकरणों से सम्मानित किया। उनके ज्ञान व उनकी सेवा को देखते हुए उन्हें अनेक विश्वविद्यालयों ने मानद डी.लिट. की उपाधि प्रदान की। उन्हें 'नीरजा' पर सेकसरिया पुरस्कार, 'स्मृति की रेखाएँ' पर द्विवेदी पदक, मंगलाप्रसाद पारितोषिक, उत्तर प्रदेश का विशिष्ट पुरस्कार, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान का 'भारत भारती' पुरस्कार तथा साहित्य का भारत में सबसे महत्वपूर्ण पुरस्कार 'ज्ञानपीठ पुरस्कार' भी प्राप्त हुए।

आधुनिक युग की मीरां : महादेवी

महादेवी वर्मा को 'आधुनिक युग की मीरां' भी कहा जाता है। जगदीश गुप्त लिखते हैं 'महादेवी जी ने जिन मध्यकालीन भक्त कवियों के पदों से प्रेरणा ली उनमें मीरा का स्थान सर्वोपरि है।' महादेवी वर्मा को 'आधुनिक युग की मीरा' कहने के पीछे का प्रमुख कारण उनकी वेदना, पीड़ा रहस्य ही है। रायकृष्णदास ने महादेवी की पुस्तक 'नीरजा' के वक्तव्य में लिखा है कि 'श्रीमती वर्मा हिंदी कविता के इस वर्तमान युग की वेदना प्रधान कवयित्री हैं। उनकी काव्य वेदना आध्यात्मिक है। उसमें आत्मा का परमात्मा के प्रति आकुल प्रणय-निवेदन है। ... मीरां ने

जिस प्रकार उस परम पुरुष की उपासना सगुण रूप में की थी, उसी प्रकार महादेवी जी ने अपनी भावनाओं में उसकी आराधना निर्गुण रूप में की है।' महादेवी वर्मा मीरां को बहुत महत्व देती थीं। यही कारण है कि 1933 में उन्होंने 'मीरां जयंती' का शुभारंभ किया। इसी के साथ-साथ 1936 में रामगढ़ नैनीताल में 'मीरा मंदिर' नामक कुटीर का निर्माण कराया। मीरां के संबंध में महादेवी जी के विचारों को समझने के लिए हमें उनकी पुस्तक 'मीरा और मीरा' को देखना चाहिए।

अंतिम समय

11 सितंबर, 1987 को 'महीयसी महादेवी' सदा-सदा के लिए इस नश्वर संसार को छोड़कर चली गईं। वर्तमान वे भले ही सशरीर हमारे बीच नहीं हैं लेकिन उनका साहित्य अवश्य ही हमारे पास है। जिससे हम उनके विचारों को जान और समझ सकते हैं।

5.3.2 रचना यात्रा

महादेवी वर्मा तो बचपन से ही कविताएँ लिखने लगी थीं। हालांकि वे शुरूआती दौर में ब्रजभाषा में लिखती थीं लेकिन बाद में वे हिंदी खड़ी बोली में पूरी गति के साथ लिखने लगीं। इनके ऊपर मैथिलीशरण गुप्त का प्रभाव पड़ा था। इसलिए उन्हीं के अनुसरण पर इन्होंने देशभक्ति की कुछ कविताएँ भी लिखी थीं। उनकी रचनाएँ विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रहती थीं। 'नीहार' की कुछ रचनाएँ तत्कालीन लघु पत्रिकाओं - स्त्री दर्पण, मर्यादा आदि में प्रकाशित हुई थीं। सन 1922 से तो नियमित रूप से 'चाँद' पत्रिका में प्रकाशित होने लगीं। 'नीहार' में उनकी वे रचनाएँ सम्मिलित हैं जब वे कक्षा आठ में थीं।

सन 1920 में महादेवी ने करुण रस का खंड काव्य भी लिखा था जो अप्रकाशित एवं अप्राप्य है। 1923 में एक नाटक की भी रचना की जिसमें फूल, भ्रमर, तितली, वायु आदि को पात्रों के रूप में प्रस्तुत किया गया था। यह भी अप्रकाशित ही रहा।

महादेवी वर्मा काव्य के क्षेत्र में पहले प्रविष्ट हुईं। बाद में गद्य की तरफ गईं। इनकी प्रमुख काव्य कृतियाँ हैं - 'नीहार' (1930), 'रश्मि' (1932), 'नीरजा' (1934), 'सांध्यगीत' (1936) और 'दीपशिखा' (1942), संधिनी और अग्निरेखा। नीहार, रश्मि, नीरजा, सांध्यगीत के गीतों को संकलित कर 'यामा' शीर्षक से प्रकाशित करवाया गया। उनकी गद्य रचनाएँ हैं - 'अतीत के चलचित्र' (1941), 'शृंखला की कड़ियाँ' (1942), 'स्मृति की रेखाएँ' (1943), 'पथ के साथी' (1956), 'साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबंध' (1962)। इन्होंने कुछ ग्रंथों का अनुवाद और संपादन भी किया है। 1959 में 'सप्तपर्णा' में इन्होंने वैदिक और संस्कृत काव्य के कुछ मार्मिक अंशों का अनुवाद किया है। 'बंग दर्शन' (1944) में बंगाल में अकाल और 'हिमालय' (1963) में चीनी आक्रमण से उत्पन्न परिस्थियों के संदर्भ में विभिन्न कवियों की कविताओं का संग्रह और संपादन किया है। बाल कविताओं के भी दो संकलन 'ठाकुर जी भोले हैं' और 'आज खरीदेंगे हम ज्वाला' प्रकाशित हुए हैं। इसके अलावा वे चित्रकला में भी रुचि रखती थीं। उनकी रचनाओं में कविता से संबंधित चित्र भी दिखाई देते हैं।

5.3.3 रचनाओं का परिचय

महादेवी के साहित्य को दो भागों में बाँटकर देखा जा सकता है -पद्य (कविता) और गद्य।

पद्य (कविता)

महादेवी वर्मा को कवयित्री के रूप में विशेष महत्व प्राप्त है। उनकी प्रमुख काव्य कृतियाँ हैं-

(क) नीहार, रश्मि, नीरजा, सांध्यगीत : यामा

'नीहार' (1930) इनका पहला कविता संग्रह है। जगदीश गुप्त लिखते हैं कि 'नीहार' शब्द अंधकार और प्रकाश के सम्मिलन का प्रारंभिक बिंदु है, जिसमें ज्ञात से अधिक अज्ञात महत्वपूर्ण दिखाई देता है। वस्तुतः अज्ञात का आकर्षण इन कविताओं का प्रेरणा स्रोत है। संसार की नश्वरता और दुख का अंदाजा इन पंक्तियों से लगाया जा सकता है-

तब बुझते तारों में नीरव नयनों का यह हाहाकार।
आँसू से लिख-लिख जाता है कितना अस्थिर है संसार।

'रश्मि' (1932) उनका दूसरा काव्य संग्रह है। इन रचनाओं में सूर्य, किरण और चंद्र किरण दोनों ही अर्थों में रश्मि का प्रयोग हुआ। महादेवी भी इसी तरह की बात कहती हैं - धरा से ले परमाणु उधार, किया किसने मानव साकार।

'नीरजा' (1934) उनका तीसरा काव्य संग्रह है। इसके वक्तव्य में रायकृष्णदास ने लिखा है कि 'श्रीमती वर्मा हिंदी कविता के इस वर्तमान युग की वेदना-प्रधान कवयित्री है। उनकी काव्य वेदना आध्यात्मिक है। उसमें आत्मा का परमात्मा के प्रति आकुल प्रणय निवेदन है। कवि की आत्मा मानो विश्व में बिछुड़ी हुई प्रेयसी की भाँति अपने प्रियतम का स्मरण करती है। उसकी दृष्टि से विश्व की संपूर्ण प्राकृतिक शोभा-सुषमा एक अनंत-अलौकिक चिर सुंदर की छायामात्र है।'

चौथा काव्य संग्रह 'सांध्यगीत' (1936) में उनकी आस्था दर्शन का रूप ले चुकी है। महादेवी ने इसकी भूमिका में लिखा है कि 'वास्तव में गीत के कवि को अतिक्रंदन के पीछे दुखातिरेक को दीर्घ निश्वास में छिपे हुए संयम से बाँधना होगा तभी उसका गीत दूसरे के हृदय में उसी भाव का उद्रेक करने में सफल हो सकेगा।'

'नीहार', 'रश्मि', 'नीरजा', 'सांध्यगीत' को मिलाकर एक काव्य संग्रह प्रकाशित किया जिसका नाम 'यामा' (1940) हैं। नीहार वह समय है जा अंधेरा पूरी तरह समाप्त नहीं हुआ हो और उजाला भी पूरी तरह नहीं हुआ हो। अर्थात अंधकार और प्रकाश का मिलन बिंदु। यह एक याम या पहर है। यामा के विषय में महादेवी ने 1939 में 'अपनी बात' के अंतर्गत लिखा था कि 'यामा में मेरे अंतर्जगत के चार यामों का छायाचित्र है। ये यामा दिन के हैं या रात के यह कहना मेरे लिए असंभव नहीं तो कठिन अवश्य है। यदि ये दिन के हैं तो इन्होंने मेरे हृदय को श्रम से क्लांत बनाकर विश्राम के लिए आकुल नहीं बनाया और यदि रात के हैं तो इन्होंने अंधकार में

मेरे विश्वास को खोने नहीं दिया; अतएव मेरे निकट इनका मूल्य समान है और समान ही रहेगा।'

बोध प्रश्न

- 'यामा' के संदर्भ में महादेवी ने क्या कहा?

(ख) दीपशिखा (1942) का अर्थ है 'दीपक की शिखा' या 'दीपक की लौ'। 'दीपशिखा' में 'दीपक' पर लिखा गया है। दीपशिखा की भूमिका 'चिंतन के क्षण' को देखने पर इसके बारे में पता चलता है। दीपशिखा के 'दो शब्द' के अंतर्गत वे लिखती हैं 'आलोक मुझे प्रिय है, पर दिन से अधिक रात का-दिन में तो अंधकार से उसके संघर्ष का पता नहीं चलता परंतु रात में हर झिलमिलाती लौ योद्धा की भूमिका में अवतरित होती है। इस नाते दीपशिखा मेरे अधिक निकट है।'

(ग) 'सप्तपर्णा' (1959) की भावभूमि अलग है। इसमें महादेवी ने वैदिक, लौकिक, वाल्मीकि रामायण, थेरगाथा, अश्वघोष, कालिदास, भवभूति और जयदेव की रचनाओं के महत्वपूर्ण अंशों का काव्यानुवाद है।

(घ) 'अग्निरेखा' (1990) यह रचना महादेवी की मृत्यु के लगभग तीन वर्ष बाद प्रकाशित हुई। इसके प्रकाशन का अधिकार 'साहित्य सहकार न्यास प्रयाग' के पास है। यह रचना भले ही 1990 में प्रकाशित हुई लेकिन इसमें अधिकांश गीत पहले के लिखे हुए हैं जो पहले नहीं छपे थे। इसका नाम 'अग्निरेखा' स्वयं महादेवी जी ने रखा था जिसका अर्थ है 'अग्नि की रेखा या आग की रेखा'।

बोध प्रश्न

- दीपशिखा महादेवी वर्मा के अधिक निकट क्यों है?

गद्य

महादेवी वर्मा ने प्रचुर मात्रा में गद्य साहित्य का भी सृजन किया है। गद्य के संदर्भ में वे स्वयं लिखती हैं 'विचार के क्षणों में मुझे गद्य लिखना ही अच्छा लगता रहा है, क्योंकि उसमें अपनी अनुभूति ही नहीं, बाह्य परिस्थितियों के विश्लेषण के लिए भी पर्याप्त अवकाश रहता है।' रामजी पाण्डेय ने महादेवी के गद्य के संदर्भ में कहा कि - 'महादेवी जी भारत में सबसे अच्छा गद्य लिखती हैं। वे गद्य की राजकुमार हैं।'

(क) 'अतीत के चलचित्र' (1941) विधा के आधार पर इस रचना को संस्मरण और रेखाचित्र दोनों स्वीकार किया जाता है। हालांकि वे स्वयं इन्हें संस्मरण ही मानती हैं। इसमें कुल 11 रेखाचित्र हैं यथा- रामा (03 जुलाई, 1920), भाभी (11 अक्टूबर, 1933), बिन्दा (5 अगस्त, 1934), सबिया (3 मार्च, 1935), बिट्टो (4 जनवरी, 1935), बालिका माँ (21 नवंबर, 1935), घीसा (17 अगस्त, 1936), अभागी स्त्री (6 सितंबर, 1937), आलोपी (20 फ़रवरी, 1938), बदलू (17 दिसम्बर, 1936), लछमा (28 अगस्त, 1939)। कोष्ठक में उनकी लेखन तिथि और वर्ष

अंकित है। इस पुस्तक में अपनी बात शीर्षक के अंतर्गत वे इनको लिखने का उद्देश्य बताती हैं- 'उद्देश्य केवल यही था कि जब समय अपनी तूलिका फेरकर इन अतीत चित्रों की चमक मिटा दे, तब इन संस्मरणों के धुंधले आलोक में मैं उन्हें फिर पहचान सकूँ। ... इन स्मृति चित्रों में मेरा जीवन भी आ गया है।'

(ख) 'स्मृति की रेखाएँ' (1943) महादेवी वर्मा की इस कृति में कुल सात संस्मरण/ रेखाचित्र हैं - भक्तिन, चीनी फेरीवाला, जंग बहादुर, मुन्नू, ठकुरी बाबा, बिबिया, गुंगिया। इस रचना के सभी रेखाचित्रों में ग्रामीण जीवन और गरीबी, उसकी त्रासदी आदि को देखा जा सकता है। 'भक्तिन' आत्मसम्मान के लिए अपनी ससुराल को छोड़ देने वाली महिला की कथा है। 'चीनी फेरीवाला' चीनी फेरीवाले की आत्मप्रियता के साथ उसके त्रासद जीवन की कथा है। 'जंगबहादुर' में पहाड़ी प्रदेश की दुर्गमता, वहाँ के कुलियों का जीवन, दो भाइयों के बीच प्रेम, आदि को देखा जा सकता है। ये कथा बदरी केदारनाथ धाम की है। 'मुन्नू' में मुन्नू अरैल का रहने वाला है। वर्तमान में भी यह क्षेत्र है और ये काफी जरायम पेशा करने वालों का क्षेत्र माना जाता है। इसमें उनकी त्रासद स्थितियों का चित्रण है। 'ठकुरी बाबा' में ग्रामीण जीवन की सहृदयता को देखा जा सकता है। 'बिबिया' में धोबी समाज की अच्छाइयों के अलावा उनकी कमियों को भी देखा जा सकता है। 'गुँगिया' रेखाचित्र में ग्रामीण जीवन के अपनत्व की भी चर्चा है।

(ग) 'पथ के साथी' (1956) में रवींद्रनाथ ठाकुर, मैथिलीशरण गुप्त, सुभद्राकुमारी चौहान, सूर्यकांत त्रिपाठी निराला, जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानंदन पंत और सियारामशरण गुप्त पर केंद्रित कुल सात संस्मरण सम्मिलित हैं।

(घ) 'मेरा परिवार' (1972) में सात संस्मरण हैं। ये मानवेतर प्राणियों अर्थात पशु-पक्षियों संबंधित हैं। पशु-पक्षियों के लिए महादेवी के हृदय में इतनी करुणा देखकर आश्चर्य होना स्वाभाविक है। वे पशुओं और पक्षियों के प्रति इतनी संवेदना रखती हैं कि जैसे वे पशु-पक्षी नहीं बल्कि उनके परिवार के सदस्य हों। इस विषय में इलाचंद्र जोशी ने लिखा है कि 'ये कृतियाँ मानवीय भावज्ञता, संवेदना और कलात्मक प्रतिभा के अपूर्व निदर्शन की दृष्टि से शाब्दिक अर्थ में अपूर्व और अद्‌भुत कलात्मक चमत्कार के नमूने हैं।'

इस पुस्तक में पहला संस्मरण 'नीलकंठ' है। यह एक मोर है। नीलकंठ को लेखिका ने प्रयाग के नखास-कोना से खरीद था। दूसरा संस्मरण है 'गिल्लू'। गिल्लू एक गिलहरी है। तीसरा संस्मरण है 'सोना हिरनी'। चौथा संस्मरण है 'दुर्मुख-खरगोश'। पाँचवाँ संस्मरण है 'गौरा गाय'। छठवाँ संस्मरण है 'नीलू कुत्ता'। सातवाँ और अंतिम संस्मरण है 'निक्की, रोजी और रानी'। निक्की एक नेवला है। रोजी कुतिया है। महादेवी का कहना है कि 'पशु-मनुष्य के निश्छल प्रेम से परिचित रहते हैं, उसकी ऊँची-नीची सामाजिक स्थितियों से नहीं।' रेखा अवस्थी ने 'मेरा परिवार' के विषय में सत्य ही लिखा है 'इन संस्मरणों से जहाँ महादेवी जी के पशु-प्रेम का ज्ञान होता है। वहीं पशुओं–पक्षियों की आदतों स्वभावों का भी पता चलता है।'

बोध प्रश्न

- महादेवी की गद्य रचना का एक नाम बताइए।

(ङ) 'शृंखला की कड़ियाँ' (1942) में महादेवी ने भारतीय नारी की समस्याओं का विवेचन किया है। इस विवेचन में थोड़ी उग्रता अवश्य ही आ गई है। वे लिखती हैं, 'प्रस्तुत संग्रह में कुछ ऐसे निबंध जा रहे हैं जिनमें मैंने भारतीय नारी की विषम परिस्थितियों को अनेक दृष्टि-बिंदुओं से देखने का प्रयास किया है। अन्याय के प्रति मैं स्वभाव से असहिष्णु हूँ अतः इन निबंधों में उग्रता की गंध स्वाभाविक है। परंतु ध्वंस के लिए ध्वंस के सिद्धांत में मेरा कभी विश्वास नहीं रहा।' इस पुस्तक में अपनी बात (1942) के अलावा कुल 11 शीर्षक हैं- 1. हमारी शृंखला की कड़ियाँ (1931), 2. युद्ध और नारी (1933), 3. नारीत्व का अभिशाप (1933), 4. आधुनिक नारी (1934), 5. घर और बाहर (1934), 6. हिंदू स्त्री का पत्नीत्व (1934), 7. जीवन का व्यवसाय (1934), 8. स्त्री के अर्थ स्वातंत्र्य का प्रश्न (1935), 9. हमारी समस्याएँ (1936), 10. समाज और व्यक्ति (1937), 11. जीने की कला (1934)। निबंधों के अंत में उनका लेखन वर्ष दे दिया गया है। हमने इसीलिए वर्ष को कोष्ठक में बंद करके लिख दिया है।

युद्ध और नारी शीर्षक निबंध में लेखिका ने लिखा है कि 'पुरुष का जीवन संघर्ष से आरंभ होता है और स्त्री का आत्मसमर्पण से।' हमें यह ध्यान में रखना चाहिए की स्त्री का हृदय अत्यंत कोमल होता है। पुरुष युद्ध प्रिय हो सकता है, लेकिन स्त्री कभी किसी युद्ध या गृह कलह को नहीं चाहती। उसके पीछे कुछ कारण होते हैं। पुरुष बाहरी दुनिया में ज्यादा मशगूल रहता है। उसे रोजी रोटी के लिए बाहर रहना पड़ता है। इसलिए वह घर से उतना अनुरक्त नहीं हो पाता, जितना की स्त्री होती है। वह अपना पूरा दिन या कहें अपना पूरा जीवन घर में ही गुजारती है। लेखिका ने सत्य ही लिखा है कि 'कुछ स्वभाव के कारण और कुछ बाहर के संघर्ष में रहने के कारण पुरुष गृह में उतना अनुरक्त नहीं हो सका जितना स्त्री हो गई थी। उसके लिए गृह का उजड़ जाना एक सुख के साधन का बिगड़ जाना हो सकता है, परंतु, स्त्री के लिए वही जीवन का उजड़ जाना है।' आधुनिकता के नाम पर स्त्रियों का युद्ध प्रिय होना महादेवी को स्वीकार नहीं।

स्त्रियों के साथ पुरुषों ने कम अत्याचार नहीं किए हैं, चाहे वह कोई आम पुरुष हो या फिर कोई पराक्रमी या कोई भगवान। सब ने स्त्रियों पर किसी न किसी परिस्थिति के वशीभूत होकर अत्याचार किया। वे नारीत्व का अभिशाप शीर्षक निबंध में लिखती हैं कि 'मनुष्य की साधारण दुर्बलता से युक्त दीन माता का वध करते हुए न पराक्रमी परशुराम का हृदय पिघला, न मनुष्यता की असाधारण गरिमा से गुरु सीता को पृथ्वी में समाहित करते हुए राम का हृदय विदीर्ण हुआ।' हम भले ही नारी की स्वतंत्रता की बात करें, लेकिन किसी न किसी रूप में हम उसे बंदी बनाकर ही रखना चाहते हैं। चाहे उसे सोने के खूब सारे आभूषण पहना कर बंदिनी बनाया जाए या फिर लौह पिंजर में बंद करके। हम नारी को देवी का रूप बताते हैं लेकिन उसी देवी को जलाते समय, उसका अपहरण करते समय, उस पर अत्याचार करते समय, हम ये सब भूल जाते हैं।

ग्रामीण क्षेत्रों में आज भी ज्यादा पढ़ी-लिखी लड़की को घर की बहू बनाने में लोग हिचकते हैं। कहते हैं 'बड़ी तेज होगी', ज़बानदराज होगी। सवाल उठता है कि यह सब किसी एक घर की बहू की कारस्तानी को देखकर कहा जाता है। पुरुष इसका समर्थन अपने फायदे नुकसान को देखते हुए करता है। यदि कोई बहू अपना हक माँगती है तो उसे गलत कहना ठीक नहीं है। एक सवाल अवश्य ही उठाया जाता है कि यदि कोई पढ़ी-लिखी लड़की बाहर नौकरी नहीं करे तो फिर वह घर संभालने के अलावा और क्या करे? 'घर और बाहर' शीर्षक निबंध में वे लिखती हैं कि 'बाहर के सार्वजनिक कार्यों के अतिरिक्त और भी ऐसे क्षेत्र हैं जिनमें स्त्री घर में रहकर भी बहुत कुछ कर सकती उदाहरण के लिए हम साहित्य के क्षेत्र को ले सकते हैं, जिसके निर्माण में स्त्री का सहयोग व्यक्ति और समाज दोनों के लिए उपयोगी सिद्ध होगा।' इसके अलावा सिलाई-कढ़ाई-बुनाई, ब्यूटी पार्लर, मेहंदी, राजाई, गद्दा, तकिया सिलना, कुटीर उद्योग लगाना आदि कार्य किए जा सकते हैं। इससे स्त्री स्वावलंबी होगी, साथ ही उसकी सामाजिक व आर्थिक स्थिति भी सुधरेगी। इसी तरह स्त्रियों के विषय में बहुत ही गंभीरता से विचार किया गया है। हाँ संदर्भ अवश्य ही भारत की स्त्रियाँ रही हैं। महादेवी स्वयं एक स्त्री थीं वे उनके दुख दर्द को बहुत अच्छे से जानती थीं इसलिए स्वानुभूति के आधार पर भी उन्होंने स्त्री समाज पर गंभीरतापूर्वक विचार किया है। इसमें कोई संदेह नहीं है।

बोध प्रश्न

- बाहर के कार्यों को छोड़कर घर पर रहकर ही महिलाओं द्वारा कौन-कौन से कार्य किए जा सकते हैं?

(च) साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबंध (1962)। महादेवी के आलोचनात्मक निबंधों की यह एक बहुत ही महत्वपूर्ण पुस्तक है। इस पुस्तक में आलेखों का चयन व उनका संपादन गंगा प्रसाद पांडेय ने किया है। इस पुस्तक में विज्ञप्ति के अलावा आठ आलोचनात्मक निबंध हैं। इनके शीर्षक हैं- 'साहित्यकार की आस्था', 'काव्य-कला', 'छायावाद', 'रहस्यवाद', 'गीतिकाव्य', 'यथार्थ और आदर्श', 'सामयिक समस्या' और 'हमारे वैज्ञानिक युग की समस्या'। लेखिका स्वयं रहस्यवादी कविताएँ लिखती हैं। छायावाद के अंतर्गत गिनी जातीं हैं। इसके साथ-साथ वे गीत शैली में भी लिखती हैं।

यदि उनके निबंध काव्य-कला की बात करें तो इसमें उन्होंने स्वानुभूति पर भी बात की है। वर्तमान में चाहे दलित विमर्श हो या फिर आदिवासी विमर्श हो। मुस्लिम विमर्श हो या स्त्री विमर्श, सभी जगह स्वानुभूति पर विशेष बल दिया जाता है। वे लिखती हैं, 'हमारे स्वयं जलने की हल्की अनुभूति भी दूसरे के राख हो जाने के ज्ञान से अधिक स्थाई रहती है।' वर्तमान में स्वानुभूति को लेकर जितना आग्रह देखा जाता है उतना महादेवी के समय में नहीं था। इसके साथ साहित्यकार/ कलाकार की विशेषता का भी अपना महत्व होता है। वे स्वयं लिखती हैं 'कांटा चुभाकर कांटे का ज्ञान तो संसार दे ही देगा। परंतु कलाकार बिना कांटा चुभने की पीड़ा दिए हुए ही उसकी कसक की तीव्र मधुर अनुभूति दूसरे तक पहुँचाने में समर्थ है।' उन्होंने साहित्यकारों के बीच आपसी खींचतान व ईर्ष्या के साथ-साथ विदेशी विचारों व सिद्धांतों की

ओर आकृष्ट होकर अत्यधिक महत्व पा जाने या पा लेने की कोशिश करने वालों की भी बात की है। वे सिर्फ पहनने-ओढ़ने के मामले में ही नहीं, विचारधारा के आधार पर भी स्वदेशी पर विशेष बल देती हैं।

महादेवी 'छायावाद' शीर्षक निबंध में छायावाद पर भी गंभीरता पूर्वक विचार करती हैं। हमें ध्यान में रखना चाहिए कि प्रारंभ में काव्य की रचना ब्रजभाषा में होती थी। उसे खड़ी बोली में लाने के प्रयास महावीर प्रसाद द्विवेदी जैसे विद्वान कर रहे थे। छायावाद बदलाव का दौर रहा है। प्रारंभ में भाषा का बदलना एक बड़ी समस्या थी। इस समस्या को महादेवी अनुभव कर रही थीं इसीलिए इस निबंध में उन्होंने लिखा था। 'काव्य की भाषा बदलना सहज नहीं होता और वह भी ऐसे समय जब पूर्वगामी भाषा अपने माधुर्य में अजेय हो, क्योंकि एक नवीन अनगढ़ शब्दों में काव्य की उत्कृष्टता की रक्षा कठिन हो जाती है। दूसरे उत्कृष्टता के अभाव में प्राचीन का अभ्यस्त युग उसके प्रति विरक्त होने लगता है। और छंद तो भाषा के सौंदर्य की सीमाएँ हैं, अतः भाषा विशेष से भिन्न करके उनका मूल्यांकन असंभव हो जाता है।' खड़ी बोली में काव्य रचना करते समय कवियों ने संस्कृत शब्दावली तथा विभिन्न छंदों को चुना जो संस्कृत में उन शब्दों का भार संभालने के साथ-साथ नाद सौंदर्य की कसौटी पर भी खरे उतर चुके थे।

छायावाद का कवि धर्म के अध्यात्म का उतना कर्जदार नहीं है जितना कि वह दर्शन के ब्रह्म का है। उसका कारण यह है कि वह दर्शन का ब्रह्म मूर्त और अमूर्त विश्व को मिलाकर पूर्णता पाता है। छायावाद के विषय में यह आम धारणा बन गई थी कि इसकी प्रवृत्ति पलायनवादी है। यह जीवन संग्राम में लड़ने के बजाए मैदान छोड़कर भाग जाने में यकीन रखता है। अपने आप में ही मस्त रहने की कोशिश करता है। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि इसी छायावाद के प्रमुख कवि निराला ने कितना संघर्ष किया। रामस्वरूप चतुर्वेदी ने लिखा है, 'छायावाद शक्ति काव्य है।' छायावादी काव्य व गद्य साहित्य केवल पलायन ही नहीं सिखाता बल्कि संघर्ष भी सिखाता है। महादेवी वर्मा उसी पलायन की प्रवृत्ति में बहुत कुछ सकारात्मक ढूँढ़ लेती हैं। वे लिखती हैं, 'पालयनवृत्ति के संबंध में हमारी यह धारणा बन गई है कि वह जीवन संग्राम में असमर्थ छायावाद की अपनी विशेषता है। सत्य तो यह है कि युगों से, परिचित से अपरिचित, भौतिक से अध्यात्म, भाव से बुद्धि पक्ष, यथार्थ से आदर्श आदि की ओर मनुष्य को ले जाने और उसी क्रम से लौटाने का बहुत कुछ श्रेय इसी पालयनवृत्ति को दिया जा सकता है।'

एक समय में छायावाद को दुखवाद का पर्याय मान लिया गया था। कारण तो यह था कि महादेवी का अधिकांश काव्य तथा उनके रेखाचित्र-संस्मरण में जो बातें उभरकर आ रही थीं, उनमें केवल दुख ही दुख दिखा रही थीं। वे लिखती हैं, 'छायावाद को दुखवाद का पर्याय समझ लेना भी सहज हो गया है। जहाँ तक दुख का संबंध है, उसके दो रूप हो सकते हैं - 'एक जीवन की विषमता की अनुभूति से उत्पन्न करुणा भाव, दूसरा जीवन के स्थूल धरातल पर व्यक्तिगत असफलताओं से उत्पन्न विषाद।' हमें ध्यान में रखना चाहिए कि प्रत्येक व्यक्ति के सामने कुछ ऐसे दृश्य आते हैं जब उसे विषमता की अनुभूति होती है। महात्मा बुद्ध को भी विषमता की

अनुभूति हुई थी। इसके साथ-साथ प्रत्येक व्यक्ति चाहे वह साहित्यकार ही क्यों न हो वह जीवन में कभी-न-कभी एक बार ही सही असफल जरूर होता है।

छायावाद पर एक बड़ा गंभीर आरोप था कि यह पश्चिमी परंपरा व बंगला साहित्य से प्रभावित है। इस विषय में भी महादेवी लिखती हैं 'छायावाद आज के यथार्थ से दूर जान पड़ने पर भी भारतीय काव्य की मूल प्रेरणाओं के निकट है। उसके प्रतिनिधि कवि, भारतीय संस्कृति, दर्शन तथा प्राचीन साहित्य से विशेष परिचित रहे हैं। पश्चिमी और बंगला काव्य साहित्य से उनका परिचय हुआ अवश्य, परंतु उसका अनुकरण मात्र काव्य को इतनी समृद्धि नहीं दे सकता था। विशेषतः बंगाल से उन्हें जो मिला, वह तत्वतः भारतीय ही था, क्योंकि कवींद्र स्वयं भारतीय संस्कृति के सबसे समर्थ प्रहरी हैं। उन्होंने अपने देश की अध्यात्म सुधा से पश्चिम का मृत्तिका पात्र भर दिया, इसी से भारतीय कवियों ने उसके दान को अपना ही मानकर ग्रहण किया और पश्चिम ने कृतज्ञता के साथ।' हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि उधार की सामग्री से बहुत दिनों तक काम नहीं चलाया जा सकता। छायावादियों ने दूसरों से सीखा है लेकिन उनके पास अपना भी बहुत कुछ था।

हिंदी में रहस्यवाद की अपनी एक परंपरा रही है। सिद्धों व नाथों से लेकर कबीर, जायसी तक में रहस्यवाद को देखा जा सकता है। छायावाद के कवियों के यहाँ भी रहस्यवाद दिखता है, लेकिन इस रहस्यवाद में कुछ अंतर है। रहस्यवाद में जो प्रवृत्तियाँ मिलती हैं, उसके मूल रूप को हम उपनिषदों में देख सकते हैं। उपनिषदों की रहस्य भावना का प्रभाव बौद्ध और जैन मतों पर भी पड़ा था। इसमें कोई संदेह नहीं है। जहाँ तक हिंदी काव्य में रहस्यवाद की बात है तो वे लिखती हैं, 'हिंदी काव्य में रहस्यवाद वहाँ से आरंभ होता है जहाँ दोनों ओर के तत्वदर्शी एक असीम आकाश के नीचे ही नहीं, एक सीमित धरती पर भी खड़े हो सके। अतः दोनों ओर की विशेषताएँ मिलकर गंगा-यमुना के संगम से बनी त्रिवेणी के समान एक तीसरी काव्यधारा को जन्म देती है।'

'गीतिकाव्य' शीर्षक निबंध में उन्होंने गीत के विषय में चर्चा की है। तत्कालीन छायावादी युग को उन्होंने गीत प्रधान कहा है। सवाल उठता है कि गीत किसे कहते हैं? 'सुख-दुख की भावावेशमयी अवस्था विशेष का, गिने चुने शब्दों में स्वर-साधना के उपयुक्त चित्रण कर देना ही गीत है।' इस निबंध में उन्होंने गीतों में यथार्थ की अभिव्यक्ति को भी बताया है।

बोध प्रश्न

- रहस्यवाद के संबंध में महादेवी की क्या मान्यता है?
- छायावाद पर क्या आरोप था?
- छायावाद को रामस्वरूप चतुर्वेदी ने किस तरह का काव्य माना है?

'यथार्थ और आदर्श' शीर्षक निबंध में यथार्थवादी और आदर्शवादी के बीच निहित अंतर को स्पष्ट करते हुए वे लिखती हैं, 'यथार्थवादी, प्रत्यक्ष का सीमित शरीर देकर हमें व्यापक और अप्रत्यक्ष स्पंदन की अनुभूति देता है और आदर्शवादी, व्यापक जीवन का भावना देकर हमें उसके

सीमित रूपों का पता बताता है। यथार्थवादी चित्रण करते हुए हम ये सोचते हैं कि कुछ नहीं बस जो देखा उसी को लिख डालो हो गया यथार्थवादी लेखन। प्रेमचंद ने लिखा है, 'यथार्थवादी लेखन अपने मुख पर कालिख पोतने के जैसा है।' हमें यह ध्यान में रखना चाहिए कि यथार्थवादी चित्रण करते समय उसमें आदर्शवाद का भी समन्वित रूप हो। वर्तमान में यथार्थवादी चित्रण के नाम पर साहित्य का चीरहरण तथा उसे अश्लील बनाने का भी कम प्रयास नहीं हो रहा है। भक्तिकालीन कवियों के यहाँ भी यथार्थ का चित्रण है। तत्कालीन सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक परिस्थितियों का चित्रण है लेकिन इसके साथ वहाँ आदर्श का भी रूप दिखाई देता है। इसके अलावा अन्य निबंधों में भी विषय को देखते हुए उस पर गंभीरतापूर्वक विचार किया गया है।

5.3.4 महादेवी का दर्शन

प्रिय छात्रो! प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन में किसी न किसी दर्शन को स्वीकार करता है। प्रत्येक दर्शन किसी न किसी धार्मिक व्यक्ति, धर्मग्रंथ, धर्म से संबद्ध होता है। इसी तरह महादेवी वर्मा पर भी बौद्ध दर्शन का गहरा प्रभाव था। यह प्रभाव इस तरह था कि उन्होंने बौद्ध भिक्षुणी बनने का फैसला ले लिया था। इनका झुकाव बचपन से ही बौद्ध धर्म के प्रति था। 1929 में बी. ए. करने के बाद ग्रीष्म अवकाश में नैनीताल में संभावित गुरु बौद्ध महास्थविर से मिलीं। उन्होंने इनसे एक काष्ठ पट्टिका की ओट लेकर बातचीत की। यह बात इन्हें अपमानजनक लगी। इसलिए इन्होंने बौद्ध भिक्षुणी बनने का विचार त्याग दिया। उसी समय नैनीताल में महात्मा गांधी के संपर्क में आईं। फिर इनका मन सामाजिक कार्यों की ओर उन्मुख हो गया। 'महादेवी पर बौद्ध दर्शन का प्रभाव केवल उनकी लोकमंगलविधायिनी पीड़ा की स्वीकृति तक ही सीमित है, अन्यथा जहाँ तक सत्य के पारमार्थिक स्वरूप का संबंध है, वे उपनिषदों की परंपरा को ही स्वीकार करती हैं।' (सं. नगेंद्र, हिंदी साहित्य का इतिहास)। यह तो ठीक है कि उन्होंने उपनिषदों से भी काफी कुछ प्राप्त किया था लेकिन उनके काव्य के दुखवाद, बौद्ध भिक्षुणी बनने का प्रयास, विश्ववाणी के बुद्ध अंक का संपादन ये सभी महादेवी के बौद्ध दर्शन के प्रति झुकाव को प्रदर्शित करते हैं। बौद्ध दर्शन का उन पर अधिक प्रभाव था। इस बात की स्वीकृति उनके इस कथन से हो जाती है - 'मेरे संपूर्ण मानसिक विकास में उस बुद्ध प्रसूत चिंतन का भी विशेष महत्व है, जो जीवन की बाह्य व्यवस्थाओं के अध्ययन में गति पाता रहा है।'

बोध प्रश्न

- महादेवी वर्मा ने बौद्ध भिक्षुणी बनने का निर्णय क्यों बदल दिया था?

5.3.5 महादेवी वर्मा की भाषा और शैली

महादेवी की भाषा और शैली की बात को समझने के लिए हम महादेवी के ही कथन को आधार बना लेते है। उन्होंने 'संधिनी' में 'चिंतन के क्षण' शीर्षक के अंतर्गत लिखा है कि 'वस्तुतः भाषा का संबंध मनुष्य के अंतःकरण से होने के कारण वह उसके संपूर्ण भाव-जगत का संचालन करने की क्षमता रखती है, जिसकी गति की दिशा मनुष्य की क्रियाशीलता को प्रभावित किए

बिना नहीं रहती।' महादेवी भाषा की परिवर्तनशीलता को भी स्वीकार करती हैं। 'भाषा की प्रकृति परिवर्तनशील होने के कारण शब्द-संयोजन-विधान में परिवर्तन अनिवार्य हो जाते हैं।' काव्य में लय और छंद को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। इस विषय में भी वे लिखती हैं, 'भाषा की प्रकृति लयवती है। प्रत्येक उच्चारित शब्द वायु में विशेष कंपन उत्पन्न करता है और इसी कंपन की लहर-संसृति से हमारी श्रवणेंद्रिय का स्पर्श होता है।' काव्य में गेयता की बात करें तो वे कहती हैं, 'ध्वनि और लय की दृष्टि से काव्य और संगीत के मध्य विभाजन रेखा अत्यंत सूक्ष्म है, परंतु उसकी स्थिति में परिवर्तन की शंका नहीं। काव्य सार्थक शब्द समूह है और संगीत लय प्रधान ध्वनि समूह।' महादेवी ने लगभग सवा दो सौ गीत लिखे हैं और उनमें गेयता भी है।

डॉ. हरदेव बाहरी भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से महादेवी की काव्य-भाषा का विश्लेषण किया है। इसमें उन्होंने केवल उनकी एक कृति यामा को आधार बनाया है। उन्होंने 'नीहार' की सैंतालिस कविताओं के शब्द चयन की आवृत्तिमूलक सरणी बनाकर प्रस्तुत की है- पीड़ा, वेदना, व्यथा-48, प्राण-44, सपना, स्वप्न-34, आँसू-30, असीम, अनंत, सीमाहीन-30, दीप, दीपक-22, नैराश्य, निराश, विषाद, अवसाद-7 आदि। यहाँ शब्द के बाद लिखे हुए अंकों से यह प्रदर्शित हो रहा है कि ये शब्द इतनी बार प्रयोग में आए हैं।

केदारनाथ सिंह ने महादेवी के प्रमुख शब्दों के बारे में बताया है। ये शब्द हैं- अपरिचित, संकल्प, हात, मेल, दुकेला, मोम, जुगनू, सीप, दीपशिखा, रंगशाला, अर्चन, आरती, बेला आदि। केदारनाथ सिंह लिखते हैं- 'जिन वस्तुओं से एक सुरुचि संपन्न नारी अपने घर आस-पास को अलंकृत और आकर्षक बनाती है। उन्हीं वस्तुओं के कलात्मक उपयोग से उन्होंने अपने काव्य को मूर्त और भास्वर रूप प्रदान किया है। वही दीपशिखा, अंगराग, घनसार, दर्पण, केसर, अगुरुधुम, वेणिबंधन, शीशफूल, अलतक्क और दुकूल आदि कुछ ऐसे शब्द हैं जो उनकी रहस्यात्मक कविताओं को भी एक घरेलू स्पर्श से युक्त कर देते है।' इनके कुछ महत्वपूर्ण विशेषणों की बात करें तो दीवानी चोटें, मीठी याद, स्वप्निल हाला, मधुमय पीड़ा, पुलकित स्वप्न आदि प्रमुख हैं।

इनकी भाषा को लक्ष्य करके रेखा खरे ने लिखा है 'महादेवी कि भाषा का समरस रूप विधान के क्षेत्र में वैविध्य अथवा किसी तरह के परिवर्तन की गुंजाइश नहीं रख पाया है।' उनके 'नीरजा' के विषय में रेखा खरे लिखती हैं, 'नीरजा' से यह बात खुलकर सामने आ जाती है कि महादेवी की कविता रूपकात्मक अधिक है बिंबात्मक कम।'

हम अभी तक उनकी काव्य भाषा पर विशेष तौर पर बातचीत कर रहे थे। इनके अलावा उन्होंने गद्य साहित्य भी प्रचुर मात्र में सृजा है। वहाँ भी उनकी शब्दावली भावानुकूल व परिस्थिति के अनुकूल है। कहीं-कहीं व्यंग्य का भी सहारा लिया गया है। वे हिंदी खड़ीबोली में ही लिखती हैं, लेकिन तत्सम शब्दावली का प्रयोग प्रचुर मात्रा में करती हैं। इसका एक कारण है कि उन्होंने संस्कृत से एम.ए. किया था। इसके अलावा इन्हें अंग्रेजी के कुछ शब्दों का प्रयोग करने में कोई हिचकिचाहट नहीं है। अपने गद्य साहित्य में स्प्रिंगदार, जू, स्टूल, ड्रामा, ऑपरेशन, फोटो, इनलार्जमेंट, सप्लाइ, डेड लेटर, ऑफिस आदि शब्दों का प्रयोग करती हैं। इसी तरह ठेठ

शब्दों का प्रयोग करने में भी वे नहीं हिचकतीं यथा- 'चौपाल', 'ओसारा', 'खटिया', 'खटोला', 'दुलरुआ', 'लबार', 'बकुचा', 'गदबदा', 'पहलौठी', 'उगराना', 'पेरना', 'कंडा', 'मचिया', 'कक्का' आदि। उर्दू में प्रयुक्त होने वाले कुछ शब्द भी दिख जाते है।

इनकी साहित्य रचना प्रयाग (इलाहाबाद) में रहकर हुई है और यहाँ के गाँव में खड़ीबोली नहीं 'अवधी भाषा' बोली जाती है। इनके रेखाचित्रों के पात्र अवधी में बातचीत करते हैं। 'भक्तिन' रेखाचित्र में भक्तिन कहती है, 'ई कउन बड़ी बात आय! रोटी बनाय जानित है, दाल राँध लेइत है, साग-भाजी छौंक सकित है, अउर बाकी का रहा।' (अनुवाद- ये कौन सी बड़ी बात है! रोटी बनाना जानती हूँ, दाल घोंट लेती हूँ, शाक-सब्जी छौंक सकती हूँ और बाकी क्या रहा)। महादेवी ने प्रश्न किया था 'क्या तुम खाना बनाना जानती हो?' 'मुन्नू' शीर्षक रेखाचित्र में भक्तिन का उत्तर जो अवधी में है अपने आप में व्यंग्य लिए हुए है। भक्तिन कहती है 'शहर माँ शोर परा है कि ई गाँव का मलका कंडा बिनती हैं। गोबर पथती हैं, तौन उनही के दर्शन बरे दौरत आइत है। अउर का।' इसके अलावा इनके यहाँ भावात्मक, व्यंग्यात्मक, शैली सहित करुण रस आदि का प्रयोग किया गया है।

बोध प्रश्न

- भाषा के संबंध में महादेवी के मत को स्पष्ट कीजिए।

5.3.6 हिंदी साहित्य में महादेवी का स्थान एवं महत्व

हिंदी साहित्य में महादेवी वर्मा का एक महत्वपूर्ण स्थान है। इसका प्रमुख कारण है उनका प्रचुर साहित्य। उनकी कविताएँ दुख में भी सुखी रहने का आश्वासन देती हैं। हिंदी में गीति-काव्य लिखने वालों में उनका विशेष स्थान है। काव्य में उनकी भाषा भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। इन्हीं बातों को लक्ष्य करके आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है, 'गीत लिखने में जैसी सफलता महादेवी जी को हुई वैसी और किसी को नहीं। न तो भाषा का ऐसा स्निग्ध और कोमल प्रवाह और कहीं मिलता है, न हृदय की ऐसी भाव भंगिमा। जगह-जगह ऐसी ढली हुई और अनूठी व्यंजना से भरी हुई पदावली मिलती है कि हृदय खिल उठता है।' महादेवी के काव्य का महत्व यह है कि उनकी अनुभूति केवल व्यक्तिपरक आध्यात्मिकता की अनुभूति नहीं है। उसमें लोककल्याण की भावना छिपी है। उन्होंने मध्यकालीन रहस्य साधना को स्वीकार कर उसे लोककल्याण के साथ जोड़कर अपने युगानुरूप ढालने का प्रयास किया है। यह रहस्यवाद का एक नया आयाम है। जिसके उद्घाटन का श्रेय महादेवी को जाता है। इसी तरह महादेवी छायावादी कवयित्री हैं। छायावादी चतुष्टय के चार लोगों में वह अकेली महिला हैं। इसके साथ-साथ लघुत्रयी/ वर्मात्रयी में भी वह अकेली महिला हैं।

इसी तरह से उनके गद्य साहित्य के बारे में बात करें तो इन्होंने रेखाचित्र और संस्मरण साहित्य को प्रतिष्ठा दिलाने में महत्वपूर्ण कार्य किया है। इनका गद्य साहित्य पशु-पक्षियों व समाज के दरिद्र लोगों, स्त्रियों को अभिव्यक्ति देने का माध्यम बना है। इसके साथ-साथ आधुनिक

काल में भी संस्कृतनिष्ठ तत्सम शब्दावली का प्रयोग और अवधी को प्रयुक्त कर इन्होंने महत्वपूर्ण कार्य किया है।

5.4 पाठ सार

इस प्रकार हम देखते हैं कि भले ही महादेवी ने तुकबंदी या कविता से लेखन की शुरूआत की लेकिन उन्होंने गद्य भी प्रचुर मात्रा में लिखा। गद्य की अधिकांश विधाओं में न सही लेकिन उन्होंने ऐसी विधा पर लेखनी चलाई जिसको बहुत कम महत्व दिया जाता था या दिया जाता है। हिंदी में कविता तो एक प्रमुख विधा है ही उसमें गीत तो और भी महत्वपूर्ण है। उन्होंने लगभग सवा दो सौ गीत लिखे हैं। इसके विपरीत उन्होंने आलोचना व निबंध भी लिखा है। संस्मरण और रेखाचित्र जैसी महत्वपूर्ण विधाओं को भी केंद्र में लाने का महत्वपूर्ण प्रयास किया।

पशु-पक्षियों के संदर्भ में उनका हृदय बहुत ही अधिक करुणा से भरा था। उन पशु-पक्षियों के व्यवहार आदि को इनकी रचना 'मेरा परिवार' में देखा जा सकता है। इसके अलावा 'पथ के साथी' में तत्कालीन महत्वपूर्ण साहित्यकारों यथा- मैथिलीशरण गुप्त, निराला, प्रसाद, पंत, सुभद्राकुमारी चौहान आदि के विषय में भी अच्छी जानकारी मिलती है। भारतीय महिलाओं के प्रति उनके महत्वपूर्ण विचारों को हम 'शृंखला की कड़ियाँ' में देख सकते हैं। इनके यहाँ खड़ी बोली के साथ अवधी व देशज, अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग उनके लेखन को और भी महत्वपूर्ण बना देता है।

5.5 पाठ की उपलब्धियाँ

महादेवी वर्मा के व्यक्तित्व और कृतित्व पर केंद्रित इस इकाई से निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त हुए हैं -

1. महादेवी का गद्य साहित्य भी उतना ही महत्वपूर्ण है जितना कि उनका पद्य साहित्य।
2. इनकी रचनाएँ पाठक के मन में करुणा का भाव जागृत करती हैं और जीवन की हकीकत से रू-ब-रू कराती हैं।
3. महादेवी वर्मा की संवेदना का फैलाव मानवेतर प्राणियों तक था। उनकी कृति 'मेरा परिवार' में पशु-पक्षियों के प्रति स्नेह और करुणा विशेष रूप से द्रष्टव्य है।
4. महादेवी की भाषा-शैली भी पात्र व घटना का आभास कराने में सक्षम है।

5.6 शब्द संपदा

1. काष्ठ-पट्टिका = लकड़ी की पटरी
2. द्विरागमन = दूसरी बार आना, पुनरागमन, वधू (दुल्हन) का पति के साथ दूसरी बार अपनी ससुराल आना, गौना
3. बृहत्त्रयी = जयशंकर प्रसाद, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', सुमित्रानंदन पंत, महादेवी वर्मा, भगवतीचरण वर्मा, रामकुमार वर्मा

4. महास्थविर = बौद्ध धर्म से संबंधित एक सम्मानजनक उपाधि। जिस प्रकार मुसलमानों के यहाँ हाफ़िज़, कारी होते हैं उसी तरह से बौद्ध धर्म से जुड़े हुए धार्मिक व्यक्ति को महास्थविर कहते हैं।
5. महीयसी = बहुत बड़ा, महान
6. लघुत्रयी = महादेवी वर्मा, भगवतीचरण वर्मा, रामकुमार वर्मा
7. वर्मात्रयी = महादेवी वर्मा, भगवतीचरण वर्मा, रामकुमार वर्मा
8. व्यवधान = समस्या, परेशानी
9. शख्सियत = व्यक्तित्व

5.7 परीक्षार्थ प्रश्न

खंड (अ)

दीर्घ श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 500शब्दों में दीजिए।

1. महादेवी वर्मा के वैयक्तिक जीवन पर प्रकाश डालिए।
2. महादेवी वर्मा की रचना यात्रा पर विचार कीजिए।
3. महादेवी वर्मा की भाषा-शैली के विषय में लिखिए।

खंड (ब)

लघु श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 200 शब्दों में दीजिए।

1. महादेवी वर्मा के पशु-पक्षियों से प्रेम के विषय में लिखिए।
2. महादेवी वर्मा के दर्शन पर अपने विचार प्रकट कीजिए।
3. हिंदी साहित्य में महादेवी वर्मा का स्थान और महत्व को निरूपित कीजिए।

खंड (स)

I. सही विकल्प चुनिए -

1. 'पथ के साथी' रचना में निम्न में किसका संस्मरण है? ( )

   (अ) मुकुटधर पाण्डेय (आ) सुमित्रानंदन पंत
   (इ) रामकुमार वर्मा (ई) वृंदावन लाल वर्मा

2. 'गौरा' संस्मरण में निम्न में से किस जानवर या पक्षी का संस्मरण है? ( )

   (अ) कुत्ता (आ) गाय (इ) मोर (ई) नेवला

II. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए -

1. महादेवी वर्मा का जन्म सन ..... और मृत्यु सन ..... में हुई थी।
2. महादेवी वर्मा ने ..... बनने का निर्णय ले लिया था।
3. महादेवी वर्मा ने सुभद्रा कुमारी चौहान के लिए ..... शब्द का प्रयोग किया है।
4. महादेवी वर्मा की संवेदना का फैलाव ..... प्राणियों तक था।

III. सुमेल कीजिए -

1. महादेवी वर्मा	(अ) याम
2. शृंखला की कड़ियाँ	(आ) काव्य
3. पहर	(इ) आलोचना
4. सांध्यगीत	(ई) आधुनिक युग की मीरां

5.8 पठनीय पुस्तकें

1. आधुनिक हिंदी साहित्य का इतिहास : बच्चन सिंह
2. महादेवी वर्मा : जगदीश गुप्त
3. महादेवी - नया मूल्यांकन : गणपतिचंद्र गुप्त
4. हिंदी साहित्य का इतिहास : सं. नागेंद्र, हरदयाल

इकाई 6: 'घीसा': समीक्षात्मक अध्ययन

रूपरेखा

6.1 प्रस्तावना
6.2 उद्देश्य
6.3 मूल पाठ :'घीसा' : समीक्षात्मक अध्ययन
6.3.1'घीसा' : एक परिचय
6.3.2'घीसा' : एक तात्विक विवेचन
6.3.2.1 वास्तविक विषयवस्तु का वर्णन
6.3.2.2 चित्रात्मकता
6.3.2.3 तटस्थता
6.3.2.4 भाषा की जीवंतता और शैली
6.3.2.5 उद्देश्य
6.4 पाठ सार
6.5 पाठ की उपलब्धियाँ
6.6 शब्द संपदा
6.7 परीक्षार्थ प्रश्न
6.8 पठनीय पुस्तकें

6.1 प्रस्तावना

भारत विविधताओं का देश है। यहाँ विभिन्न जातियों, धर्मों, सम्प्रदायों के लोग रहते हैं. आर्थिक दृष्टि से कोई अमीर तो कोई गरीब है। कोई दो वक़्त की रोटी के लिए मोहताज है और कोई होटल में खाना बर्बाद कर रहा है। घीसा भी एक गरीब परिवार का बच्चा है। दुबला-पतला सा। आर्थिक अभावों को सहते हुए उसकी माँ उसे पढ़ाना चाहती हैं और वह भी पढ़ना चाहता है। उसकी गुरु साहब बनती हैं महादेवी वर्मा। वे उसे पढ़ाती हैं और उसकी जिज्ञासा पर स्तब्ध भी होती हैं। इस इकाई में आप 'घीसा' रेखाचित्र का अध्ययन करेंगे।

6.2 उद्देश्य

प्रिय छात्रों ! इस इकाई को पढ़ने के बाद आप –

- 'घिसा' के बारे में जान सकेंगे।
- 'घिसा' शीर्षक के रेखाचित्र के विषय में बता सकेंगे।
- 'घिसा' शीर्षक रेखाचित्र का तात्विक विवेचन प्रस्तुत कर सकेंगे।
- ग्रामीण जीवन और परिवेश से अवगत हो सकेंगे।

6.3 मूल पाठ :'घीसा' : समीक्षात्मक अध्ययन

6.3.1 'घीसा' : एक परिचय

'घीसा' शीर्षक रेखाचित्र महादेवी की पुस्तक 'अतीत के चलचित्र' (1941) के अंतर्गत प्रकाशित है। इसमें अपनी बात के अलावा कुल 11 रेखाचित्र हैं यथा- रामा (03 जुलाई 1920), भाभी (11 अक्तूबर 1933), बिन्दा (5 अगस्त 1934), सबिया (3 मार्च 1935), बिट्टो (4 जनवरी 1935), बालिका माँ (21 नवंबर 1935), घीसा (17 अगस्त 1936), अभागी स्त्री (6 सितंबर 1937), आलोपी (20 फरवरी 1938), बदलू (17 दिसंबर 1936), लछमा (28 अगस्त 1939)। कोष्ठक में उनकी लेखन तिथि और वर्ष अंकित है। इस पुस्तक में अपनी बात शीर्षक के अंतर्गत वे इनको लिखने का उद्देश्य बताती हैं-'उद्देश्य केवल यही था कि जब समय अपनी तूलिका फेरकर इन अतीत चित्रों की चमक मिटा दे, तब इन संस्मरणों के धुंधले आलोक में मैं उन्हें फिर पहचान सकूँ। ... इन स्मृति चित्रों में मेरा जीवन भी आ गया है।'

'घीसा' शीर्षक रेखाचित्र में उस गरीब बालक की चर्चा है जो गंगा पार झूँसी के ग्रामीण इलाके में रहता है।

छात्रो! अब हम घीसा के बारे में विस्तार से जानने की कोशिश करेंगे।'घीसा' शीर्षक रेखाचित्र में उस गरीब बालक की चर्चा है जो गंगा पार झूँसी के ग्रामीण इलाके में रहता है।महादेवी का उस क्षेत्र के प्रति विशेष आकर्षण रहा है। यह आकर्षण घूमने-फिरने का नहीं बल्कि समाज सेवा का है। बच्चों को शिक्षित करने का है। वे बताती हैं कि जब वे घाट के किनारे पहुँचती हैं तो वहाँ बहुत सारे लोग दिखते हैं। उनमें बहुत सारे लोगों को वे पहचान भी गई हैं। वहाँ विभिन्न तरह के आभूषण और कपड़े पहने महिलाएँ दिखती हैं। उस घाट पर महिलाएँ पानी भरने आती हैं। किसी का घड़ा तांबा-पीतल का है तो किसी का घड़ा मिट्टी का बना हुआ है। कोई महिला बूटेदार लाल धोती (साड़ी) पहने रहती है तो कोई सफेद। किसी की धोती थोड़ी गंदी और किसी की थोड़ी साफ। किसी महिला की कलाई पर शहर में मिलने वाली नगदार चूड़ी में नग चमकते रहते हैं। किसी के हाथ पर लाख की चूड़ियाँ रहती हैं। कोई अपने गिलट के कड़े को घड़े के पीछे छिपाना चाहती है तो कोई अपने चांदी के ककने दिखाना कहती है। किसी के पैर पर गुदना गुदा हुआ है। कोई महिला किसी अन्य धातु के बने हुए आभूषण को धारण किए हुए है। ये तो रही उन महिलाओं के पहनावे और आभूषण की बात। उनके जीवन की व्यथा-कथा को भी महादेवी वर्मा ने अंकित किया है।

बोध प्रश्न

- महिलाओं ने किस तरह के आभूषण पहने हुए हैं?

उन महिलाओं के कार्य व व्यवहार के संबंध में महादेवी बताती हैं कि 'वे सब पहले हाथ-मुंह धोती हैं, फिर पानी में कुछ घुसकर घड़ा भर लेती हैं- तब घड़ा किनारे रख, सर पर इँडुरी ठीक करती हुई मेरी ओर देखकर कभी मलिन, कभी उजली, कभी दुख की व्यथा-भरी, कभी सुख की कथा-भरी मुस्कान से मुस्करा देती हैं। अपने-मेरे बीच का अंतर उन्हें ज्ञात है, तभी कदाचित वे इस मुस्कान के सेतु से उसका वार-पार जोड़ना नहीं भूलतीं।

वहाँ बहुत सारे ग्वालों के बच्चे खेलते-कूदते रहते हैं। उस पार शहर दूध बेचने जाने वाले या लौटते ग्वाल भी दिखते हैं। वहाँ मल्लाह भी दिखते हैं। वे कोई गीत गाते रहते हैं जैसे ही महादेवी जी को देखते हैं, वे चुप हो जाते हैं। उस गीत की पंक्ति है 'चुनरी त रंगाउब लाल मजीठी हो' कुछ अपने को थोड़ा सभ्य समझने वाले लोग सलज्ज नमस्कार भी करते हैं।

गंगा पार झूँसी के बालकों को कुछ सिखाने-पढ़ाने का ध्यान उनके मन में कब आया लेखिका बता नहीं सकतीं। लेकिन इतना अवश्य बताती हैं कि सभी बच्चों की जिज्ञासा व पढ़ने की ललक का अंदाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि वे बिना कुछ कहे पीपल के पेड़ की छाया के नीचे बैठ जाते हैं। उन बच्चों की वेशभूषा का चित्रण लेखिका के शब्दों में ही देखिए - 'और वे जिज्ञासु कैसे थे सो कैसे बताऊँ! कुछ कानों में बालियाँ और हाथों में कड़े पहने, धुले कुर्ते और ऊँची धोती में नगर और ग्राम का सम्मिश्रण जान पड़ते थे, कुछ अपने बड़े भाई का पाँव तक लंबा कुर्ता पहने खेत में डराने के लिए खड़े किए हुए नकली आदमी का स्मरण दिलाते थे, कुछ उभरी पसलियों, बड़े पेट और टेढ़ी दुर्बल टाँगों के कारण अनुमान से ही मनुष्य-संतान की परिभाषा में आ सकते थे और कुछ अपने दुर्बल, रूखे और मलिन मुखों की करुण सौम्यता और निष्प्रभ पीली आँखों में संसार भर की उपेक्षा बटोर बैठे थे, पर घीसा उनमें अकेला ही रहा और आज भी मेरी स्मृति में अकेला ही आता है।'

शाम का वक़्त हो रहा था। नाव वाला चिंतित भाव से नदी की लहरों को देख रहा था। बूढ़ी भक्तिन; लेखिका की किताब, कलम, कागज आदि को संभाल रही थी। तभी उसी धुंधलके में नाव पर कदम रखने के लिए वे बढ़े ही थे कि एक मलिन सी महिला एक अर्धनग्न बालक के कंधे पर हाथ रखकर उपस्थित हुई। अंधकार बढ़ता ही जा रहा था लेखिका उस धुंधलके में उस बालक को ठीक से तो नहीं देख पाई। उस धुंधलके में भी उस महिला ने इशारों में जो बातें कहीं उससे लेखिका इतना समझ गई कि उसके पति नहीं हैं। वह महिला कोई और नहीं घीसा की माँ है और अर्धनग्न बालक कोई और नहीं घीसा है। वह दूसरे के घरों में लीपने-पोतने का काम करती है। जब वह काम के लिए चली जाती है तब यह लड़का दिन भर ऐसे ही फालतू में घूमता रहता है। वह महिला कहती है कि यदि इसे भी अन्य बालकों के साथ बैठाकर कुछ पढ़ा लिखा दें तो बहुत बड़ी कृपया हो जाय।

बालक घीसा से अन्य बालक दूर ही रहते थे। कारण यह था कि सभी के घर के बड़ों ने उससे दूर रहने की हिदायत दी थी। उसके पिता जी जाति के कोरी थे। डलिया बुनने के साथ उसके पिता ने बढ़ईगीरी भी सीख ली थी। उसने अपनी मेहनत से पैसा कमाकर थोड़ा आराम से रहना शुरू किया। अचानक उसे हैजा हुआ और वह ईश्वर के पास चला गया। उसकी औरत यानी घीसा की माँ ने फिर दूसरा विवाह नहीं किया और लोगों के घर पर काम करके जीवन-यापन करने लगी। घीसा में पढ़ने की ललक इतनी थी कि वह शनिवार को पीपल के नीचे साफ-सफाई करता था ताकि रविवार को उसी पीपल के नीचे बैठकर सब लोग पढ़ाई करें। शहर में हिंदू-मुस्लिम दंगे की खबर सुनकर घीसा चिंतित हो जाता है। बुखार की हालत में भी वह उठकर आता है और गुरु साहब महादेवी वर्मा से रुकने के लिए कहता है। महादेवी उसे समझा-बुझाकर उसके घर की टूटी चरपायी पर लिटा कर चली आती हैं।

महादेवी ने जब तीसरे पहर से सांध्य तक पढ़ाने का निर्णय लिया तो भी घीसा सुबह से ही दिन भर उस पीपल के पेड़ के नीचे साफ-सफाई करके बैठा रहता। यहाँ उन बच्चों की पढ़ाई के प्रति ललक के साथ उनकी गरीबी को भी देखा जा सकता है। छुट्टी के दिन में वे कैसे पढ़ाई करेंगे? पुस्तकों को घर में कैसे सुरक्षित रखा जाय? चूने की टिपकियाँ रखकर गिनी जाएँगी या कोयले की लकीरें खीचकर? जिज्ञासावकश आदि प्रश्न पूछता था।

बोध प्रश्न

- गर्मी की छुट्टी में बच्चों की पढ़ाई की समस्या पर प्रकाश डालिए।

छुट्टी से पहले लेखिका 6-5 सेर जलेबी ले गई थीं। सबने जलेबी ली। घीसा अपने हिस्से की जलेबी लेकर अपने पिल्ले को देने के लिए चला आया। यहाँ घीसा का जानवरों के प्रति प्रेम साफ तौर पर देखा जा सकता है। इसी तरह घीसा के जन्म के बाद उसकी माँ पर शक किया गया कि यह किसी दूसरे का लड़का है। वह अपने पिता का बेटा नहीं है। जबकि जब घीसा पेट में था तभी इसके पिता मर गए थे लेकिन लोगों ने उसकी माँ पर लांछन लगाया। उसके पिता की मृत्यु के बाद उसकी माँ ने अवश्य ही किसी पराए पुरुष के साथ संसर्ग किया होगा उसी का नतीजा ये घीसा है। जितनी मुँह उतनी बातें। स्त्री की निंदा करने के लिए बस मौका चाहिए।

फिलहाल छुट्टी की घोषणा के बाद बच्चों में एक कोलाहल शुरू हो गया। सब कुछ न कुछ बात करने लगे। इधर घीसा न जाने कब गायब हो गया पता ही नहीं चला। वह गुरु साहब के लिए तरबूज लेकर आया। उसके पास पैसे नहीं थे। महादेवी ने सोचा फिर क्या इसने चोरी की है !लेकिन घीसा ने अपना कुर्ता तरबूज देने वाले लड़के को देकर उसके बदले में उसने तरबूज लिया था। घीसा कहता भी है कि गर्मी में वह कुर्ता नहीं पहनता। कहीं आनेजाने के लिए पुराना - कुर्ताठीक है। तरबूज सफेद नहीं निकले इसलिए घीसा ने तरबूज को कटवा लिया था। स्वाद मीठा है या नहीं इसलिए उसने तरबूज में से कुछ भाग को उँगली से निकालकर चख लिया था। घीसा चाहता है कि लेखिका (गुरु साहब) इसे स्वीकार कर लें। यदि वे इस तरबूज को स्वीकार कर लेती हैं तो वह रोज नहा-धोकर पेड़ के नीचे बैठकर पढ़ा हुआ पाठ दोहराएगा। फिर छुट्टी के बाद पूरी किताब पट्टी पर लिखकर दिखाएगा। यदि वे इस तरबूज को नहीं लेंगी तो वह पूरी

रात रोएगा। पूरी छुट्टी रोएगा। महादेवी लिखती हैं, 'उस तट पर किसी गुरु को किसी शिष्य से कभी ऐसी दक्षिणा मिली होगी, ऐसा मुझे विश्वास नहीं, परंतु उस दक्षिणा के सामने संसार में अब तक सारे आदान-प्रदान फीके जान पड़े।'

फिर घीसा के सुख का प्रबंध कर महादेवी बाहर चली गईं और जब वे लौटी तो पता चला कि घीसा इस संसार में नहीं रहा। महादेवी ने सोचा कि "अन्य मलिन मुखों में उस घीसा की छाया को ढूँढती रहूँ। यही मेरे लिए उचित होगा।"

6.3.2 घीसा : तात्विक विवेचन

प्रिय छात्रो! 'घीसा' का तात्विक विवेचन हम निम्नलिखित बिंदुओं के आधार पर करेंगे-

6.3.2.1 वास्तविक विषयवस्तु का वर्णन

'घीसा' शीर्षक रेखाचित्र में जो चित्रण है वह वास्तविक है। जिन देहाती क्षेत्रों की वे बात करती हैं वे क्षेत्र आज भी इलाहाबाद (प्रयागराज) में हैं। उन्हें देखने पर स्पष्ट होता है कि आजादी के बाद वहाँ कुछ विकास हुआ है। वहाँ सड़कें बन गई हैं। हैंडपंप लग गए हैं। लेकिन जब महादेवी ने यह रेखाचित्र लिखा था तब उन क्षेत्रों की हालत बहुत खराब थी। महादेवी के अधिकांश रेखाचित्रों में ग्रामीण परिवेश दिखता है। रेखा अवस्थी लिखती हैं, 'महादेवी जिन उत्पीड़ित जनों के बीच पहुँचती हैं वे सब देहाती क्षेत्र के हैं। ये वे देहाती क्षेत्र हैं जहाँ भू-स्वामी वर्ग और गरीब तथा भूमिहीन किसान के बीच तीखा वर्ग-विरोध आज भी मौजूद है; घीसा, लछमा, सबिया, अलोपी, रधिया, बदलू, जंगबहादुर, धनसिंह जैसे टाइप चरित्र आज भी उत्पीड़ित और संघर्षरत हैं।'

यहाँ हम घीसा रेखाचित्र की बात कर रहे हैं। सबसे पहले हम यह समझे कि 'घीसा' का नाम घीसा कैसे पड़ा? वास्तव में घीसा का पूरा जीवन त्रासदपूर्ण रहा है। घीसा के जन्म के पूर्व उसके पिता का देहांत हो चुका था। घीसा की माँ उसे बंदरिया के बच्चे के जैसे चिपकाए रहती थी। वह उस छोटे से बालक घीसा को एक ओर लिटाकर मजदूरी करती थी। वह छोटा सा बालक पेट के बल घिसट-घिसट कर आगे बढ़ता था। महादेवी लिखती हैं, 'तब पेट के बल घिसट-घिसट कर बालक संसार के प्रथम अनुभव के साथ-साथ इस नाम की योग्यता भी प्राप्त करता जाता था।'

घीसा के माता-पिता की बात की जाए तो उसके पिता स्वाभिमानी थे। वह जाति का कोरी था। वह भला और ईमानदार आदमी बनना चाहता था। वह डलिया बुनने के साथ-साथ बढ़ईगीरी भी करता था। वह दूसरे गाँव से वधू लाकर गाँव के कई लोगों व युवतियों को निराश कर चुका था। वह चौखट-किवाड़ बनाकर, ठाकुरों के घरों में सफेदी करके धीरे-धीरे ठाट-बाट से रहना शुरू किया। यह बात ईश्वर को शायद नागवार गुजरी और उसने उसे हैजे का रोग दे

दिया। फिर इसी बीमारी से घीसा का पिता चल बसा। कुछ कोरियों ने घीसा की माँ की जीवन नैया पार लगाने की उदार भावना से उससे विवाह करना चाहा, लेकिन उसकी माँ ने बहुत ही सख्ती के साथ मना कर दिया। उस वक़्त घीसा पैदा भी नहीं हुआ था।

बोध प्रश्न

- घीसा के पिता जीवनयापन के लिए क्या ?क्या काम करते थे-

छात्रो! हमें यह ध्यान में रखना चाहिए कि ग्रामीण जीवन की कुछ विशेषताएँ होती हैं।। वे सकारात्मक के साथ-साथ नकारात्मक भी होती हैं। वहाँ आपको सुविधाओं का अभाव दिखता है। गरीबी दिखती है। किसी बात को लेकर अफवाह भी उड़ती है। इसके साथ-साथ ऊँच-नीच , छुआछूत की भावना भी दिखती है। 'घीसा' रेखाचित्र में ग्रामीण परिवेश की बात करें तो वहाँ नदी के किनारे कछार क्षेत्र का दृश्य देखिए- 'कछार की बालू में दूर तक फैले तरबूज और खरबूजे के खेत अपनी सिरकी और फूस के मुट्ठियों, टट्टीयों और रखवाली के लिए बनी पर्णकुटियों के कारण जल में बसे किसी आदिम द्वीप का स्मरण दिलाते थे।' इसी तरह गरीबी इतनी दिख रही है कि क्या कहा जाए? किसी के लिए बरसात, उसकी फुहार आनंद का कारण बनती है, लेकिन वही बरसात और उसकी फुहार किसी के लिए दुख का कारण बनती है। बरसात में जिन बच्चों का घर चूता (टपकता) है वे अपनी किताब को कैसे बचाएँ? चूहे उनके कागजों को काट डालेंगे उसे कैसे बचाएँ? ये बड़ी गंभीर समस्या है।

गाँव की एक बड़ी समस्या अफवाह और छुआछूत है। हालांकि अफवाह शहरों की भी एक बड़ी समस्या बन गई है। इसी तरह शहरों में तो एक अलग तरह का छुआछूत ही देखने को मिलता है। फिलहाल घीसा के जन्म के बाद उसकी माता पर अफवाह के करण ही लांछन लगाया जाता है। महादेवी लिखती हैं कि 'घीसा बाप के मरने के बाद हुआ है। हुआ तो वास्तव में छह महीने बाद, परंतु उस समय के संबंध में क्या कहा जाय, जिसका कभी एक क्षण वर्ष सा बीतता है और कभी एक वर्ष क्षण हो जाता है। इसी से यदि वह छह मास का समय रबर की तरह खिंचकर एक साल की अवधि तक पहुँच गया, तो इसमें गाँव वालों का क्या दोष!' रही बात ऊँच-नीच और छुआछूत की तो उसके विषय में क्या कहा जाए? वह तो सनातन धर्म की तरह हजारों सालों से चलती चली आ रही है। घीसा के साथ पढ़ने वाले बच्चों को घर के बड़ों ने घीसा से दूर रहने की हिदायत बहुत सख्ती से दे रखी थी।

घीसा एक गाँव में रहता था। वह गरीब भले ही था लेकिन उसके अंदर गुरु भक्ति थी। उसके अंदर पढ़ाई की ललक थी। महादेवी ने उसके विषय में लिखा है, 'परंतु पता चला घीसा किसकिसाती आँखों को मलता और पुस्तक को बार-बार धूल झाड़ता हुआ दिन भर वहीं पेड़ के नीचे बैठा रहता है, मानो वह किसी प्राचीन युग का तपोव्रती अनागरिक ब्रह्मचारी हो, जिसकी

तपस्या भंग के लिए ही लू के झोंके आते हैं।' इसी तरह से घीसा आज्ञाकारी भी है। वह गुरु दक्षिणा के रूप में गुरु साहब (महादेवी वर्मा) को तरबूज देता है। हिंदू-मुस्लिम दंगे की आशंका में वह विपत्ति की इस घड़ी में गुरु साहब को जाने नहीं देना चाहता। लेकिन गुरु साहब के समझाने पर वह उनकी आज्ञा का पालन भी करता है। इसके साथ-साथ वह अन्य विद्यार्थियों की परेशानी को भी समझता है।

इस तरह से हम देखते हैं कि 'घीसा' रेखाचित्र में वास्तविक विषयवस्तु का चित्रण किया गया है।

बोध प्रश्न

- घीसा की आज्ञाकारिता के विषय में अपने विचार लिखिए।

6.3.2.2 चित्रात्मकता

रेखाचित्र में चित्रात्मकता का होना स्वाभाविक है। महादेवी के रेखाचित्रों की विशेषता यह है कि इसमें समाज के निचले तबके के लोग आए हैं। योगराज थानी ने सत्य ही लिखा है 'महादेवी वर्मा ने अपने रेखाचित्रों में केवल उन्हीं अछूते, अशिक्षित और निम्न व्यक्तियों को अपना पात्र बनाया है जिनकी ओर पहले किसी रेखा चित्रकार की दृष्टि नहीं गई।' उनके रेखाचित्रों की अपनी एक विशेषता है। इस विषय में रामचंद्र तिवारी लिखते हैं 'प्रायः सबसे पहले ये प्रथम परिचय के नाटकीय संदर्भ को प्रस्तुत करते हुए रेखांकित होने वाले पात्र की रूपरेखा और उससे व्यंजित होने वाली उसकी मनोवृत्ति का चित्रण करती हैं। इसके बाद उसके जीवनवृत्त और स्वभाव में कारण-कार्य संबंध स्थापित करते हुए उसकी आवश्यक जीवन कथा कहती हैं। इसी क्रम में वे उस पात्र की वर्गगत या परिवेशगत स्थिति का अंकन करती हैं और अपनी स्थिति के उसकी दूरी का उल्लेख करते हुए उसके द्वारा स्वयं प्रभावित होने की बात स्वीकार करती हैं।' उनके रेखाचित्र की अपनी एक पद्धति है। उसका उदाहरण हम उनके सभी रेखाचित्रों में देख सकते हैं। यहाँ घीसा की बात हो रही है।

बोध प्रश्न

- महादेवी वर्मा के रेखाचित्रों की एक विशेषता बताइए।

इस रेखाचित्र में भी चित्रात्मकता को साफ तौर पर देखा जा सकता है। दूसरे इतवार (रविवार) को जब घीसा सबसे पीछे दुबककर बैठा था। तब महादेवी ने उसे ठीक से देखा। उसकी बनावट व वेशभूषा का चित्रण करते हुए उसमें सहज ही चित्रात्मकता आ गई है। इस चित्रण को पढ़ने के बाद अपने आप ही दिमाग में एक खाका, एक दृश्य बनने लगता है। जो धीरे-धीरे स्पष्ट होता चल जाता है। महादेवी द्वारा घीसा का चित्रण (शब्द चित्र द्वारा) देखिए- 'पक्का रंग, पर गठन में विशेष सुडौल, मलिन मुख दो पीली, पर सचेत आँखें जड़ी-सी जान पड़ती थीं।

कस कर बंद किए हुए पतले होंठों की दृढ़ता और सिर पर खड़े हुए छोटे-छोटे रूखे बालों की उग्रता उसके मुख की संकोच भरी कोमलता से विद्रोह कर रही थी। उभरी हड्डियों वाली गर्दन को संभाले हुए झुके कंधों से, रक्तहीन मटमैली हथेलियों और टेढ़े-मेढ़े कटे हुए नाखूनों युक्त हाथों वाली पतली बाहें ऐसी झूलती थीं, जैसे ड्रामा में विष्णु बनने वाले की दो नकली भुजाएँ। निरंतर दौड़ते रहने के कारण उस लचीले शरीर में दुबले पैर ही विशेष पुष्ट जान पड़ते थे। बस ऐसा ही था वह, न नाम में कवित्व की गुंजाइश, न शरीर में।' इन वाक्यों को पढ़ने के बाद अपने आप ही घीसा का एक चित्र दिमाग में बनने लगता है।

6.3.2.3 तटस्थता

किसी भी साहित्यकार के लिए अपनी रचना में आलोचनात्मक दृष्टिकोण अपनाते हुए तटस्थता को बनाए रखना नितांत आवश्यक है। यदि आप तटस्थ नहीं हैं तो आप विषय के साथ न्याय नहीं कर पाएंगे। महादेवी के रेखाचित्रों में यह तटस्थता देखने को मिल जाएगी। रामचंद्र तिवारी ने लिखा है 'अपने को यथा संभव तटस्थ रखकर वे उसके गुण-दोषों का विवेचन करती हैं और समाज द्वारा उसके प्रति किए गए उचित-अनुचित व्यवहार का मूल्यांकन करते हुए उसके प्रति अपने व्यवहार और संबंध का विश्लेषण करती हैं। अंत में उस पात्र के जीवन की किसी अविस्मरणीय मार्मिक कथा या अपने स्मृतिपट पर अंकित उसकी कोई विशिष्ट भंगिमा या उसके व्यक्तित्व की किसी अन्यतम विशेषता का उल्लेख कर उससे इस प्रकार अलग होती हैं मानो अपने शरीर के ही किसी सहजात अंग से अलग हो रही हों।' यह सत्य ही है कि उनके अंतिम शब्द ऐसे होते हैं जो हृदय को करुणा से भर देते हैं। घीसा रेखाचित्र में भी इस तरह के अंतिम शब्द दिखते हैं। घीसा से वे जुड़ी हैं। उसमें उनका जीवन भी है लेकिन उसके प्रति उनका तटस्थता का भाव देखें 'जब फिर उस ओर जाने का मुझे अवकाश मिल सका, तब घीसा को उसके भगवान जी ने सदा के लिए पढ़ने का अवकाश दे दिया था- आज वह कहानी दोहराने की मुझमें शक्ति नहीं है; पर संभव है आज के कल, कल के कुछ दिन, दिनों के मास और मास के वर्ष बन जाने पर मैं दार्शनिक के समान धीर-भाव से उस छोटे जीवन का उपेक्षित अंत बना सकूँगी। अभी मेरे लिए इतना ही पर्याप्त है कि मैं अन्य मलिन मुखों में उसकी छाया ढूंढती रहूँ।'

6.3.2.4 भाषा की जीवंतता और शैली

किसी भी विधा के अंतर्गत लेखन किया जाय, उसमें भाषा की जीवंतता उसका प्रवाह और प्रभाव आवश्यक है। इस प्रभाव को लाने में शैली का विशेष महत्व है। 'घीसा' शीर्षक रेखाचित्र में भाषा प्रयोग देखें 'फिर नौ साल के कर्तव्यपरायण घीसा की गुरु-भक्ति देखकर उसकी मातृ-भक्ति के संबंध में कुछ संदेह करने का स्थान ही नहीं रह जाता था और इस तरह घीसा वहीं और उन्हीं कठोर परिस्थितियों में रहा, जहाँ क्रूरतम नियति ने केवल अपने

मनोविनोद के लिए ही उसे रख दिया था।' इसी तरह से आगे भी देखें 'किसी दयावती का दिया हुआ एक पुराना कुरता, जिसकी एक आस्तीन आधी थी, और एक अंगोछा जैसा फटा टुकड़ा। जब घीसा नहाकर गीला अंगोछा लपेटे और आधा भीगा कुर्ता पहने अपराधी के समान मेरे सामने आ खडा हुआ, तब आँखें ही नहीं मेरा रोम-रोम गीला हो गया।' उदाहरण के लिए एक वाक्य और देखें 'उस तट पर किसी गुरु को किसी शिष्य से कभी ऐसी दक्षिणा मिली होगी, ऐसा मुझे विश्वास नहीं; परंतु उस दक्षिणा के सामने संसार में अब तक सारे आदान-प्रदान फीके जान पड़े।' दिए गए उदाहरणों में भाषा की जीवंतता तो है ही एक अच्छा प्रवाह भी है।

अवधी जो कभी एक भाषा थी। वर्तमान में एक बोली के रूप में व्यवहृत होने लागी है। उस अवधी का प्रयोग भी इस रेखाचित्र में है। कारण यह है कि जिस क्षेत्र विशेष व पात्रों की बात लेखिका अपने रेखाचित्रों में कर रही हैं वे अवधी के क्षेत्र हैं। वहाँ आमजन अवधी में बातचीत करते हैं। घीसा अभी पैदा नहीं हुआ है और उसके पिता की मृत्यु हो जाती है। फिर लोग उसकी माँ को दूसरा विवाह कर लेने की सलाह देते हैं। घीसा की माँ अवधी में जो जवाब देती है उसे देखें 'हम सिंघ के मेहरारू होइके सियारन के जाब।' (अनुवाद- मैं शेर की औरत होकर क्या स्यारों के यहाँ जाऊँगी?) घीसा की माँ अपनी उपमा शेरनी और और अपने पति (घीसा के पिता) की उपमा शेर से देती है। अन्य पुरुषों को स्यार (एक जानवर जो बहुत डरपोक समझा जाता है) कहती है। यहाँ घीसा की माँ का क्रोध भी देखते बनता है।

बोध प्रश्न

- घीसा की माँ ने दूसरा विवाह नहीं करने का निर्णय क्यों लिया ?

इसी तरह जब एक दिन महादेवी जलेबी लेकर गईं तो बच्चों ने छीना झपटी की। इस बीच घीसा अपने हिस्से की जलेबी लेकर कहीं खिसक गया। तब एक दूसरे बालक ने कुछ कहा। यह कथन भी अवधी में है 'सार एक ठो पिलवा पाले है, ओही का देय बरे गा होई।' (अनुवाद- साला एक पिल्ला पाला है, उसी को देने के लिए गया होगा।)

कहावत और मुहावरों का भी अपना महत्व होता है। ये भाषा को मजबूती प्रदान करते हैं साथ ही उसके प्रवाह को भी बनाए रखते हैं। घीसा रेखाचित्र में प्रयुक्त कहावत देखें 'न रहेगा बाँस न बजेगी बाँसुरी,' या 'रहने का आश्चर्य है, गए अचंभा कौन।'

इसी तरह से शैली की बात करें तो यहाँ भावात्मक शैली, व्यंग्यात्मक शैली का प्रयोग साफ तौर पर देखा जा सकता है। भावात्मक शैली का एक उदाहरण द्रष्टव्य है 'और तब अपने प्रगल्भ उस बालक के सिर पर हाथ रखकर मैं भावातिरेक से ही निश्चल हो रही। ' यह संदर्भ उस समय

का है जब घीसा गुरु साहब (महादेवी वर्मा) को तरबूज देने आया है। इसी तरह जब महादेवी 5-6 सेर जलेबी लेकर गईं तो जलेबी लेने का दृश्य देखें। यहाँ व्यंग्यात्मक शैली है। 'एक दिन न जाने क्या सोचकर मैं उन विद्यार्थियों के लिए 5-6 सेर जलेबियाँ ले गई; पर कुछ तोलने वाले की सफाई से, कुछ तुलवाने वाले की समझदारी से और कुछ वहाँ की छीना-झपटी के कारण प्रत्येक को पाँच से अधिक न मिल सकीं।' इसी तरह से ईश्वरीय सत्ता या किस्मत पर किया गया व्यंग्य देखिए 'जहाँ क्रूरतम नियति ने अपने मनोविनोद के लिए ही उसे रख दिया था। इसी तरह से एक और व्यंग्य देखिए 'परंतु ऐसे अवसर पर भगवान की असहिष्णुता प्रसिद्ध ही है।' यहाँ व्यंग्य तो है ही लेकिन यह व्यंग्य हमारे अंदर एक करुणा का भाव भी जाग्रत करता है।

6.3.2.5 उद्देश्य

महादेवी वर्मा के गद्य साहित्य पर भी आलोचनात्मक दृष्टिकोण से विचार किया गया है। उसकी कमियों की ओर ध्यान खींचा गया है। रेखा अवस्थी लिखती हैं 'उत्पीड़ितों से अपनी सहानुभूति को तो वे बार-बार व्यक्त करती हैं, पर उनके उत्पीड़न के करण वर्ग-व्यवस्था में छुपे हैं, इसकी जांच-पड़ताल में उन्हें रुचि नहीं है। मतलब यह कि इन वस्तून्मुखी रचनाओं में वर्ग-शत्रु की पहचान गायब है। वर्ग-शत्रुओं पर चोट करने के स्थान पर वे नियति एवं भाग्य की विडंबना जैसे जुमलों से काम चला लेती हैं।'

हमें यह ध्यान में रखना चाहिए कि उन्होंने कई जगह पर ईश्वरीय सत्ता पर भी व्यंग्य किया है। उस व्यवस्था पर व्यंग्य करना कोई आसान काम नहीं। बहुत दूर जाने की जरूरत नहीं है। वे 'घीसा'में ही उसके पिता के संदर्भ में लिखती हैं 'मनुष्य इतना अन्याय सह सकता है; परंतु ऐसे अवसर पर भगवान की असहिष्णुता प्रसिद्ध ही है।' इसके अलावा अन्य स्थानों पर भी ऐसे व्यंग्यात्मक दृश्य दिख जाते हैं। घीसा में महादेवी तत्कालीन समाज की रूढ़िवादिता, ऊंच-नीच, जाति-पाँति की व्यवस्था व उसकी गरीबी आदि को भी दिखाती हैं। रेखा अवस्थी का यह कथन अवश्य ही विचारणीय है 'घीसा के माध्यम से आर्थिक,सामाजिक उत्पीड़न में जी रहे देहाती क्षेत्रों के बच्चों का करुण रेखांकन करते हुए स्केच लेखिका अपनी बूर्जुआ मानवतावादी दृष्टि का परिचय देती है। यद्यपि लेखिका की संवेदना का मुख्य केंद्र घीसा है परंतु, घईसद के माध्यम से पूरे ग्रामीण समाज का अंतर्विरोध दृश्यमान हो जाता है। घीसा स्केच में जिंदा रहने के लिए जीवन संग्राम से लड़ते-जूझते अनेक स्त्री-पुरुषों के चित्र मिलते हैं। घीसा की विधवा माँ अपने ही समाज की निष्ठुर अफवाहों के बीच दूसरों के घर लीप-पोतकर अपना और घीसा का पेट पालती हुई। वह अपने स्वाभिमान की रक्षा के लिए सदैव तत्पर रहती है।'

हमें यह कहने में तनिक भी संकोच नहीं है कि घीसा रेखाचित्र विधा के आधार पर, विषयवस्तु के आधार पर, चित्रात्मकता के आधार पर, तटस्थता के आधार पर भाषा की जीवंतता और शैली के आधार पर अपने उद्देश्यों की पूर्ति करता है। यह रेखाचित्र तत्कालीन समाज की वास्तविक स्थिति का ज्ञान कराता है।

6.4 पाठ सार

प्रिय छात्रो! इस प्रकार हम देखते हैं कि महादेवी वर्मा का व्यक्तित्व बहुत व्यापक और महान है। वे छायावाद की महत्वपूर्ण कवयित्री होने के साथ-साथ एक प्रमुख और प्रसिद्ध गद्यकर भी हैं। उनके रेखाचित्र-संस्मरण, आलोचनात्मक निबंध अत्यंत ही महत्वपूर्ण हैं। उनके रेखाचित्रों की बात करें तो उसमें तत्कालीन भारतीय समाज की आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक सांस्कृतिक परिस्थितियों का बोध होता है।

जहाँ तक घीसा रेखाचित्र की बात है तो इसमें घीसा नाम की सार्थकता के साथ-साथ उसके माता-पिता के विषय में भी जानकारी मिलती है। इसके अलावा घीसा की वर्गगत स्थिति, ग्रामीण क्षेत्र, उसकी पढ़ाई की ललक, गरीबी, गुरु भक्ति आदि को साफतौर पर देखा जा सकता है। यहाँ महादेवी ने वास्तविक विषय वस्तु का वर्णन करते हुए पूरी तटस्थता के साथ घीसा रेखाचित्र का चित्रण किया है। इस रेखाचित्र में उनके भाषा की जीवंतता व प्रवाह को बनाए रखने के लिए उन्होंने यथोचित शैली का प्रयोग किया है। महादेवी ने जिस उद्देश्य के साथ 'घीसा' शीर्षक रेखाचित्र का सृजन किया है। वे उसमें पूरी तरह सफल हुई हैं।

6.5 पाठ की उपलब्धियाँ

इस इकाई के अध्ययन से निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त हुए हैं -

1. महादेवी वर्मा काव्य की भाँति ही अकाल्पनिक गद्य लिखने में भी सिद्धहस्त हैं।
2. महादेवी वर्मा ने जहाँ अपने गीतों में वैयक्तिक वेदना और रहस्य भावना को मुख्य स्थान दिया है, वहीं रेखाचित्र और संस्मरणों में सामाजिक यथार्थ और करुणा को उजागर किया है।
3. महादेवी के रेखाचित्र उनके गहरे सामाजिक सरोकार और संवेदनशीलता के द्योतक हैं।
4. 'घीसा' तथा ऐसे ही अन्य वास्तविक पात्रों का महादेवी वर्मा ने जिस गहरी सहानुभूति के साथ चित्रण किया है वह उनके व्यक्तित्व की उदात्तता का द्योतक है।
5. महादेवी के रेखाचित्र अपने दृश्य बिंबों के कारण विशेष रूप से आकर्षित करते हैं। इसका कारण यह भी हो सकता है कि लेखिका स्वयं एक चित्रकार भी थीं।

6.6 शब्द संपदा

1. अंगुल = उंगली
2. अद्वैत = द्वैत या भेद का अभाव, आत्मा परमात्मा में अभिन्नता
3. अनागरिक = जो किसी राज्य या नगर का निवासी न हो
4. आमोद-प्रमोद = हंसी-खुशी, भोग-विलास
5. उद्विग्न = चिंतित, परेशान
6. कछार = नदी के तट की ज़मीन
7. कर्तव्यपरायण = अपनी जिम्मेदारी को पूरा करना
8. क्षत-विक्षत = घायल, लहूलुहान, जिसका शरीर घावों से भरा हुआ हो
9. गिलट = ऐसी वस्तु जिस पर सोने या चांदी आदि का पानी चढ़ा हो
10. तपोव्रती = तप करने का व्रत रखने वाला
11. पछेली–ककना = कलाई पर पहनने का एक आभूषण। पछेली को कंगन (ककना) या चूड़ियों के पीछे पहन जाता है।

6.7 परीक्षार्थ प्रश्न

खंड (अ)

दीर्घ श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 500 शब्दों में दीजिए।

1. घीसा रेखाचित्र पर अपने विचार लिखिए।
2. 'घीसा रेखाचित्र में वास्तविक विषयवस्तु है।' इस उक्ति को स्पष्ट कीजिए।

खंड (ब)

लघु श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 200 शब्दों में दीजिए।

1. 'घीसा' रेखाचित्र के आधार पर घीसा और उसके माता-पिता के विषय में बताइए।
2. महादेवी वर्मा के रेखाचित्रों (विशेषतः घीसा रेखाचित्र) में चित्रात्मकता पर प्रकाश डालिए।
3. घीसा रेखाचित्र की भाषा व शैली पर अपने विचार प्रकट कीजिए।

खंड (स)

I. सही विकल्प चुनिए -

1. 'घीसा' रेखाचित्र महादेवी की किस पुस्तक में शामिल है? ( )

(अ) स्मृति की रेखाएँ (आ) पथ के साथी (इ) अतीत के चलचित्र (ई) यामा

2. 'घीसा' रेखाचित्र में घीसा ने महादेवी को गुरु दक्षिणा के रूप में कौन सा फल दिया था? ( )

(अ) सेब (आ) अनार (इ) तरबूज (ई) संतरा

3. 'घीसा' रेखाचित्र का दृश्य किस नदी के किनारे का है? ( )

(अ) सतलज (आ) ब्रह्मपुत्र (इ) फल्गु (ई) गंगा

II. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए -

1. घीसा की माँ जब घीसा को लेकर महादेवी के पास गईं और उसे भी पढाने का आग्रह करने लगीं तो उस समय..... हो रही थी।
2. घीसा जलेबी लेकर अपने..... के पास चला गया था।
3. महादेवी वर्मा को संकट से बचाने के लिए घीसा जब पहुँचा तो उसे ..... हो रहा था।

III. सुमेल कीजिए -

1. गुरु साहब	(अ) महादेवी वर्मा की मृत्यु
2. घीसा का पिता	(आ) घिसट-घिसट कर चलने वाला
3. 1987	(इ) कोरी
4. घीसा	(ई) महादेवी का जन्म स्थान
5. फर्रुखाबाद	(उ) महादेवी वर्मा

6.8 पठनीय पुस्तकें

1. गद्य लेखिका महादेवी वर्मा : योगराज थानी
2. महादेवी वर्मा : जगदीश गुप्त
3. महादेवी - नया मूल्यांकन : गणपतिचंद्र गुप्त
4. लोकभारती मूल्यांकनमाला - महादेवी : सं .परमानंद श्रीवास्तव
5. हिंदी साहित्य का इतिहास : सं .नगेंद्र, हरदयाल

इकाई 7 : 'उग्र' : एक परिचय

रूपरेखा

7.1 प्रस्तावना
7.2 उद्देश्य
7.3 मूल पाठ : 'उग्र' : एक परिचय
7.3.1 जीवन परिचय
7.3.2 रचना यात्रा
7.3.3 रचनाओं का परिचय
7.3.4 उग्र का दर्शन
7.3.5 उग्र की भाषा और शैली
7.3.6 हिंदी साहित्य में उग्र का स्थान एवं महत्व
7.4 पाठ सार
7.5 पाठ की उपलब्धियाँ
7.6 शब्द संपदा
7.7 परीक्षार्थ प्रश्न
7.8 पठनीय पुस्तकें

7.1 प्रस्तावना

हिंदी साहित्य में कुछ साहित्यकार ऐसे भी हैं जिन्हें किसी विचारधारा से जोड़कर देखने में कठिनाई होती है। हम उनकी पहचान उनके तेवर से कर सकते हैं। कुछ इसी तरह के साहित्यकार हैं पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र'। जैसा नाम वैसा काम। उग्र जी अपने साहित्य में उग्रता को धारण किए रहते हैं। समाज व साहित्य की कमियों पर तीखा प्रहार भी करते हैं। इससे समाज, धर्म व साहित्य के ठेकेदार तिलमिलाते भी हैं। यह प्रहार किसी खास वजह से होता है। वह वजह व्यक्तिगत नहीं बल्कि सामाजिक और सामूहिक होती है। मूल उद्देश्य समाज सुधार और भलाई ही होता है। इस काम को पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' ने बखूबी किया है। इस इकाई में आप पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' के व्यक्तित्व और कृतित्व का अध्ययन करेंगे।

7.2 उद्देश्य

प्रिय छात्रो! इस इकाई के अध्ययन से आप -

- पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' के व्यक्तित्व से परिचित हो सकेंगे।
- विभिन्न स्थानों और व्यक्तियों से उग्र जी के संबंध के विषय में जान सकेंगे।
- पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' की रचनाओं की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' के विचारों से परिचित हो सकेंगे।
- पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' की भाषा और शैली से अवगत हो सकेंगे।

7.3 मूल पाठ : 'उग्र' : एक परिचय

प्रिय छात्रो! पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' के व्यक्तित्व और कृतित्व को हम निम्नलिखित बिंदुओं के आधार पर समझने की कोशिश करेंगे -

7.3.1 जीवन परिचय

किसी व्यक्ति के जीवन परिचय को समझने के लिए हमें उसके व्यक्तिगत जीवन, उसके जीवन में आने वाले व्यक्ति, उसे प्रभावित करने वाले व्यक्ति और समाज, कोई स्थान विशेष जहाँ वह रहता है या जीवन के किसी समय में वह रहा हो आदि की चर्चा होती है। इसके साथ-साथ उसका सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक जीवन आदि मिलकर उसके व्यक्तित्व का निर्माण करते हैं। लोग व समाज विभिन्न कारणों से उसे कई नामों से नवाजते हैं या वह स्वयं ही कोई नाम चुन लेता है। वही उसका उपनाम बन जाता है। तो फिर आइए ! हम यहाँ पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' के जीवन परिचय को निम्नलिखित बिंदुओं के आधार पर समझते हैं।

व्यक्तिगत जीवन

पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' का जन्म 1900 ई. में उत्तर प्रदेश के मिर्जापुर जिले की चुनार तहसील के सद्दूपुर नामक मुहल्ले में बैजनाथ पांडे नामक कौशिक गोत्रोतपन्न सरयूपारीण ब्राह्मण के घर पर हुआ था। माता का नाम जयकली (जयकल्ली) था। ये बहुत छोटे थे तभी इनके पिता का स्वर्गवास हो गया। इनके यहाँ जजमानी भी नाममात्र की थी। इनका बचपन बहुत कष्टप्रद और अभावों में गुजरा। इसलिए वे अपने आपको शूद्र कहते थे। वे लिखते हैं 'मैं निस्संकोच शूद्र हूँ और ब्राह्मणों के घर में पैदा होने के सबब-साधारण नहीं असाधारण शूद्र हूँ। ब्राह्मण-ब्राह्मणी से मुझे शूद्र-शूद्राणी अधिक आकर्षक, अपने अंग के, मालूम पड़ते हैं।' उस जमाने में इनके यहाँ जुआ होता था। ये घर के दरवाजे पर बैठकर देखते रहते थे कि पुलिस तो नहीं आ रही है। जुआ ऐसा नशा होता है कि इनके भाई ने घर के धार्मिक ग्रंथों को भी बेचकर जुआ खेल डाला।

उग्र ने सुन रखा था कि हनुमान चालीसा पढ़ने से सारे दुख कष्ट दूर हो जाते हैं। इन्होंने अपने ही कक्षा के एक बच्चे की हनुमान चालीसा चुरा ली।

बोध प्रश्न

- 'उग्र' जी ने हनुमान चालीसा क्यों चुराई थी?

बचपन में ये पैसा कमाने के उद्देश्य से अपने भाई के साथ रामलीला मंडली में पाठ करते थे। इन्हें लक्ष्मण, भरत का पाठ मिलता था। एक दिन ये भरत का पाठ करने वाले थे । इनके भाई ने पहले ही कहा कि अगर पाठ भूले तो बहुत मरूँगा। वे लिखते हैं, 'मैं रोता था भाई के भय से, जनता ने समझा भरत जी अभिनय कला का शिखर छू रहे हैं।' एक बार ये लक्ष्मण बने थे और इनके भाई परशुराम। भाई बोले थे अगर पाठ में गड़बड़ी की तो तेरा भुरकुस निकाल दूँगा। वे लिखते हैं, 'पर्दा गिरते ही शृंगार में ही परशुराम जी लक्ष्मण को पीटने लगते। परदे की पीछे वाले उस परशुराम से लक्ष्मण की रक्षा राम ही नहीं, राम के बाप दशरथ भी नहीं कर सकते थे।'

जो भी हो इनके भाई ने इन्हें बहुत कुछ सिखाया भी था। इसलिए वे अपने बड़े भाई को अपना 'आदिगुरु' मानते थे। उन्होंने विवाह नहीं किया था। हाँ प्रेम अवश्य किया था। एक तरफा प्रेम । रामलीला मंडली वालों ने बाराबंकी में रामलीला दिखाते हुए ही एक महिला का शारीरिक शोषण किया था। उसके पति ने उसे बहुत पीटा था। अंततः वह मर गई थी। मरने से पहले अस्पताल में उसने बयान दिया था कि 'उसे रामलीला वालों ने बर्बाद किया है।' महंत राममनोहर दास रामलीला का प्रोग्राम जल्दी से पूरा कर बाराबंकी से सागर निकाल गए। उस बाराबंकी वाली की छवि कभी भी उग्र के मन-मस्तिष्क से न गई।

इसी तरह इस तरह करीब 14 वर्ष की आयु तक स्कूल की पढ़ाई नहीं हो पाई। बचपन में इनके एक चाचा जी बनारस में रहते थे जिनके कोई संतान नहीं थी। वे उनको लिवा गए लेकिन जब उन्हें संतान हो गई तो इनका मान-जान कम हो गया। पढ़ाई से जान छूटे इसलिए इन्होंने एक अध्यापक के खिलाफ लेटर अपने नाम से ही दिलवाया था। इस तरह इनका पूरा जीवन संघर्ष में ही बीता।

विभिन्न व्यक्तियों से संबंध

उग्र जी के जीवन में कई ऐसे लोग रहे हैं जिनसे इनका बडा लगाव था। कुछ तो ऐसे थे कि बाद में घमंडी हो गए। कुछ प्रमुख व्यक्तियों के नाम इस प्रकार हैं- नागा भागवतदास, राममनोहरदास, भानुप्रताप तिवारी, बच्चा महाराज, पंडित जगन्नाथ पांडे, लाला भगवान 'दीन', पंडित बाबूराव विष्णु पराड़कर, बाबू शिव प्रसाद गुप्त, पंडित कमलापति त्रिपाठी। उन्होंने अपनी आत्मकथा 'अपनी खबर' में इन सभी के बारे में लिखा है। नागा भागवतदास और राम मनोहरदास दोनों रामलीला मंडली चलाते थे। इनके साथ इन्होंने पंजाब, सागर, अमृतसर, अयोध्या, फैजाबाद, बाराबंकी, अलीगढ़, दिल्ली, कटनी आदि स्थानों पर रामलीला में पाठ किया।

भानुप्रताप तिवारी इन्हीं के यहाँ के रहने वाले थे। तिवारी जी के यहाँ लगभग 10 हजार जिल्द पुस्तकें रही होंगी। जब बनारस में भारतेंदु हरिश्चंद्र थे तो उस समय चुनार में भानुप्रताप तिवारी जवानी पर रहे होंगे।

बच्चा महाराज इनके गाँव के थे। अध्यापक थे, बड़े रंगीन मिजाज। पैसा लेकर क्लास का मोनिटेर बनाते थे। बच्चा महाराज ने गाँव के कई लड़कों को जुआ, शराब आदि के नशे में अनचाहे ही धकेल दिया। वे लगभग नब्बे साल की उम्र में मरे लेकिन कभी किसी तरह की परेशानी नहीं उठाई। जिए भी शान से और मरे भी शान से। वे निहायत ही लापरवाह भाव से ललकारते थे 'अगड़ बम! कमाए दुनिया खाएँ हम! भोले अगड़ धत्ता। एक चिलम पर चढ़कर फूँक दिया कलकत्ता।'

पंडित जगन्नाथ पांडे इनके चाचा थे, जो संतान विहीन थे। चाची के कहने पर उन्होंने इनके बड़े भाई से बात की। भाई राजी हो गए। जीवन पटरी पर आया लेकिन जब चाचा जी स्वयं पिता बने तो उन्होंने इनकी तरफ ध्यान देना कम कर दिया।

लाला भगवान 'दीन' बहुत अच्छे साहित्यिक पुरुष थे। उनकी महानता का अंदाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि उनके शिष्यों में हिंदी के सम्मानित लोगों का नाम है जैसे- आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, श्री कृष्णदेव प्रसाद गौड़ 'बेढब बनारसी', मुंशी कालिका प्रसाद। लाल जी ने उग्र जी के 'महात्मा ईसा' नाटक का सम्यक संशोधन किया था।

पंडित बाबूराव विष्णु पराड़कर आज के संपादक थे। उन्होंने ही 'उग्र' की पहली बार कविता छापी थी। यह बात 1920 या 1921 के आसपास की है। फिर तो उग्र जी आज में छपते ही रहे। कभी कविता, कभी कहानी आदि। उसमें हास्य-व्यंग्य भी खूब लिखे।

बाबू शिवप्रसाद गुप्त जी ने 'भारत माता का मंदिर' की भव्य कल्पना की। काशी विद्यापीठ की नींव डाली। ये विद्यापीठ आज भी बनारस में 'महात्मा गांधी काशीविद्या पीठ' के नाम से है। वे जेल में गए वहाँ बीमार हुए। छूटे तो फालिज मार गया।

पंडित कमलापति त्रिपाठी जो इनके बहुत करीबी थे, बाद में मंत्री भी बने, लेकिन उग्र जी से नहीं जमी। क्योंकि उनके अंदर घमंड आ गया था। 'उग्र' जी ने अपनी आत्मकथा में लिखा है 'हरिश्चंद्र ने कहा-कोई हमसे सत्य में भिड़ाए, रामचंद्र ने कहा, कोई हमसे मर्यादा में भिड़ाए, गौतम बुद्ध ने कहा, कोई मुझसे करुणा में भिड़ाए, लेकिन कमलापति पंडित ने पलटा लेकर कहा, कोई हमसे पॉलिटिक्स में भिड़ाए!'

बोध प्रश्न

- 'उग्र' जी के जीवन से जुड़े महत्वपूर्ण व्यक्तियों के नाम बताइए।

महत्वपूर्ण स्थान

चुनार में उग्र जी का जन्म हुआ था। उनके हृदय में चुनार के लिए अगाध प्रेम था। उन्हें तीर्थ अयोध्या, साकेत से भी अधिक प्रिय चुनार है। चुनार में चरण की आकृति की एक पहाड़ी है, जिसका तीन भाग गंगा में है और चौथा धरती की तरफ। इस पहाड़ी के कारण चुनार का नाम 'चरणाद्रि' भी संस्कृतज्ञों से सुना गया था। पहाड़ी पर एक प्राचीन दुर्ग है। उसका संबंध सम्राट जरासंध से जोड़ा जाता है। देवकीनंदन खत्री के उपन्यास चंद्रकांता, चंद्रकांता संतति, भूतनाथ उपन्यास में इसी किले का वर्णन है। वल्लभ महाप्रभु और उनके पुत्र विट्ठलनाथ से भी यहाँ के एक कूप (कुआँ) का संबंध जुड़ता है। मुसलमानों के समय में भी चुनार का विशेष महत्व था और आज भी है 'मुस्लिम जमाने में चुनार के किले में हज़रत मुहम्मद की दाढ़ी का पवित्र बाल भी सादर सुरक्षित रहता था। चुनार के दर्शनीय स्थानों में एक दरगाह भी है- मशहूर मुस्लिम वली हज़रत कासिम सुलेमानी की।' उस जमाने में किसी तरह का भेदभाव या वैमनस्य नहीं था। हज़रत की दरगाह पर हर साल मेला होता था। जिसमें हिन्दू-मुसलमान, देहाती-शहराती सभी शामिल होते थे। बाद में अंग्रेज़ों के आने के बाद वहाँ चर्च बन गए। अंग्रेजों के घर बन गए।

बनारस तो इनका आना-जाना था ही। वहाँ इनकी पढ़ाई-लिखाई से लेकर लेखन भी हुआ और छापे भी। दोस्ती भी हुई, मार्गदर्शन भी मिला। बनारस के विषय में है कि वहाँ का तोता

भी बाद विद्वान होता है। 'सोसायटी आफ़ डेविल्स उर्फ शैतान मंडली' वाली घटना बनारस की है। कलकत्ता इनके जीवन में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। बुरे वक़्त में ये कलकत्ता गए थे। 1930-1938 तक यानि लगभग 8 साल मुंबई में रहे। फिल्मी दुनिया को देखा। उसकी सच्चाई को जाना। 'सिनेमा-संसार और मैं' संस्मरण में उन्होंने वहाँ के सच को बताया है।

मालवा और उज्जैन भी इनके लिए कम महत्वपूर्ण स्थान नहीं रखते। आवारा (नाटक), घंटा (उपन्यास), जीजीजी (लघु उपन्यास) आदि मालवा में ही लिखे गए। 1953-1967 दिल्ली में रहे। वहीं से लिखना पढ़ना-जारी रहा और मृत्यु भी वहीं हुई।

बोध प्रश्न

- उग्र जी ने मुस्लिमों के समय में चुनार की स्थिति पर क्या लिखा है?

नाम और उपनाम

पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' के जीवन में कई ऐसे मोड आए हैं, जहाँ उनके कई नाम हुए। लेखन के लिए भी कुछ अलग नाम थे। उनके नाम 'बेचन', 'उग्र', 'अष्टावक्र', 'शशिमोहन शर्मा' आदि हुए। उनका 'बेचन' नाम असल नाम है। लेकिन इस नाम के रखने में भी एक कथा है। जो अपने आप में एक मान्यता या टोटका लिए हुए है। उनका यह नाम 'बेचन' ऐसे पड़ा कि इनके जन्म के पहले इनके माता-पिता (जयकली-पंडित वैद्यनाथ) को एक दर्जन से अधिक पुत्र-पुत्रियाँ हुईं। उनमें अधिकांश जन्म लेते ही मृत्यु को प्राप्त हो गए। इसलिए जब उग्र जी पैदा हुए तो कोई खुशी नहीं मनाई गई और न ही कोई जन्मपत्री बनवाई गई। गाँव की एक प्रथा या टोटके के अनुसार उनकी माता ने इन्हें एक टके में अपनी पड़ोसन को बेच दिया। इनकी माता ने उस एक टके का गुड माँगकर खा लिया। वजह यही थी कि बालक बचे रहे। उस बालक को बेचने के कारण ही नाम पड़ा 'बेचन' यानि 'बेचन पांडेय'। पता नहीं ये उस प्रथा या टोटके का प्रभाव था या कोई अन्य कारण ये बालक 'बेचन' बचा रहा।

इनका उपनाम 'उग्र' है। उग्र नाम की भी अपनी सार्थकता है। उनका एक नाम शशिमोहन शर्मा भी है। बात यह है कि एक बार उन्होंने 'आज' समाचारपत्र में छपने के लिए एक कहानी हरिहर नाथ जी के द्वारा श्रीप्रकाश जी के पास भेजी थी। श्री प्रकाश जी उस कहानी को बिना पढे ही हेय दृष्टि से देखते हुए अस्वीकृत कर दी। हरिहर नाथ जी ने वह कहानी उग्र जी को लौटाई नहीं बल्कि वही कहानी छपने के लिए बाबराव विष्णु पराड़कर को दे दी। पराड़कर जी ने उसमें आवश्यक सुधार करके उसे छापा। वह रचना थी तो उग्र की ही लेकिन उसे शशिमोहन शर्मा के नाम से छापा गया। यह भी उग्र जी का एक नाम ही है। वे अपनी आत्मकथा 'अपनी खबर' में लिखते हैं 'वह कहानी पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' के नाम से नहीं, मेरे एक अन्य-शशिमोहन शर्मा - नाम से छपी थी। तब तक मैंने 'उग्र' उपनाम नहीं रखा था। 'उग्र' उपनाम मैंने राष्ट्रीय गान द्वन्द्व में सम्मिलित होने से पूर्व चुना था। मुझे अपने लिए उपनाम चुनना हो, तो संभव है- बुरा न होने पर भी- 'उग्र' मैं न चुनूँ लेकिन आज से चालीस वर्ष पूर्व राष्ट्रभक्त लेखक ऐसे कर्कश उपनाम इसलिए चुना करते थे कि बलवान ब्रिटिश साम्राज्य के नृशंस शासक नाम से

ही दहल जाएँ।' इनके 'उग्र' उपनाम के विषय में एक कारण और भी है जिससे ये काफी प्रसिद्ध भी हुए। मधुरेश लिखते हैं 'सन 1920 में उनके संपादन में निकला हस्तलिखित पत्र 'उग्र' वस्तुतः उनकी शैली की पहचान बन गया और इसी के आधार पर वे इसी नाम से प्रसिद्ध हुए।'

दैनिक समाचारपत्र (अखबार) 'आज' में उग्र जी की कई रचनाएँ छपीं। उनकी पहली समालोचना 'मर्यादा' मासिक में उन्हीं दिनों छपी थी। 'आज' में उनकी रचनाएँ (कविता, कहानी, व्यंग्य आदि) छपती थीं। उग्र जी ने बताया है कि 'ऊटपटाँग' शीर्षक से बरसों मैंने हास्य-व्यंग्य के नोट्स 'आज' में लिखे हैं- 'अष्टावक्र' उपनाम से।' समय के साथ 'शशिमोहन', 'अष्टावक्र' नाम छिप गए। अंततः उनका जन्म के बाद रखा गया नाम 'बेचन' और बाद में रखा गया नाम 'उग्र' रह गया। वर्तमान में उनका जो नाम प्रचलन में है वह है- पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र'।

बोध प्रश्न

- 'उग्र' जी का नाम 'बेचन' कैसे पड़ा?

अंतिम समय

प्रत्येक जीवित व्यक्ति या जीव की मृत्यु निश्चित है। कुछ लोग तो वसीयत करना भी पसंद करते है। अंतिम समय में उग्र जी भी कुछ विचार करते है। संभवतः वे पहले साहित्यकार हैं जो अपने मकान का नाम 'श्मशान' रखना चाहते हैं। उनके विषय में राज शेखर व्यास ने लिखा है ' 'उग्र' का विचार था कि अगर मकान बने भी तो चुनार में गंगातट पर काले पत्थरों का बने और उसका नाम 'श्मशान' रहे। 'उग्र' की इस अनोखी कल्पना में उनकी मृत्यु पूजा परिलक्षित होती है, मृत्यु में भी जीवन की पूजा साधक ही करते हैं। कलम के धनी 'उग्र' का 23 मार्च, 1967 को लंबी बीमारी के बाद कृष्णानगर दिल्ली में देहावसान हुआ।' लोग अपने मकान का बड़ा सुंदर नाम ढूंढते हैं, रखते हैं। 'उग्र' जी घर का नाम 'श्मशान' रखना चाहते थे। क्या बात है? हा! हा! हा!... सोचिए, ज़रा सोचिए।

अंततः वे दार्शनिक भाव में आते हैं और पूरे जीवन में किए गए कर्मों आदि पर निष्कर्षतः लिखते हैं। 'अपनी खबर' में 'दिग्दर्शन' के अंतर्गत उन्होंने लिखा है 'मैंने क्या-क्या नहीं किया? किस-किस दर की ठोकरें नहीं खाईं? किस-किसके आगे मस्तक नहीं झुकाया?.

आशा के जाल में फँस, 'योर मोस्ट ओबीडिएंट सर्वेन्ट बन' नीचों को मैंने परम प्रसन्न प्रेमपूर्वक 'प्रभु! प्रभु!' पुकारा। मैंने द्वार-द्वार, बार-बार मुंह फैलाया दीनता सुनाने, लेकिन किसी ने उसमें एक मुट्ठी धूल तक नहीं डाली!

भोजन और कपड़े के लिए पागल बना मैं यत्र-तत्र-सर्वत्र झक मारता फिरा, प्राणों से भी अधिक प्रिय आत्म-सम्मान त्यागकर खलों के सामने मैंने खाली पेट खोल-खोलकर दिखलाया!

'सच कहता हूँ, कौन सा ऐसा नीच-नाच होगा जो लघु-लोभ ने मुझ बेशरम को न नचाया होगा!' इन कथनों में उग्र जी की पीड़ा के साथ-साथ अपने ऊपर किया गया व्यंग्य भी साफ-तौर पर देखा जा सकता है।'

7.3.2 रचना यात्रा

इनका जन्म तो 1900 ई. में हो गया था लेकिन 14 साल तक कोई पढ़ाई-लिखाई नहीं हो पाई। 1915 से पढ़ाई की शुरूआत हुई। 1920 में जेल जाने से पढ़ाई में व्यवधान आया । 1921-1924 तक दैनिक अखबार 'आज' में कहानियाँ, कविताएँ, व्यंग्य आदि का लेखन किया। इनकी पहली कविता 1920 या 1921 में 'आज' में छपी। पहली आलोचना 'मर्यादा' मासिक में छपी थी। 1924 के मध्य तक काफी प्रसिद्ध हो चुके थे। 1927, 1928, 1929 में लेखन के जीवन में काफी उतार-चढ़ाव का सामना किया। कलकत्ता के 'मतवाला मण्डल' से संबंध जुड़ा और प्रगाढ़ हुआ। इसी दरमियान इनकी रचना 'चाकलेट' के वज़न पर इनके खिलाफ 'घासलेट' आंदोलन चला। इनका मन रुष्ट हो गया और इन्होंने हिंदी की दुनिया छोड़ दी। फिल्मी दुनिया बंबई (मुंबई) चले गए।

1930-1938 तक फिल्म लेखन किया। 1939-1945 के दौरान मध्यप्रदेश से प्रकाशित 'स्वराज्य', 'वीणा', 'विक्रम' आदि पत्रों में लेखन सम्पादन किया। 1947 में मिर्जापुर से 'मतवाला' दोबारा प्रकाशन किया। 1950-1952 में पुनः कलकत्ता गए। वहाँ बहुत परेशानी में जीवन जिया और 1953 से 1967 तक मृत्युपर्यंत दिल्ली में ही रहे। इन्होंने कविता, कहानी, उपन्यास, लघु उपन्यास, निबंध, क्रांतिकारी साहित्य, आत्मकथा आदि का लेखन किया है। इनकी रचनाओं के विषय में हम आगे देखेंगे-

7.3.3 रचनाओं का परिचय

(1) कविता- 'उग्र' जी का अधिकांश काव्य साहित्य अनुपलब्ध है क्योंकि इनकी अनेक रचनाओं पर ब्रिटिश सरकार ने प्रतिबंध लगा दिया था। पंडित कमलापति त्रिपाठी की भतीजी ने ही 'उग्र' के पहले काव्य संग्रह 'ध्रुव धारणा' को छपवाने के लिए आर्थिक सहयोग दिया था। 'उग्र' जी की कई कविताओं को उनकी रचनाओं में बीच-बीच में देखा जा सकता है। अपनी खबर में उन्होंने अपनी कई कविताओं को दिया है।

कानपुर से प्रकाशित पत्र 'प्रताप' में किसी श्री बेनीमाधव खन्ना ने हिंदी कवियों से एक राष्ट्रीय गान रचना की प्रतियोगिता में शामिल होने का आग्रह किया था। उस प्रतियोगिता में मैथिलीशरण गुप्त, अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध', 'उग्र' आदि शामिल हुए थे। किसी को भी प्रतियोगिता के मानदंड के बराबर नहीं समझ गया था। उस समय की कुछ कविताएँ उग्र जी ने अपनी आत्मकथा 'अपनी खबर' में दी है।

ज्ञान मण्डल

'उग्र' तप कड़ी कै उदारता रिझायौ विधि
मांगों वरदान- 'मोहि अमर बनाइए !'
बोले कमलासन- 'न मेरो अधिकार इतो'
जाइ, पट्टी कमला सन विनय सुनाइए।

कहे हरि तूठि – 'हर पास चलि जाँचै किन?'
शम्भु भाखे 'शिव परसाद पास जाइए।'
शिव परसाद-'एवमस्तु !' कहि बोले,
'अब, बैठि ज्ञानमंडल अखंड गीत गाइए।'

आज दैनिक समाचार पत्र में भी उनकी कविताएँ प्रकाशित हुआ करती थीं। उन्होंने महज स्मरण से कुछ कविताएँ 'अपनी खबर' में दी हैं। हम वहीं से इन्हें उद्धृत कर रहे हैं-

कामना

भयंकर ज्वालाएँ
जाग उठें, सब ओर आग की हो जाय भरमार!
मधुर रागिनी नहीं चाहते-
और न स्वर सुकुमार !
वज्र-नाद-सा बोल उठे हम सबके उर का तार !
पावस की घनघोर घटाओं-सी
चारों ओर नभ में धुएं की राशि व्याप उठे,
और उसमें से हमारी दिव्य आशाएँ
चंचला-सी चमकें अनंत चिनगारियाँ !
ऐसे समय
ओ हो हो ! आ हा हा !
उग्र रूप विश्वामित्र
दुष्ट-दल-नाशक भृगु,
रावण-दर्प-हारी राम
कुरु-बल-वन-दावानल, कर्मवीर-कृष्ण ऐसा,
अथवा पिनाकी भूतनाथ श्री कपालभृत
ऐसा वीर-भारत हमारा उग्र नाच उठे !
एवमस्तु !

(2) कहानी (कथा)- 'उग्र' जी ने लगभग 100 से अधिक कहानियाँ लिखी हैं। इनके कई कहानी संग्रह जब्त कर लिए गए थे। इसलिए जिस दौर में रोमांटिक और भावपूर्ण लेखन चल रहा था। उस दौर में 'उग्र' जी क्रांति की भावना जाग्रत कर रहे थे। उग्र की कई कहानियाँ जब्त होने के कारण अनुपलब्ध थीं। 1964 में आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली ने उग्र की समस्त कहानियों को 6 खंडों में प्रकाशित किया। इनके के नाम निम्नलिखित हैं-
(क) पोली इमारत (सामाजिक तथा पारिवारिक कहानियाँ)
(ख) चित्र विचित्र (हास्य व्यंग्यपूर्ण कहानियाँ)
(ग) यह कंचन-सी काया (प्रेम और आदर्श की कहानियाँ)

(घ) काल कोठरी (ऐतिहासिक कहानियाँ)
(ङ) ऐसी होली खेलो लाल (राष्ट्रीय चेतना से ओतप्रोत कहानियाँ)
(च) मुक्ता (प्रतीक तथा भाव कथाएँ)

उग्र जी का एक कहानी संग्रह 'चाकलेट' (1928) है। असल में यह एक उपन्यास है लेकिन यह कहानी के रूप में हैं। इसलिए कुछ जगह इसे कहानी और कुछ जगह इसे उपन्यास के रूप में देखा जाता है । हम यहाँ इसे कहानी के रूप में देख रहे हैं। इसमें जीवन के सत्य को उद्घाटित करने वाली कहानियाँ हैं। 'चाकलेट' के प्रकाशन ने हिंदी साहित्य में बवंडर मचा दिया था। 'हिंदी में समलैंगिक यौन संबंधों पर, बच्चों के साथ होने वाले घृणित अनैतिक कुकृत्यों पर इतने बेबाक नग्न रूप में सत्य का ऐसा यथार्थ चित्रण इससे पहले कभी किया नहीं गया था।' आदर्शवादियों द्वारा इस रचना का घोर विरोध हुआ था। विशाल भारत के संपादकाचार्य बनारसीदास चतुर्वेदी ने तो 'घासलेटी साहित्य आंदोलन भी चलाया था।' इसका मूल उद्देश्य था। उग्र की रचनाओं के प्रकाशन पर रोक लगाना।

बनारसीदास चतुर्वेदी ने 'उग्र' की चाकलेट को गांधी जी और डॉ. जीवागो को पढ़ने के लिए दिया था। बापू ने उस कृति को दो बार पढा था और कहा था 'मुझे तो यह कृति समाजसुधारक ही मालूम हुई है और इसका मुझ पर तो वैसा असर नहीं पडा जैसा आप पर।' महात्मा गांधी के इस उत्तर को बनारसी दास चतुर्वेदी ने लगभग 20 साल तक दबाए रखा। आलोचकों ने 'उग्र' को 'छिछोरा', 'चाकलेटपंथी' 'लौंडा', 'चाकलेट' जैसे शब्दों से संबोधित किया था।

बोध प्रश्न

- उग्र जी के लखिलाफ़ घासलेटी साहित्य आंदोलन क्यों चलाया गया?

'उग्र संचयन' (संपादक-राजशेखर व्यास) में उनकी 'उसकी माँ', 'ईश्वरद्रोही', 'नेता का स्थान', 'हत्यारा समाज', 'दोज़ख की आग' और 'दोज़ख! नरक!!' संकलित हैं। यहाँ हम उनकी 'उसकी माँ' कहानी पर बात करेंगे। यह कहानी एनसीईआरटी के पाठ्यक्रम में भी शामिल है। 'उग्र' की कहानी 'उसकी माँ' के आधार पर आचार्य नंददुलारे वाजपेयी ने उग्र को हिंदी का पहला राजनीतिक कहानीकार माना है। ये कहानी देशभक्ति की भावना से ओतप्रोत है। यहाँ लाल नामक लड़के और उसके दोस्तों के माध्यम से अपने देश को अंग्रेजों से मुक्त कराने और अंततः फांसी के तख्ते पर झूलने की कथा है। लाल के पिता रामनाथ एक जमींदार साहब के यहाँ नौकरी करते हैं। लगभग 7-8 साल पहले उनकी मौत हो जाती है। अब ये दोनों माँ (जानकी) और बेटा (लाल) रह गए हैं। जमींदार साहब लाल और उसकी माँ की मदद भी करते हैं। लाल को समझाते भी हैं। लेकिन लाल अपने विचारों का पक्का है। एक दिन लाल और उसके 12-15 साथियों को पुलिस पकड़ ले जाती है। एक साल मुकदमा चला। कई बड़े-बड़े आरोप लगे। अदालत ने लाल व उसके दोस्त को फाँसी और कुछ दोस्तों को 7-10 साल की सजा सुनाई। जमींदार साहब दिल से लाल और उसकी माँ की मदद करना चाहते हैं लेकिन कानूनी पचड़े के

ड़र से नहीं कर पाते हैं। एक पत्र जो लाल की माँ जमींदार साहब को पढ़ने के लिए देती है। उस पर जेल की मुहर है। वह पत्र लाल की माँ जानकी को पढ़कर जमींदार साहब सुनाते हैं। उसमें लिखा है, "माँ ! जिस दिन तुम्हें यह पत्र मिलेगा उसके ठीक सवेरे मैं बाल-अरुण के किरण रथ पर चढ़कर उस ओर चला जाऊँगा। ... मुझे विश्वास है, तुम मेरी जन्म-जन्मांतर की जननी ही रहोगी। मैं तुमसे दूर कहाँ जा सकता हूँ, माँ!" इसके बाद लाल की माँ ने यह पत्र लिया और लकड़ी से टेकते हुए बाहर निकल गई। जमींदार साहब धम से कुर्सी पर गिर पड़े। करीब एक बजे वे सुगबुगाये और अपने नौकर से कहा जाकर देखो लाल की माँ क्या कर रही है? पता चला कि उसकी माँ भी इस दुनिया से चली गई।

(3) लघुकथा- वर्तमान में लघु कथाओं का महत्व हो गया है। लघु कथा पर बाकायदा पत्रिकाओं के विशेषांक निकले हैं। 'उग्र' जी ने भी लघु कथाएँ लिखी हैं। उग्र संचयन (संपादक-राजशेखर व्यास) में भी इनकी चार लघुकथाओं को दिया गया है यथा- 'प्रार्थना', 'विकास', 'अवतार', 'सृष्टि'।

'प्रार्थना' लघुकथा में मनुष्य द्वारा ईश्वर से वरदान मांगने की कथा है। भगवान भी उसके वरदान इत्यादि मांगने पर परेशान हो जाते हैं। वे कहते हैं 'तू तप कर भीख न मांग।' लेकिन मनुष्यों ने इस वजह से भगवान को नकारा। सवाल उठाया कि जब सब कुछ हमीं को करना है तो फिर तुम करतार किस बात के? हम मनुष्य तुम्हारा मंदिर-मस्जिद क्यूँ बनाएं? अब तुम्हारी मार्केट वैल्यू कम हो गई है। यह कथा हास्य-व्यंग्य लिए हुए है।

'विकास' लघुकथा में बताया गया है कि मनुष्य को ईश्वर का पूजा स्थल बनाने की इच्छा हुई। उसने मंदिर बनाई, मूर्ति स्थापित की। फिर मस्जिद बनाई, नमाजें पढ़ीं। फायदा नहीं हुआ। फिर उसने एक 'लैटेस्ट डिजाइन' का मकान तैयार किया नाम रखा 'जनरल स्टोर्स' इस मकान में वह सुबह से शाम तक व्यापार करता। तिजोरियाँ भरता। मनुष्य ने उस जनरल स्टोर से खूब पैसा कमाया। पैसे की ताकत को उसने देखा। अंततः उसने पैसे को ही ईश्वर मान लिया।

'अवतार' लघुकथा में ईश्वर को पुकारने और उसके न सुनने, की बात है। वह अवतार लेता है। उसे फाँसी पर चढ़ाया जाता है। उसके बाद जनता क्रांति करती है। उस व्यक्ति को अवतार मानती है।

'सृष्टि' लघुकथा में एक नई रचना बनाने की बात है। उस नई रचना का नाम 'देशभक्त' है। इस रूप में एक प्राणी के जन्म की बात है। वह प्राणी दुनियावी हिसाब से पूरे 20 साल जीता है। वह देशद्रोही को मारता है। अंततः सत्ता के द्वारा उसे तोप से उड़वा दिया जाता है। मृत्यु के बाद उस देशभक्त के ऊपर सभी देवी-देवता पुष्पवर्षा करते हैं। इस लघुकथा में देशभक्त व्यक्ति के महत्व को बताया गया है।

(4) उपन्यास - 'उग्र' जी ने कई उपन्यास लिखे यथा- 'चंद हसीनों के खतूत', 'घंटा', 'दिल्ली का दलाल', 'बुधुआ की बेटी', 'शराबी' आदि। इसमें से घंटा उपन्यास ऐतिहासिक उपन्यास है। शेष सामाजिक उपन्यास हैं। यहाँ हम उनके प्रमुख उपन्यासों के विषय में बात करेंगे-

(क) चंद हसीनों के खतूत (1927)- इस उपन्यास में दो अलग-अलग धर्मों (हिन्दू धर्म और इस्लाम धर्म) के युवक-युवती के प्रेम को दिखाया गया है। ऐसा करने में दोनों धर्मों के लोगों की अमानवीयता भी साफ तौर पर दिखाई दे जाती है। यहाँ मानवीय प्रेम को सत्य के रूप में स्थापित किया गया है। इसमें रूढ़ियों और नई चेतना को दिखाकर समाज को नई चेतना की ओर उन्मुख करना चाहा है। प्रेम की संवेदना का अच्छा चित्रण किया गया है। इस उपन्यास में नरगिस का यह कथन सोचने पर विवश कर देता है 'औरत का दिल ऐसी चीज़ नहीं जिसे आज हिन्दू कल मुसलमान कह दिया जाए'

(ख) बुधुआ की बेटी (1928)- यह दलित विषयक उपन्यास है। इसमें तत्कालीन परिवेश में अछूतोद्धार और नारी समस्या को उठाया गया है। इसमें भंगी बुधुआ और अघोड़ी मनुष्यानंद के माध्यम से अछूत समस्या पर बात की गई है। अछूतों की समस्या के लिए सामाजिक और आर्थिक पहलुओं को तो उठाया ही गया है, इसके साथ-साथ उस समाज में व्याप्त बुराइयों को भी उनकी समस्या का जिम्मेदार माना गया है। उस समस्या को दूर करने के लिए उनको ही कोशिश करने के लिए कहा गया है। इसमें 'उग्र' जी की यथार्थवादी दृष्टि के साथ अछूतों के प्रति उनकी मानवीय दृष्टि और उनकी संवेदना भी दिखती है।

(ग) शराबी (1930)- इस उपन्यास में शराब और उस माहौल की चर्चा है। यह शराब की मादकता से निकालकर मुक्ति की ओर ले जाता है। वैश्याओं के भी अपने नियम होते हैं। उनका भी अपना ज़मीर होता है। इस उपन्यास की वैश्या भी अपना सतीत्व सुरक्षित रखती है और एक यावर व्यक्ति मानिक उससे विवाह करके शरीफ इंसान बन जाता है।

(घ) दिल्ली का दलाल- इसमें स्त्री का व्यापार करने वालों की पोल खोली गई। व्यापारियों के चंगुल में फंसी औरतों का दो आर्य समाजी युवकों द्वारा उद्धार करते हुए दिखाया गया है। हिन्दू समाज की बुराइयों, उनकी छद्म नैतिकता का अनावरण किया गया है। उद्देश्य सामाजिक सुधार ही है।

(ङ) घंटा- 'उग्र' जी को साहित्य के क्षेत्र में कम विरोध नहीं झेलने पड़े। 'शराबी' उपन्यास के बाद का समय 'उग्र' ने फिल्मी दुनिया में बिताया। हालांकि वहाँ से असफलता ही मिली। विरोधियों ने उन्हें 'खोया हुआ आदमी' तक कहा। लेकिन फिल्मी दुनिया के बाद जब वे साहित्य के क्षेत्र में पुनः उपस्थित हुए तो लेकर आए उपन्यास 'घंटा'। इस उपन्यास में कोई मनुष्य नायक-नायिका नहीं है बल्कि एक निर्जीव वस्तु घंटा ही नायक-नायिका है। यह एक मंदिर का घंटा है। इसमें 'घंटा' का मानवीकरण किया गया है। इस उपन्यास की मूल ध्वनि है 'शांति या सुख कोई ऐसी चीज़ नहीं है, जो बाहरी बाजारों में बिकती-मिलती हो, वह तो मृग की कस्तूरी की तरह अपने आपे के अंदर ही है और संतोष, दया, त्याग से उसके दर्शन सौभाग्यशालियों को ही मिलते हैं।'

(5) लघु उपन्यास- 'उग्र' जी ने लघु उपन्यास भी लिखे हैं। इस संदर्भ में उनके दो लघु उपन्यासों का नाम लिया जा सकता है यथा- 'जीजीजी' और 'कढ़ी में कोयला'।

(क) जीजीजी (1943)- इसका प्रथम संस्करण अगस्त 1943 में विनय प्रकाशन मंदिर इंदौर से प्रकाशित हुआ था। वर्तमान में यह राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली से प्रकाशित है। इस लघु उपन्यास के दीबाचा (भूमिका) में उन्होंने कम्युनिस्टों की विचारधारा की कमियाँ बताई हैं। यह लघु उपन्यास स्त्री समस्या पर लिखा गया है। इसलिए इस पर स्त्री विमर्श के अंतर्गत भी विचार किया जाना चाहिए। 'उग्र' ने लिखा है 'मर्द जो स्वयं न पालन कर सके वही आदर्श औरत से पालन करने की आदत एक बार हमेशा के लिए बाला-ए-ताक रखनी होगी।'

(ख) कढ़ी में कोयला (1955)-यह उपन्यास राजस्थान के मारवाड़ी समुदाय के विषय में है। ये लोग राजस्थान से कलकत्ता अपना व्यापार करने के उद्देश्य से गए। इस उपन्यास में कलकत्ता के मारवाड़ी समुदाय अर्थात राजस्थान का गरीब, पसीने और परचून से चीकट कपड़ों वाला बनिया जो महानगरी में जाकर धार्मिक व्यक्ति बना इस उपन्यास का मुख्य विषय है। यहाँ 'उग्र' जी ने उस समुदाय की तमाम विकृतियों को उजागर किया है। साथ ही साथ धन आने के बाद व्यक्ति किस तरह से बहकता है, उसका भी सजीव चित्रण इस लघु उपन्यास में मिलता है।

(6) नाटक- हिंदी नाटकों के प्रारंभिक काल में 'उग्र' जी का पहला नाटक 'महात्मा ईसा' 1923 में प्रकाशित हुआ। इनका 'आवारा' नाटक प्रो. रमाशंकर शुक्ल 'हृदय' की मृत्यु के बाद उनके परिवार की मदद करने के उद्देश्य से लिखा गया था। इस नाटक को उग्र जी ने पं. सूर्यनारायण व्यास द्वारा स्थापित 'सत्साहित्यिक सेवक समाज' को लिखकर दिया था। इसे पं. सूर्यनारायण व्यास जी ने छपवाया। इससे रॉयल्टी के रूप में होने वाली समस्त आय स्व. रमाशंकर शुक्ल 'हृदय' जी के परिवार को दी गई थी। कुछ छुटपुट प्रहसन और एकांकी भी 'उग्र' जी ने लिखे थे।

बोध प्रश्न

- 'उग्र' जी ने आवारा (नाटक) क्यों लिखा था?

(7) निबंध- उग्र जी ने निबंध भी लिखे हैं और ये निबंध बड़े दमदार भी हैं। उनमें से दो प्रमुख निबंधों की चर्चा हम यहाँ करेंगे। इन निबंधों के शीर्षक हैं- 'रुपया' और 'बुढ़ापा'। रुपया शीर्षक निबंध में रुपये के महत्व को समझाया गया है। रुपये और देशभक्ति का मानवीकरण करते हुए रुपये को जीतते हुए दिखाया गया है। रिश्तों पर रुपये को भारी पड़ते हुए दिखाया गया है। रुपये का आशीर्वाद पाकर कितने भी पाप करने पर बच निकालने की बात बताई गई है। रुपया कहता है 'मेरी कृपा से मित्र मित्र रहता है, भाई भाई रहता है और स्त्री स्त्री रहती है। मैं अनंत रूप हूँ, मैं सहस्रनाम हूँ, मैं कर्ता हूँ, मैं धर्ता हूँ, मैं हर्ता हूँ, मैं ब्रह्मा-विष्णु-महेश हूँ। मैं रुपया हूँ।' ये रुपये की गर्वोक्ति है लेकिन इसमें सत्य भी निहित है।

इसी तरह से बुढ़ापा निबंध में जीवन के विभिन्न पड़ावों यथा- लड़कपन, जवानी और बुढ़ापा की बात कही गई है। लड़कपन के पंद्रह वर्ष बाद जवानी, जवानी के बीस वर्ष बाद बुढ़ापा। जीवन का अर्थ ही है 'पतन'। बूढ़े लोगों को देखकर बच्चे मज़ाक उडाते हैं लेकिन लड़कपन और जवानी के खर्च के लिए पैसे कोई बूढ़ा आदमी ही देता है। बूढ़ा व्यक्ति बुढ़ापे में अपने जीवन से त्रस्त हो चुका होता है। वह ईश्वर से अपने जीवन की रस्सी काटने के लिए

प्रार्थना करने लगता है। 'उग्र' जी लिखते हैं 'बुढ़ापा वह पतन है, जिसका उत्थान केवल एक बार होता है, और वह होता है-दहकती हुई चिता पर।'

इन दोनों निबंधों के कारण उग्र जी को 9 महीने कारावास झेलना पड़ा।

(8) संस्मरण- उग्र के संस्मरण 'सिनेमा-संसार और मैं' में तत्कालीन फिल्मी दुनिया का कड़वा सच देखा जा सकता है। बंबई (अब मुंबई) से उनका संबंध 1924 से जुड़ा था। जब वे पुलिस के भय से बंबई (अब मुंबई) चले गए थे। बाद में इन्हें वहाँ से गिरफ्तार किया गया। हाथ में हथकड़ी डालकर वापस लाया गया। उस समय इनकी उम्र 21 साल थी। नाटा, दुबला-पतला शरीर, मूँछें आई नहीं थीं।

दूसरी बार 1929 में दोबारा बंबई (अब मुंबई) पहुंचे। वजह थी हिंदी क्षेत्र में इनका विरोध करते हुए 'घासलेटी साहित्य' का आरोप लगाकर 'घासलेट आंदोलन' चलाया जाना। फिल्मी दुनिया में अय्याशी का माहौल रहा है। कंपनी के मालिक, डायरेक्टर, फ़ाईनेंसर, ऐक्टर सभी हिरोइनों के आगे-पीछे घूमते रहते थे। फिल्मी दुनिया से जुड़े लोग कभी-कभी बहुत ही खराब ज़िंदगी जीते हुए मरते हैं। कुछ लोग अच्छी ज़िंदगी भी जीते हुए मरते हैं। 'सस्सी-पुन्नु' की असफलता के बाद भी 'उग्र' जी ने वहाँ काम किया था। फिल्मी दुनिया जो ऊपर से बहुत अच्छी दिखती है उतनी है नहीं। 'उग्र' जी ने सत्य ही लिखा है 'हर चमकीली चीज़ सोना नहीं होती। फिल्मी दुनिया के चाँद और सितारे बाहर और दूर से जो इतने चमकीले लगते हैं, अक्सर उनके पीछे वह अंधेरा होता है कि हाथ न सूझे।' सिनेमा ने देश की युवा पीढ़ी को भ्रम में डाला, उन्हें पथभ्रष्ट किया। वहाँ नायिकाओं (हीरोइनों) के लिए भले ही 'बहन', 'बेटी', 'बाबा' कहा जाता हो लेकिन आंतरिक अर्थ 'मेरी जान' का ही होता था। इसी तरह की एक नायिका को बताने-समझाने के क्रम में 'उग्र' जी को अपनी नौकरी से हाथ धोना पड़ा क्योंकि हीरोइन ने कहा ' 'उग्र' जी 'सेट' पर होंगे तो मैं काम नहीं करूंगी।' तीसरे दिन 'उग्र' जी न तो 'सेट' पर थे और न फिल्म कंपनी में। ये है फिल्मी दुनिया का सच जिसे 'उग्र' जी ने इस संसमरण के जरिए हमारे सामने रखा है।

(9) रिपोर्तज - 'उग्र' जी ने रिपोर्तज भी लिखे हैं। यहाँ हम उनके दो प्रमुख रिपोर्तज 'पेशावर एक्सप्रेस' और 'सोसाइटी ऑफ डेविल्स उर्फ शैतान मंडली' का उल्लेख करना चाहेंगे। 'पेशावर एक्सप्रेस' में वे बताते हैं कि ग्वालियर राज में अखिल भारतीय हिंदी साहित्य सम्मेलन का प्रचार आदि करने के उद्देश्य से 24 जनवरी को उज्जैन से निकले। उज्जैन और भोपाल के बीच कई स्टेशन हैं लेकिन यहाँ 'करौंदा' स्टेशन की बात की गई है। ट्रेन में लोग इतना समान लेकर चलते हैं कि पूछिए ही मत! एक व्यक्ति के विषय में वे लिखते हैं 'कपड़ों का जो बोझ दो पाँवों पर उक्त सज्जन उठाए हुए थे, बोझ धोने वाला मशहूर वह चौपाया अपने चार पाँवों पर भी मुश्किलन उतना भार संभाल पाता।' उग्र जी करौंदा रेलवे स्टेशन के निकट ही रुकी। ये ट्रेन पर बैठे हुए थे। ठंड का महीना था। वे खुदा से दुआ करते हैं कि ये ट्रेन कम से कम चार घंटा लेट (विलंब) हो जाय। ठंड के साथ पानी भी बरसने लगा। ट्रेन का इंतज़ार करते-करते ये सो गए। न जाने ट्रेन

कब वहाँ से निकली। जब इनकी आँख खुली तो ट्रेन खूब तेज गति से भाग रही थी। ट्रेन लेट होने की दुआ खुदा ने ऐसी सुनी जब ये ग्वालियर पहुंचे तो ट्रेन पूरे बारह घंटे लेट हो चुकी थी।

'सोसाइटी ऑफ डेविल्स उर्फ शैतान मंडली' में अंग्रेज अफसर से बहस, उसका मज़ाक बनाने का दृश्य है। उनका एक नौकर जिसको ये अपना बॉडी गार्ड कहते हैं उसका नाम पीटर दी ग्रेट रखा गया है। अंग्रेज अफसर का मज़ाक बनाने के कारण वह अंग्रेज अफसर इनके पीछे एक जासूस लगा देता है। उस जासूस की इनकी शैतान मंडली ने जो गति बनाई की पूछिए ही मत!

(10) भूमिका- 'उग्र' की कुछ पुस्तकों की भूमिकाओं को हम यहाँ देखेंगे। उन्होंने अपने उपन्यास, लघु उपन्यास, नाटक, कहानी संग्रह, आत्मकथा के लिए जो भूमिकाएँ लिखी हैं, उनमें भी हास्य-व्यंग्य है। ये सभी 'उग्र शैली' के अद्‌भुत उदाहरण हैं। 'घंटा' उपन्यास के प्रकाशन का समय छायावाद का था। उन्होंने इस उपन्यास की भूमिका में 'कछुए और खरगोश' की प्रचलित कहानी का सहरा लेकर छायावादियों की अच्छी तरह से खबर ली है। उनके लघु उपन्यास 'कढ़ी में कोयला' की भूमिका में उपन्यास लिखने का उद्देश्य बताते हुए उन्होंने अपने अन्य उपन्यासों के विषय में चर्चा की है। 'जीजीजी' लघु उपन्यास के 'दीबाचा' में महिलाओं के संदर्भ में बात की गई है। इसमें उन्होंने दोनों को सहयोगात्मक रुख अपनाते हुए साथ-साथ रहने की बात काही है। इनके 'आवारा' नाटक की भूमिका, 'अपनी खबर' की भूमिका में भी उनकी अपनी शैली के दर्शन होते हैं। 'ग़ालिब-ए-उग्र' पुस्तक की भूमिका के संदर्भ में इसी इकाई में 'उर्दू साहित्य से संबंध' शीर्षक के अंतर्गत चर्चा की जाएगी।

(11) पत्र साहित्य- उग्र का पत्र साहित्य भी अत्यंत प्रचुर है। उन्होंने अपने मित्रों के साथ अपने समय की महान विभूतियों को जो पत्र लिखे हैं वे भी हास्य व्यंग्य लिए हुए हैं। 'उग्र' जी ने महादेव प्रसाद सेठ, माखनलाल चतुर्वेदी, शिवप्रसाद गुप्त, श्री कृष्णदत्त पालीवाल, श्री प्रकाश, सूर्य नारायण व्यास, हर्षदेव मालवीय, हरी शंकर शर्मा, हेमचन्द्र जोशी आदि के साथ पत्र व्यवहार किया था।

(12) आत्मकथा- 'उग्र' ने 'अपनी खबर' शीर्षक से अपनी आत्मकथा भी लिखी है। इसमें उन्होंने अपने जीवन के शुरुआती 20 वर्षों की बात की है। ये आत्मकथा काफी कम पृष्ठों में है। लेकिन इसकी मारक क्षमता काफी अधिक है। इस आत्मकथा में उन्होंने तत्कालीन सहयोगियों और अपने घर परिवार की बात की है। इसमें सत्यतः उन्होंने अपनी ही खबर ली है। इसमें 'उग्र' ने अपनी प्रशंसा नहीं बल्कि अपनी आलोचना की है। ऐसा बहुत कम आत्मकथाओं में देखने को मिलता है। यह एक बेबाक और आत्महंता आत्मकथा है। आगे आने वाली इकाई में हम 'उग्र' की आत्मकथा 'अपनी खबर' के विषय में जानेंगे।

(13) संपादन- 'उग्र' ने अपने जीवन में कई सम्पादन कार्य किए। हाँ यह अवश्य है कि अधिक समय तक कहीं जमकर नहीं बैठे। 'मतवाला' साप्ताहिक पत्र में हास्य और व्यंग्य लिए हुए 'उग्र' जी का लेखन होता है। 'भूत' नामक हास्य पत्र इनके सम्पादन में ही निकला। इनमें हिन्दू-मुस्लिम एकता, विभिन्न प्रथाओं, राष्ट्रीय संगठन, असहयोग आंदोलन व स्वाधीनता के विचारों

पर अपनी अद्‌भुत शैली में प्रकाश डाला है। जिस प्रकार 'सरस्वती' पत्रिका से आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी का नाम जुड़ा है। उसी तरह 'मतवाला' से 'उग्र' का नाम अमर है।

'विक्रम' मासिक का प्रकाशन विक्रम संवत दो हजार वर्ष की पूर्णाहुति की स्मृति में उज्जैन (मालवा) से 1942 में निकला था। 'उग्र' ने अप्रैल सन 1942 ई. से सितंबर, सन 1942 ई. तक 'विक्रम' के कुल पाँच अंक संपादित किए। उसमें 'बिंदु-बिंदु विचार' शीर्षक से अपने विचारों की गम्भीरतापूर्वक प्रकट किया।

भारत के आजाद हो जाने के बाद कुछ समय तक तो उग्र जी ने मिर्जापुर से ही 'मतवाला' का सम्पादन किया। फिर वे दिल्ली चले गए और वहाँ से 'हिंदी पंच' नामक पाक्षिक पत्र का सम्पादन प्रारंभ किया। इस पत्र के कुल चार अंक निकले। पाँचवा अंक प्रेस में ही रह गया। इसका प्रवेशांक पेशवा अंक महादेव प्रसाद सेठ की स्मृति में प्रकाशित किया गया। इसमें 'पंचायत' शीर्षक के अंतर्गत व्यंग्य लिखे गए थे।

पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' ने 'उग्र' शीर्षक से एक साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन शुरू किया था। बाद में यह समाचार पत्र दैनिक रूप से प्रकाशित होने लगा। इसके प्रथम अंक का प्रकाशन 3 जनवरी, 1963 ई. को हुआ था। 'उग्र' समाचारपत्र चार पृष्ठों का दैनिक पत्र था। इसमें प्रकाशित सामग्री अत्यंत उत्तेजक, चौकाने वाली और मार्मिक सत्य को उद्घाटित करने वाली होती थी।

(14) उर्दू साहित्य से संबंध

वर्तमान में अंतर्विषयक अध्ययन पर काफी ज़ोर दिया जा रहा है। इसको भारतीयता के स्तर पर भी देखा जा रहा है। जहाँ तक 'उग्र' जी की बात है तो उनके दो आदर्श रहे हैं- गोस्वामी तुलसीदास और मिर्ज़ा ग़ालिब। यह विदित है कि गोस्वामी तुलसीदास हिंदी के प्रमुख कवि हैं और मिर्ज़ा ग़ालिब उर्दू महत्वपूर्ण शायर हैं। उग्र जी अपने लेखन में जगह-जगह तुलसीदास और ग़ालिब की पंक्तियाँ उद्‌धृत करते हैं। जहाँ तक उग्र जी के उर्दू साहित्य से संबंध का सवाल है तो उन्होंने ग़ालिब की दीवान की टीका 'ग़ालिब-उग्र' शीर्षक से लिखी है। ग़ालिब को उन्होंने 'उस्ताद' शब्द से संबोधित किया है। 'उग्र' जी ने 'अपनी खबर' में उनके कई शेर उद्‌धृत किए हैं।

अगर हम 'ग़ालिब-ए-उग्र' की भूमिका देखें तो ग़ालिब के विषय में उग्र जी के विचार, उनकी सोच दिखती है। साथ ही साथ उनकी ग़ालिब प्रियता भी देखते ही बनती है। उन्होंने 'ग़ालिब-ए-उग्र' की भूमिका में 'अंजन' शीर्षक के अंतर्गत शेख मोहम्मद इब्राहिम 'ज़ौक' का शेर उद्‌धृत किया है। इससे उनकी उर्दू प्रियता व उर्दू साहित्य से संबंध और लगाव दिखता है। शेर देखें-

'इस जहल का है, 'ज़ौक', ठिकाना कुछ भी
दानिश ने दिया दिल को न दाना कुछ भी!
हम जानते थे? अक्ल से कुछ जानेंगे,
जाना तो यह जाना, कि न जाना कुछ भी!'

ग़ालिब और उनके दीवान को समझने के विषय में वे लिखते हैं- 'आज छाछठ बरस की वय तक पहुँच जाने पर भी, बंदा इस मारे ज्ञान से बराबर पड़े ही, दूर ही रहा-काले कोसों। उधर 'ग़ालिब' का दीवान समझने के पहले उर्दू ही नहीं फारसी का भी होना लाजिमी है इधर अपने राम हैं अरबी न फारसी-भरे बिल्कुल मियाँ बनारसी। फिर भी, दीवान-ए-ग़ालिब की यह व्याख्या बंदे की ही ली हुई है !!' ग़ालिब ने तो उर्दू में लिखा है और उनका रसमुल खत (लिपि) फारसी है। उसे हिंदी के रसमुल खत (लिपि) देवनागरी में लाने के लिए उग्र जी को काफी मेहनत करनी पड़ी। 'दीवान-ए-ग़ालिब को, कुछ नहीं तो, एक दर्जन बार मैंने नागरी अक्षरों में लिपिबद्ध एक-से-एक भावुक गुरुओं की कृपा से किया होगा। फिर बीसों बरस यह दीवान मेर मुँहलगा मित्र-जैसा रहा; बनारसी मगही पान की तरह; लालसा-ललित और बिना समझे भी विचित्र रससिद्ध कवीश्वर 'ग़ालिब' की गज़लों की माधुरी मैं पाता रहा-मन-मन भर, उसी तरह, जैसे मादरी के अलगोजे के स्वरों का स्वाद मनियर, विषधर पाता है।'

बोध प्रश्न

- उग्र जी की एक रचना का नाम बताइए जिसमें उन्होंने सामाजिक विसंगतियों पर खुलकर प्रहार किया है?

7.3.4 'उग्र' का दर्शन

'उग्र' पर मुख्यतः तुलसीदास और ग़ालिब का प्रभाव पड़ा था। जीवन में उग्र जी ने खूब मौज उड़ाई है। जुआ खेलना, शराब पीना, घूमना-फिरना आदि-आदि। संभवतः उन पर चार्वाक का भी प्रभाव पड़ा था। उनका दर्शन खाओ -पियो, मौज-उड़ाओ का प्रतिपादन करता है। उनके जीवन में यथार्थवादी दर्शन भी प्रभावी रहा है। अंततः वे गांभीर्य को धारण कर लेते हैं।

7.3.5 'उग्र' की भाषा और शैली

'उग्र' की भाषा की बात की जाए तो इनकी भाषा आम फ़हम या कहें हिन्दुस्तानी है। मिली जुली भाषा है। बहुत शुद्ध संस्कृतनिष्ठ शब्दावली का प्रयोग नहीं है। साहित्य में जिसके तुलसी और ग़ालिब आदर्श रहे हों - उसकी भाषा वैसी ही मिली जुली होगी। राजशेखर व्यास लिखते हैं 'विस्मय तो यह है कि उग्र के आरंभिक दौर में ठीक से शिक्षा भी न पा सकने वाले उग्र संस्कृत, उर्दू, अंग्रेजी, पालि, प्राकृत, मराठी, गुजराती, बांगला के भी मर्मज्ञ थे।' इसका एक प्रमुख कारण यह भी हो सकता है कि वे कलकत्ता, बनारस, बंबई , मालवा, उज्जैन आदि जगह रहे हैं। वहाँ की बोली भाषा को भी इन्होंने आत्मसात किया है इनकी भाषा उर्दू मिश्रित है। उनके यहाँ अंग्रेजी के शब्दों का भी प्रयोग किया गया है यथा- हाईड्रोजन, कार्बन, कंसंट्रेशन, कैम्प, एटम बम, पॉकेट, डायरी, पुलिस, सुपरिन्टेंडेंट आदि। उन्होंने कहावतों का भी प्रयोग किया है यथा - 'जीवन की रस्सी काटना', 'खस्सी जान से गया, कसाई को कोई ज़ायका ही नहीं मिला' आदि।

जहाँ तक शैली की बात है तो इनकी रचनाओं की अपनी एक अलग शैली है। उसे रामदरश मिश्र ने 'फक्कड़ शैली' कहा है। लेखन में व्यंग्यात्मक, भावात्मक शैली, आत्मकथात्मक

शैली, यथार्थवादी शैली, प्रकृतिवादी शैली, पारसी शैली आदि साफ तौर पर दिखती है। इन्होंने अपनी एक अलग शैली ही बना ली थी इसलिए कुछ आलोचकों ने सम्मानपूर्वक उसे 'उग्र शैली' नाम दे दिया है।

बोध प्रश्न

- उग्र जी की भाषा कैसी थी?

7.3.6 हिंदी साहित्य में उग्र का स्थान एवं महत्व

सामान्यतः उग्र जी को ठीक प्रकार से समझा नहीं गया। कोई सामान्य व्यक्ति इस तरह की बात करता है तो ठीक है लेकिन बड़े-बड़े आलोचकों ने इस तरह का रवैया अपनाया है तो देखकर दुख और आश्चर्य होता है। 'उग्र' जी की प्रवृत्ति और व्यवहार को दृष्टिगत रखते हुए मैथिलीशरण गुप्त लिखते हैं-

'धूल और गुलाल दोनों उग्र जी के हाथ
देखना है आज किसका भाग्य किसके साथ?'

बंगाल के क्रांतिकारी साहित्यकार शचीन्द्र सान्याल ने अपनी कृति 'बंदी जीवन' में युवक 'उग्र' का वर्णन किया गया है। एक बार किसी ने नलिन विलोचन शर्मा से व्यंग्यात्मक लहजे में पूछा था। 'अंग्रेजों के पास बर्नार्ड शा हैं, टूवेन हैं, बंगालियों के पास बंकिम हैं, परशुराम हैं, हिंदी वालों के पास क्या है? उन्होंने उत्तर दिया था 'हमारे पास उग्र है।'

उन्होंने तत्कालीन समय में जो विषय उठाया था। वह उस समय भले ही ठीक नहीं समझा जाता था लेकिन वह विषय आज स्वीकार्य है। उर्दू के लोगों को भी उग्र पर विचार करना चाहिए। वे एक साथ उपन्यासकार, नाटककार, कहानीकार, पत्रकार, संपादक, कवि समीक्षक, क्रांतिकारी और चिंतक थे। वे एक महान शैलीकार और विलक्षण क्रांतिकारी लेखक थे। उन्होंने अपनी खुद की एक शैली विकसित की थी जिसे 'उग्र शैली' के नाम से जाना जाता है। उनकी विशेषता पर निराला ने कहा था-

'उग्र की कुख्याति भी साहित्य में
एक दिन ख्याति बनकर चमकेगी।'

निराला जी की वह बात आज सच हो रही है। एक समय की उनकी कुख्याति आज ख्याति बनकर चमक रही है।

7.4 पाठ सार

प्रिय छात्रो! इस प्रकार हम देखते हैं कि पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' जी ने जन्म से लेकर मृत्यु तक संघर्ष ही किया। जन्म के बाद इनकी जान बचाने के लिए एक टोटका किया गया। इस प्रकार इनकी जान बची। उसी आधार पर इनका नाम 'बेचन' पड़ा। इनका पूरा बचपन अभावों में ही गुजरा। इसलिए ये अपने आपको शूद्र समझते हैं। शूद्रों के प्रति एक संवेदना भी रखते हैं। इनके जीवन में इनके बड़े भाई का बड़ा महत्व है। वे इन्हें मारते-पीटते थे लेकिन उनकी वजह से

ही इन्होंने कुछ लिखने-पढ़ने की प्रेरणा पाई। इन्होंने अपने बड़े भाई को अपना 'आदिगुरु' कहा है। ये जगह-जगह रामलीला खेलने भी जाते थे। इसी दौरान इन्हें जीवन के यथार्थ का पता चला। इनके जीवन में आने वाले महत्वपूर्ण व्यक्तियों में लाला भगवान 'दीन', बाबूराव विष्णु पराड़कर, शिव प्रसाद गुप्त, कमलापति त्रिपाठी आदि प्रमुख हैं। इन्होंने चुनार में जन्म लिया फिर बनारस, कलकत्ता, मुंबई, उज्जैन, मालवा, दिल्ली आदि स्थानों पर काम किया, वहाँ रहे। अंततः दिल्ली में ही इनकी मृत्यु हुई। इन्हें चुनार से बहुत मोहब्बत थी।

इन्होंने शुरूआती दौर में कविताएँ लिखीं। जो पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुआ करती थी। इन्होंने जेल की यात्रा भी की थी। इनका 'उग्र' नाम इनकी उग्रता के कारण बिल्कुल सटीक है। इन्होंने कविता के अलावा, कहानी, लघुकथा, उपन्यास, लघु उपन्यास, निबंध, संस्मरण, भूमिका, आत्मकथा आदि लिखे। इसके साथ-साथ इनका उर्दू साहित्य से गहरा संबंध रहा है। इन्होंने मिर्ज़ा ग़ालिब के दीवान की टीका 'ग़ालिब-ए-उग्र' नाम से लिखी। इनकी रचनाओं में भी बीच-बीच में उनके शेर मिलते हैं।

इनकी भाषा संस्कृतनिष्ठ हिंदी नहीं है। उसमें उर्दू, अंग्रेजी आदि के शब्द भी हैं। इन्होंने खुद अपनी एक शैली विकसित की थी जिसे 'उग्र शैली' के नाम से जाना जाता है। इनका दर्शन अंततः यथार्थवादी दर्शन है। दुनिया और जीवन की हकीकत बताने वाला है। यह दर्शन इनके साहित्य में भी नजर आता है। इनके साहित्य पर लोगों ने सही प्रकार से विचार नहीं किया। जिस विषय पर उन्होंने उस समय लिखा था आज वही विषय लेकर लिखने वाला प्रगतिशील और अति यथार्थवादी कहलाता है। इनके खिलाफ 'घासलेटी साहित्य आंदोलन' भी चलाया गया। इनकी कई रचनाएँ जब्त भी की गई थीं। जिस तरह से साहित्य में 'प्रसाद स्कूल' और 'प्रेमचंद स्कूल' है उसी तरह से एक तीसरा स्कूल 'उग्र स्कूल' भी है।

7.5 पाठ की उपलब्धियाँ

पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' के व्यक्तित्व और कृतित्व पर केंद्रित इस चर्चा से निम्नलिखित निष्कर्ष उपलब्ध हुए हैं-

1. पांडेय बेचन शर्मा के लेखन का तेवर आरंभ से ही आप उपनाम के अनुरूप उग्रता से युक्त दिखाई देता है।
2. भारतीय स्वाधीनता आंदोलन से जुड़ाव के कारण उग्र जी की रचनाओं में देशभक्ति की भावना इतनी प्रखर थी कि इनकी रचनाएँ शासन द्वारा ज़ब्त भी की गईं।
3. उग्र जी के स्वभाव और साहित्य दोनों ही में हास्य-व्यंग्य का समावेश उनके लेखन को व्यक्तित्व का दर्पण बनाता है।
4. उग्र जी की प्रतिभा से आतंकित आलोचकों ने जान-बूझकर उनका अवमूल्यन करने का प्रयास किया और उनके लेखन को 'घासलेटी साहित्य' तक कहा। लेकिन इससे उग्र जी के साहित्य का महत्व कम नहीं हुआ है।
5. कहानी और आत्मकथा के क्षेत्र में उग्र जी का लेखन अपनी विशिष्ट शैली के कारण बेजोड़ है।

7.6 शब्द संपदा

1. अलगोजे वाला = एक प्रकार की बाँसुरी, बच्चों का मुंह से हवा फूंककर बजाने एक बाजा
2. अष्टावक्र = जिसका शरीर आठ जगह से टेढ़ा हो
3. दीबाचा = भूमिका, आमुख, मुखबंध, प्रस्तावना, प्राक्कथन
4. प्रकृतिवादी शैली = एक सिद्धांत जिसमें यह मान लिया जाता है कि मनुष्य के सभी आचरण प्रकृति से पैदा होने वाली कामनाओं और प्रवृत्तियों पर निर्भर हैं। या जो सम्पूर्ण सृष्टि को प्रकृतिजन्य मानता है। उसमें दैवीय शक्ति शून्य है।
5. फक्कड़ = लापरवाह और निश्चिंत व्यक्ति, उच्छृंखल
6. मानवीकरण = मनुष्य बनाना, मनुष्य जैसा रूप देना, किसी जड़ या निर्जीव पदार्थ का मनुष्य की तरह व्यवहार करने लगना

7.7 परीक्षार्थ प्रश्न

खंड (अ)

दीर्घ श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 500 शब्दों में दीजिए-

1. पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' के नाम तथा उपनाम के विषय में बताइए।
2. 'उग्र' जी के लघु उपन्यास 'जीजीजी' और 'कढ़ी में कोयला' के विषय में बताइए।
3. मुंबई की फिल्मी दुनिया का सच 'उग्र' जी के संस्मरण 'सिनेमा- संसार और मैं' के आधार पर लिखिए।
4. 'उग्र' जी की रचना यात्रा पर प्रकाश डालिए।
5. हिंदी साहित्य में 'उग्र' के स्थान एवं महत्व को निरूपित कीजिए।

खंड (आ)

लघु श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 200 शब्दों में दीजिए-

1. 'उग्र' के व्यक्तित्व के संबंध में लिखिए।
2. 'उग्र' जी की भाषा और शैली पर प्रकाश डालिए।
3. 'उग्र' जी का उर्दू साहित्य से लगाव और इस संबंध में उनके द्वारा किए गए कार्यों के विषय में लिखिए।

खंड (स)

I. सही विकल्प चुनिए -

1. 'उग्र' जी का जन्म कहाँ हुआ था? ( )
   (अ) चुनार (आ) बनारस (इ) दिल्ली (ई) उज्जैन
2. 'उग्र' जी अपने मकान का क्या नाम रखना चाहते थे? ( )
   (अ) सेवासदन (आ) कब्रिस्तान (इ) श्मशान (ई) मातृकुंज

II. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए-

1. 'उग्र' जी की आत्मकथा का नाम.....है।
2. घासलेटी साहित्य आंदोलन .....ने चलाया था।
3. 'उग्र शैली' के प्रवर्तक ..... हैं।

III. सुमेल कीजिए-

1. उस्ताद	(अ) लघुकथा
2. 'उग्र' समाचार पत्र	(ब) 'उग्र' जी का जन्म स्थान
3. 'बुढ़ापा'	(स) ग़ालिब
4. चुनार	(द) पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र'
5. प्रार्थना	(इ) निबंध

7.8 पठनीय पुस्तकें

1. उग्र संचयन : सं. राजशेखर व्यास
2. हिंदी कहानी का विकास : मधुरेश
3. हिंदी उपन्यास - एक अंतर्यात्रा : रामदरश मिश्र

इकाई 8 : 'अपनी खबर' : समीक्षात्मक अध्ययन

रूपरेखा

8.1 प्रस्तावना
8.2 उद्देश्य
8.3 मूल पाठ : 'अपनी खबर' : समीक्षात्मक अध्ययन
8.3.1 अध्येय पाठांश
8.3.2 समीक्षा
8.4 पाठ सार
8.5 पाठ की उपलब्धियाँ
8.6 शब्द संपदा
8.7 परीक्षार्थ प्रश्न
8.8 पठनीय पुस्तकें

8.1 प्रस्तावना

आधुनिक भावबोध के कारण उपन्यास, संस्मरण, रेखाचित्र, रिपोर्ताज, यात्रावृत्तांत और डायरी की ही भाँति आत्मकथा साहित्य का भी उद्भव हुआ। डॉ. नामवर सिंह ने अपने एक व्याख्यान में कहा था कि "अपना लेने पर कोई चीज परायी नहीं रह जाती, बल्कि अपनी हो जाती है।" आधुनिक काल में पाश्चात्य संस्कृति से संवाद स्थापित होने पर हिंदी के रचनाकारों ने इन विधाओं को अपनाया और अपने जातीय संदर्भ से जोड़कर उन्हें विकसित किया। महात्मा गांधी कहते थे कि अपने चिंतन के दरवाजे और खिड़कियाँ खुली रखनी चाहिए, ताकि विश्व की विभिन्न संस्कृतियों की हवाएँ उसमें बेरोकटोक आएँ जाएँ, मगर यह ध्यान रहे कि उसी समय अपनी सांस्कृतिक परंपरा में हमारी जड़ें बहुत गहरी और मजबूत हो।

आत्मकथा स्वानुभूति का सबसे सशक्त माध्यम है। आत्मकथा के द्वारा लेखक अपने जीवन, परिवेश, महत्वपूर्ण घटनाओं, विचारधारा, निजी अनुभव, अपनी क्षमताओं और दुर्बलताओं तथा अपने समय की सामाजिक-राजनीतिक स्थितियों को पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करता है। इस इकाई में आप उग्र जी की आत्मकथा 'अपनी खबर' के चयनित अंश का अध्ययन करेंगे।

8.2 उद्देश्य

प्रिय छात्रो! इस इकाई के अध्ययन के बाद आप -

- पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' के बचपन के बारे में जान सकेंगे।
- बच्चे के मानसिक विकास पर पितृ प्रेम के अभाव के विपरीत असर को समझ सकेंगे।
- बच्चे के चरित्र निर्माण पर परिवेश के प्रभाव को समझ सकेंगे।

- आर्थिक परिस्थिति और बाल मनोविज्ञान का संबंध जान सकेंगे।
- शिक्षा के अभाव और बच्चे की आदतों का रिश्ता जान सकेंगे।
- क्रोध और जुए जैसी बुरी आदतों के घर-परिवार पर पड़ने वाले असर से अवगत हो सकेंगे।

8.3 मूल पाठ : 'अपनी खबर' : समीक्षात्मक अध्ययन

8.3.1 अध्येय पाठांश

अपनी ख़बर

मनकि बेचन पांडेय, वल्द बैजनाथ पांडेय, उम्र साठ साल, कौम बरहमन, पेशा अख़बार-नवीसी और अफ़साना-नवीसी, साकिन मुहल्ला सद्दूपुर चुनार, जिला मिर्जापुर (यू.पी.), हाल मुकाम कृष्णनगर, दिल्ली-31, आज जिंदगी के साथ साल सकुशल समाप्त हो जाने के उपलक्ष्य में उन्हें, जो कि मुझे कम या बेश जानते हैं, अपने जीवन के आरंभिक बीस बरसों की घटनाओं से कसमसाती कहानी सुनाना चाहता हूँ।

विक्रमीय संवत् के 1957 वें वर्ष के पौष शुक्ल अष्टमी की रात साढ़े आठ बजे मेरा जन्म यू.पी. के मिर्जापुर जिले की चुनार तहसील के सद्दूपुर नामक मुहल्ले में बैजनाथ पांडेय नामक कौशिक गोत्रोत्पन्न सरयूपारीण ब्राह्मण के घर पर हुआ। मेरी माता का नाम जयकली, जिसे बिगाड़कर लोग 'जयकल्ली' पुकारते थे, मेरे पिता तेजस्वी, सतोगुणी, वैष्णव-हृदय के थे। मेरी माता ब्राह्मणी होने के बावजूद परम उग्र, कराल-क्षत्राणी स्वभाव की थीं। मेरी एक दर्जन बहन-भाई थे जिनमें अधिकतर पैदा होते ही या साल-दो साल के होते-होते प्रभु के प्यारे हो गए थे। पहले भाइयों के नाम उमाचरण, देवीचरण, श्रीचरण, श्यामाचरण, रामाचरण आदि थे। इनमें अधिकतर बच्चे दग़ा दे गए थे। अत: मेरे जन्म पर कोई खास उत्साह नहीं प्रकट किया गया, शायद थाली भी न बजाई गई हो। नौबत और शहनाई तो दूर की बात, मैं भी कहीं दिवंगत अग्रजों की राह न लगूँ, अत: तय यह पाया कि पहले तो मेरी जन्मकुण्डली न बनाई जाए, साथ ही जन्मते ही मुझे बेच दिया जाए, सो, जन्मते ही मुझे यारों ने बेच डाला। और किस कीमत पर? महज़ टके पर एक! उसका भी गुड़ माँगकर मेरी माँ ने खा लिया था। अपने पल्ले उस पर टके में से एक छदाम नहीं पड़ा था, जो मेरे जीव का संपूर्ण दाम था। अलबत्ता 'जन्मजात बिका' का बिल्ला जैसा नाम तौक की तरह गले मढ़ा गया- बेचन! बेचन नाम ऐसा नहीं जिसे ओमप्रकाश की तरह भारत-प्रचलित कहा जाए। यह तो उत्तर भारत के पूरबी जिलों में चलने वाला नाम है, सो भी अहीरों, कोरियों, तथाकथित निम्न-वर्गीयों में प्रचलित, ब्राह्मण के घर में पैदा होने पर भी मुझे यह जो मंद नाम बख्शा गया उसकी बुनियाद में मेरी बहबूदी, जिन्दगी-दराज़ की कामना ही थी। किसी भी नाम से बेटा जिए तो! आज जीवन के 60वें साल में मैं साधिकार कह सकता हूँ कि मुझे ही नहीं, मौत को भी यह नाम नापसंद है। लेकिन, अब इस उम्र में तो ऐसा लगता है यह नाम नहीं, तिलस्मी गंडा है, जिसके आगे काल का हथकण्डा भी नहीं चल पा रहा है।

बोध प्रश्न

- उग्र जी का जन्म कब हुआ?

इस तरह मैं शिकायत नहीं करता- देखिए तो यहाँ मैं पैदा हुआ वह परिवार तो ग़रीब था ही, नाम भी मुझे जगन्नाथ, भुवनेश्वर, राजेश्वर, धनीराम, मनीराम, सूर्यनारायण, सुमित्रानंदन, सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन जैसा नहीं मिला। और गोया इससे भी मेरे दुर्भाग्य को संतोष नहीं हुआ तो मैंने अभी तुतलाना भी नहीं सीखा था कि पिता का स्वर्गवास हो गया। इसके बाद मैं अपने बड़े भाई के अण्डर में आया जो विवाहित थे और पिता के बाद घर के पालक थे। मेरे बड़े भाई ने विधि से कुछ भी पढ़ा नहीं था, फिर भी बुद्धि उनकी ऐसी तीव्र थी कि वह हिंदी तो बहुत ही अच्छी, साथ ही संस्कृत और बंगला भी खासी जानते थे, वैद्यक और ज्योतिष में भी टाँग अड़ाने की योग्यता रखते थे। वह समस्या-पूर्ति युग के कवि और गद्य-लेखक भी खासे थे। प्रूफ़-शोधन तथा पत्रकार-कला से भी उनका घनघोर संबंध था। मेरे यह बड़े भाई साहब जब जवान थे तभी सनातन धर्म के भाग्य में, परिवार-पद्धति के भाग्य में, सर्वनाश की भूमिका लिखी हुई थी। अतएव जाने-अनजाने युग के साथ भाई साहब को भी इस सर्वनाश नाटक में अपने हाथों पाँव में कुल्हाड़ी मारने का उन्मत्त पार्ट अदा करना पड़ा। हम नज़दीक थे, अत: भाई साहब का काम हमें अधिक दुखदायी एवं बुरा लगा। लगा, दुनिया में उन-जैसा बुरा कोई था ही नहीं। लेकिन ज़रा ही ध्यान से देखने से पता चल जाएगा कि मेरे घर में जो हो रहा था वह अकेले मेरे ही घर का नहीं, कमोबेश समाज के घर-घर का नाटक था।

और मैं उस गली की कहानी बतला दूँ जिसमें मैंने जन्म लिया था। सद्दूपुर मुहल्ले की एक गली- बँभन-टोली। गली के इस सिरे से उस सिरे तक ब्राह्मणों ही के मकान एक तरफ और दूसरी तरफ भी एक तेली तथा दो-तीन कोरियों के घरों को छोड़ बाकी ज़मीनें ब्राह्मणों की, दो-तीन घरों को छोड़ बाकी सभी ब्राह्मण खाते-पीते खासे, एकाध तो पूँजीवाले भी, दक्खिनी नाके पर भानुप्रताप तिवारी, जिनके बड़े-बड़े दो-दो मकान, फिर गरीब मुसई पाठक, फिर मेरे पिता की योग-क्षेम गृहस्थी, चर्चा भी हमीं जैसे लेकिन वैद्य होने से उनके हाथ में कल्पवृक्ष की डाल-जैसी अलौकिक विभूति हमेशा ही रही, जिससे वह प्रभाव वाले और अभावहीन थे। इसके बाद हमारे पट्टीदार भाई विंध्येश्वरी पाँडे का परिश्रमी, प्रसन्न परिवार, फिर ब्रह्मा मिश्र की हवेली, जयमंगल त्रिपाठी का घर और अंत में बेचु पाँडे का सहन, एक भानुप्रताप तिवारी को छोड़ बाकी सभी ब्राह्मण जजमानी वृत्ति वाले थे, हवेली वाले ब्रह्मा मिश्र की जजमानी सबसे ज्यादाथी। बाग-बगीचे, खेती-बाड़ी, लेन-देन भी होता था। बेचू पाँडे उनके आधे के भागीदार थे। हम लोगों की जजमानी यूँ ही जयसीताराम थी। कहिए हम शानदार भिखारी थे। भिखारी सड़क पर कपड़े फैला या गलियों में हाथ पसारकर भीख माँगता है, लेकिन हमें ग़रीब और ब्राह्मण जानकर लोग हमारे घर भीख पहुँचा जाते थे। यह भीख भी शानदार थी, तब तक जब तक ब्राह्मणों के घर में ब्राह्मण पैदा होते थे, लेकिन जब ब्राह्मणों के घर में ब्रह्मराक्षस पैदा होने लगे तब तो यह जजमानी वृत्ति नितांत कमीना धंधा-स्वयं नीचातिनीच होकर भी दूसरों से चरण पुजवाना रह गई थी। यह कथा आज से 55 वर्ष पूर्व तक की है। तभी तथाकथित सनातन धर्म के

नाश का आरंभ उसी के अनुगामियों-धर्म के ठेकेदार ब्राह्मणों द्वारा हो चुका था। मानो तो देव नहीं पत्थर! धर्म विश्वास पर पनपता है। जिस जनरेशन में मेरे बड़े भाई साहब पैदा हुए थे उसका विश्वास धर्म से उठ रहा था। मुहल्ले के हरेक घर में एक-न-एक ऐसा जवान पैदा हो चुका था जो पुरानी मर्यादाओं और धर्म को ताक पर रखकर उच्छृंखल आचरण में रत रहा करता था और घर वाले मारे मोह के परिवार के उस प्राणी का विरोध करने में असमर्थ थे। शास्त्रों में विधान है कि कुल-धर्म-विरुद्ध आचरण करने वाले को सड़ी अँगुली की तरह काटकर समाज-तन से अलग कर देना चाहिए। हम जब तक ऐसा करते रहे तब तक समाज का स्वास्थ्य चुस्त-दुरुस्त था।

बोध प्रश्न

- उग्र जी जजमानी वृत्ति को क्या मानते हैं?
- समाज का स्वास्थ्य कब तक था?

इस पूर्णता से कि वह सनातन धर्म तो अब पुन: जागने जीने वाला नहीं जिसके सरगना ब्राह्मण लोग थे। ब्राह्मण-कुल में मैं भी पैदा हुआ हूँ। कोई पूछ सकता है कि सनातन धर्म या ब्राह्मण धर्म के इस विनाश पर मेरी क्या राय है। मेरी क्या राय हो सकती है? मैं कोई व्यावसायिक 'राय' साहिब नहीं, जो वस्तु नष्ट होने योग्य होती है, जिसकी उपयोगिता सर्वथा समाप्त हो जाती है, वही नष्ट होती है, उसी का अंत होता है, रहा मेरा ब्राह्मण कुल में पैदा होना, सो उसे मैं नियति की भूल मानता हूँ। जब से पैदा हुआ तब से आज तक शूद्र-का-शूद्र हूँ। 'जन्मना जायते शूद्र', मनु का वाक्य है कि नहीं- 'संस्कारात् द्विजमुच्यते।' जन्म से सभी शूद्र होते हैं, बाद के संस्कार द्वारा नव-प्रज्ञा प्राप्त कर द्विज बनते हैं। वह संस्कार पांडेय बेचन शर्मा के पल्ले न तो बचपन में पड़ा था, न जवानी में और न आज तक। अब इस साठ वर्ष की वय में यदि मैं शिकायत करूँ कि हाय रे, मैं सारे जीवन शूद्र-का-शूद्र ही रहा तो मुझ-सा मतिमन्द टॉर्च लाइट लेकर ढूँढने पर भी दुनिया में नहीं मिलेगा। सो, जैसे मैं स्वयं को बुरा नहीं मानता, वैसे ही शूद्र को भी नहीं मानता। मैं जैसे स्वयं को भला ही समझता हूँ, वैसे ही शूद्र को भी भला ही समझता हूँ। शूद्र द्विज (या ब्राह्मण) का पूर्व-रूप है, वैसे ही जैसे मूर्ति का पूर्व रूप अनगढ़ पत्थर। और मैं अपनी अनगढ़ता को गर्व से देखता हूँ। इसलिए कि जब तक अनगढ़ हूँ तभी तक विश्वविराट् की मूर्तियों की संभावनाएँ मुझमें सुरक्षित हैं, गढ़ा गया नहीं कि एक रूपता, जड़ता गले पड़ी। श्रीकृष्ण की मूर्ति का पत्थर श्रीकृष्ण ही की मूर्तिभावना का प्रतीक रह जाता है। उसे राधा बनाना असंभव है। सो, लो! मैं ऐसा अनगढ़ पत्थर जिसमें रूप नहीं, रेखा नहीं, और न ही विकट-विकट भविष्य में कुछ बनता-बनाता ही दिखाई देता है। फिर भी मैं परम संतुष्ट इस कल्पना-मात्र से कि मुझे कोई एक बड़ा-से-बड़ा रूप नहीं मिला तो बला से मेरी, मैं अपनी अनगढ़ता से ही खुश हूँ। यह अनगढ़ता जब तक है तब तक कोई भी पानी सभी रूप मुझमें है। खैर, इन बातों क्या धरा है! मैं यह कहना चाहता था कि आज भी, मैं निस्संकोच शूद्र हूँ और ब्राह्मणों के घर में पैदा होने के सबब-साधारण नहीं- असाधारण शूद्र हूँ। ब्राह्मण-ब्राह्मणी से मुझे शूद्र-शूद्राणी अधिक आकर्षक, अपने अंग के मालूम पड़ते हैं। यहाँ तक कि आज भी जब मैं

खानाबदोशों, बंजारों, जिप्सियों का गंदगी, जवानी, जादू और मूर्खता से भरा गिरोह देखता हूँ तब मेरा मन करता है कि ललककर उन्हीं में लीन हो जाऊँ, विलीन। उन्हें के साथ आवारा घूमूँ-फिरूँ, किसी हरजाई, आवारा, बंजारन युवती के मादक मोह में- नगर-नगर, शहर-शहर, दर-दर-छुरी, छुरे, मूँगे, कस्तूरी मग के नाफ़े, शिलाजीत बेचता।

बोध प्रश्न

- उग्र जी अनगढ़ता को गर्व से क्यों देखते हैं?

मेरा ख्याल है अक्षरारम्भ से पहले ही मेरे कान में 'वेश्या' या 'रण्डी' शब्द पड़ चुका था। मैं पाँच-ही-छह साल का रहा होऊँगा जब मेरे घर में मिर्जापुर की एक टकैल वेश्या का प्रवेश हुआ था। पुरुष वेश में चूड़ीदार चपकन और पगड़ी पहनकर वह बाहरवाली कोठरी में रात में आई और तब तक रही जब तक मेरे चाचाजी हाथ में खड़ाऊँ लेकर उसे मारने को झपटे नहीं-यथायोग्य दुर्वचन सुनाते हुए। मुहल्ले के आधे दर्जन मनचले ब्राह्मण युवक उस वेश्या से मिलने मेरे यहाँ आ जमते थे। मकान के अंदर की ब्राह्मणियाँ मेरी माँ और भाभी किंकर्तव्यविमूढ़ा हो गई थीं। भाभी तो रोने भी लगी थी। पर ये कुलीन औरतें मुखर विरोध करने में असमर्थ थीं, इसलिए कि मेरे उन्मत्त भाई साहब एक ही लाठी से दोनों ही को हाँकने में कोई ग्लानि या हानि नहीं समझते थे। वैसे वह मंद जमावड़ा मेरे घर हुआ था, लेकिन हमप्याले लोग पड़ोसी ही थे नेता (यानी मेरे पिता) के उठ जाने से मेरे घर में अखण्ड अराजकता थी। लेकिन वश चलता और मजबूत सरपरस्तों का शासन न होता, तो दूसरे यार भी अपने घरों में वेश्या को टिकाकर सुरा-सुंदरी-स्वाद लेने से बाज नहीं आते। पाप पर मोहित सभी थे। सभी थे तत्वत: धर्म से विरहित। जुआ तो प्राय: मुहल्ले के किसी भी घर में खिलाया जाता था, जिससे उस घर के किसी-न-किसी प्राणी को नाल के रूप में एक-दो रुपये भी मिल जाते थे। मेरे घर में जुआ अक्सर हुआ करता, अक्सर जुए से जब नाल की रकम वसूल होती तब मेरे घर में भोजन की व्यवस्था होती थी, आटा, चावल, दाल और नमक आता था।

मेरी माँ और भाभी को मकान के पिछले खण्ड में कैद कर मेरा भाई बिचले खण्ड में जुए का फड़ डालता, जिसमें मुहल्ले, कस्बा और आसपास के गाँवों के भी शातिर जुआरी जुड़ते। चरस और गाँजे की चिलमें लपलपाती, ब्यौड़ा यानी विकट देसी दारू की दुर्गंधमयी बोतलें खुलतीं। जब भी मेरे घर में जुआ जमता, भाई की आज्ञा से दरवाजे पर बैठकर मैं गली के दोनों नाके ताड़ता रहता कि पुलिस वाले तो नहीं आ रहे हैं। जरूर इस ड्यूटी के बदले पैसा-दो पैसा मुझे भी किसी परिचित जुआरी से मिलता रहा होगा। जुए की इस ज़बरदस्त जकड़ में मेरा भाई इस कदर पड़ गया था कि भाभी के सारे गहने बिक गए या अंत में बिक जाने के लिए गिरवी रख दिए गए। फिर मेरी माँ के गहनों की बारी आई। जिसने अपना संचय सौंपने में जरा भी हिचक दिखलाई उसे भाई साहब ने जूतों, थप्पड़ों, घूसों, लातों से घूरा-अक्सर गाँजा-चरस या शराब के नशे में। यों तो भाई मुझे भी मारता-पीटता था, बेसबब, बहुत बुरी तरह, अक्सर लेकिन वह जब मेरी माँ को मारता और वह अनाथा विवशा रोती-घिघियाती (लड़का अपना ही था, अत: खुलकर रो-घिघिया भी नहीं सकती थी) तब भाई का आचरण मुझे बहुत ही बुरा

मालूम पड़ता था। पर मैं कर ही क्या सकता था! चार-पाँच साल का बालक! उसके सिर पर घर की सरदारी पगड़ी बाँधी गई थी। परिवार का नेता था वह। अन्नदाता था वह। सो, मेरी भाभी-आई के गहने जब जुआ-यज्ञ में स्वाहा हो गए तब घर के बरतन-भाँडों की शामत आई। जितने भी काम या दाम लायक बरतन थे, या तो अड़ोसी-पड़ोसी के घर गिरों धरे गए या पाँच रुपये की वस्तु रुपया-दो रुपया में बरबाद की गई। इसके बाद ब्राह्मण के घर में जो दो-चार धर्म ग्रंथ थे- भागवत, गरुड़पुराण, रामायण, गीता- मेरे भाई ने एक-एक को दोनों हाथों से बेचकर प्राप्त रकम को या तो जुआ में अथवा गाँजा-चरस के धुआँ में उड़ा दिया। इसके बाद दो-चार बीघे दान-दक्षिणा में मिले जो खेत थे उनकी नौबत आई। खेतों को भी बंधक या भोगबंधक रखकर भाई सहाब ने रुपये उतारे और उनका दुरुपयोग निस्संकोच भाव से किया। और कर्ज और फर्ज! भाई के राज में परिवार ने जब जो भी पाया खाया कर्जा।

बोध प्रश्न

- भाई का कौन-सा व्यवहार उग्र जी को पसंद नहीं था?

उन्हीं दिनों, एक दिन, छापा मारकर चुनार की पुलिस ने सद्दूपुर मुहल्ले के जुआरियों और उनके संगियों को रंगे हाथ गिरफ्तार कर लिया था। जुआ उस दिन मेरे घर में नहीं, मेरे घर के पिछवाड़े अलगू नामक कुम्हार के घर में हो रहा था। उस दिन मेरे भाई साहब जुए में शामिल नहीं थे। एक दोस्त की बैठक में उपन्यास पढ़ रहे थे। लेकिन पुलिस छापे के ठीक पहले अलगू के घर वह सूचना देने गए थे कहीं से खबर-सुराग पाकर कि भागो, पुलिस आ रही है, कि पुलिस वाले आ ही धमके! शायद सबसे पहले मेरे भाई साहब ही पुलिस की पकड़ में आए थे। गिरफ्तार दर्जन-भर जुआरी हुए होंगे। फिर भी, कई जान लेकर जूते छोड़कर भाग गए, उन जूतों की लंबी माला अलगू कुम्हार से ही तैयार कराने के बाद उसी के गले में डालकर, जुलूस बनाकर जब पुलिस वाले राजपथ से जुआरियों को हवालात की तरफ ले चले तो बंधुओं में मेरा भाई भी था। उस भयकारी जुलूस के पीछे काफी दूर तक अपने भाई या अन्नदाता के लिए रोता हुआ मैं भी गया था। फिर घर लौटने पर देखा आई और भाभी रो रही थीं। काफी दिनों मिर्जापुर में केस चलने के बाद उस मामले में भाई को पचास रुपए जुमाना हुआ। और चुनार में रहने का अब कोई तरीका बच नहीं रहा, और कर्जदाताओं से बेइज्जत होने का प्रसंग पगे-पगे प्रस्तुत होने लगा। और घर में अबलाएँ और बच्चे दाने-दाने के मोहताज हो गए। तब और तभी मेरे बड़े भाई को देश छोड़ परदेश जाने और कमाने की सूझी। फलत: वह पहले काशी और बाद में अयोध्या की रामलीला मंडलियों में एक्टिंग करने लगे। तनख़ाह पाते थे दोनों वक्त फ्री भोजन और तीस रुपये मासिक। इन रुपयों में से दस-पाँच अक्सर वह चुनार भी भेजते थे। पर चुनार में अक्सर चूहे डंड ही पेला करते थे, या जजमानी से भिक्षा मिल जाती थी, या मेरी आई किसी की मजूरी कर कूट-पीसकर लाती थी। बड़ी मुश्किलों से सुबह खाना मिलता तो शाम को नहीं, शाम मिलता तो सबेरे नहीं, जहाँ भोजन-वस्त्र के लाले वहाँ शिक्षा-दीक्षा की क्या हालत रही होगी, सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। शिक्षा-दीक्षा दूर, मेरे सामने तो आँखें खोलते ही जीवन-ग्रंथ का जो पृष्ठ पड़ा वह शिक्षा-दीक्षा को चौपट करने वाला था। जीवन को स्वर्ग और नरक

दोनों ही का सम्मिश्रण कहा जाए तो मैंने नरक के आकर्षक सिर से जीवन-दर्शन आरंभ किया और बहुत देर, बहुत दूर, तक उसी राह चलता रहा। इस बीच में स्वर्ग की केवल सुनता ही रहा मैं। मेरी कोशिश सही न होगी, स्वर्ग जीवन में मुझे कहीं नजर आया नहीं, और नरक की तलाश में किसी भी दिशा में दूर तक नजर भटकाने की जरूरत ही नहीं पड़ी। सो, समय पर न मिले तो स्वर्ग के लिए भी कौन प्रतीक्षा करे! नरक लाख बुरा बदनाम हो, लेकिन अपना तो जीवन-संगी बन चुका है, सहज हो गया है, रास आ गया है, डालडा खाते-खाते जैसे शुद्ध घृत की सुध-बुध भी समाप्त हो जाती है। पहचान-परख तक भूल जाती है, वैसे ही लगातार सुलभ होने से नरक भी धीरे-धीरे परिचित, प्रिय, प्रियवर यानी प्रियतम हो जाता है। ग़ालिब ने अपने ढंग से कहा है- "क्यों न फिरदौस को दोज़ख से मिला दें या रब! सैर के वास्ते थोड़ी-सी फिजा और सही।" जब मेरे पिता जीवित थे तभी न जाने कैसे मेरे दोनों बड़े भाइयों को रामलीला में पार्ट करने का चस्का लग गया था। ये किशोरावस्था ही में ऐसे बेकहे हो गए थे कि कुल और पिता को धता बताकर चुनार से मिर्जापुर भागकर रामलीला में राम-लक्ष्मण का अभिनय करने लगे। क्रोध और भविष्य के भय से काँपते हुए पिता, जब मिर्जापुर पहुँचे तो क्या देखते हैं कि दोनों सपूत राम-लक्ष्मण बने रंगमंच पर शोभायमान हैं। कहते हैं वह दृश्य पिता से देखा न गया। जनता को भूल, स्टेज पर झपट लौंडों के माथे से मुकुट-किरीटादि नोच-फेंक वहीं से उन्हें झपड़ियाते भूले बछड़ों की तरह बाँधकर चुनार ले आए थे। पिता के देहांत के बाद चुनार की विजयदशमी वाली लीला में, अक्सर वह कोई-न-कोई पार्ट ही 'प्ले' किया करते थे। चुनार ही में एक-दो बार सीता बनाकर मुझे भी बड़े भाई ने इस घाट पर उतार रखा था। जब वह अयोध्या की रामलीला-मंडली में थे तब मुझे उन्होंने बनारस की एक लीला-मंडली में अपने किसी खत्री मित्र के हवाले कर रखा था। तब मैं आठ साल का रहा होऊँगा या नौ का। जुल्फों में तीन-तीन फूल-चिड़ी बनाता था। काफी तेल लगाने के बाद बालों में सस्ती वेसलिन भी लगाता था। वह वेसलिन, जिसकी गंध पिला हाउस (बम्बई) या सरकटा गली (कलकत्ता) की सस्ती वेश्याओं के अंग से आती है। कुछ ही दिनों बाद भाई साहब ने बनारस वालों की मंडली से मुझे भी साधुओं की रामलीला मंडली में बुला लिया था। भाई साहब की नज़र में मेरे उनके संग रहने में अनेक फायदे थे। पहले तो घर में कोई शरारती नहीं रहेगा, दूसरे उनकी निगरानी में रामलीला वालों की बुरी हवा से मैं बचूँगा, तीसरे 'ब्वॉय सरवेंट' चौबीस घण्टे हाज़िर-बिला तनख़ाह, ऊपर से रामलीला में लक्ष्मण और जानकी बनकर आठ-दस रुपये मासिक कमा देने वाला, उन दिनों रामलीला के निश्चित पार्टों के संवाद बाज़बान करने के अलावा भाई का एक मित्र वैरागी पखावजी मुझे ताल और स्वर यानी पक्के रंग के संगीत की शिक्षा भी दिया करता था। उन्हीं दिनों नाचना नहीं, तो नाचने की चुस्ती से चंचल चरण चलाना, ठुमुकना, थिरकना, बल खाना वगैरह भी मुझे सिखलाया गया था। छुटपन में मेरी शिक्षा बिल्कुल आरंभिक क ख ग दरजों तक हुई थी। अभी थोड़ा ही बहुत अक्षर-शब्द-ज्ञान हो पाया था कि मुझे ऐसा लगा कि यह पढ़ना-पढ़ाना मेरे बलबूते की बात नहीं है। मगर इससे गला छूटे तो कैसे? सुना था हनुमानचालीसा का पाठ करने से सारे दु:ख दूर, मसले स्वयमेव हल हो जाते हैं, लेकिन हनुमानचालीसा मेरे पास कहाँ! साथ ही पास में 'पीसा' कहाँ कि हनुमानचालीस खरीदा जा सके! मैं जिस दरजे में पढ़ता था उसी में एक काला-सा लड़का था

किसी छोटी जाति का। वह अपने बस्ते में रोज़ हनुमानचालीसा की एक प्रति ले आता था और मैं ललचाकर, तड़पकर रह जाता था। उस दो पैसे की विख्यात पुस्तक के लिए अंत में मैंने चोरी करने का निश्चय किया। मैं ऊँच लड़का, वह नीच, लेकिन मैंने उसकी हनुमानचालीसा चुरा ली और बड़े चाव से मैं उसका पाठ करने लगा। मुझमें जो ब्राह्मण है वह आज भी यही सोचता है कि वह हनुमानचालीस ही का प्रभाव था कि स्कूली शिक्षा से हटाकर मुझे रामलीला मंडली में डटाया गया। वहाँ पर मेरा परिचय श्रीरामचरितमानस से होना ही था, क्योंकि मैं जानकी, लक्ष्मण और भरत तक का पार्ट किया करता था। रामलीला-मण्डलियों ही में मैंने सुलझे साधुओं के व्रत और निष्ठापूर्वक नवरात्रियों के नौ दिनों में रामायण का पाठ होते देखा, सुना। ऐसे पाठ के फल अंतत: सो, मैंने नौ-दस-ग्यारह की वय में सामर्थ्यानुसार श्रद्धा-भक्ति से रामायण के नवाहू पाठ किए। एक नहीं, अनेक। इन लीला-धारियों की मंडली में फुरसत के अवसरों में लोग अन्त्याक्षरी-सम्मेलन भी अक्सर किया करते थे, जिनमें ज्यादातर तुलसीकृत रामायण से ही उदाहरण दिए जाते थे। इन सम्मेलनों से भी मुझे रामायण का स्पर्श अधिकाधिक होने लगा था। उन दिनों रामायण के विविध अंश मेरे कंठाग्र, जिह्वाग्र, रहा करते थे और उन दिनों रामलीला में अभिनेता संवाद कहते रहते थे? पहले रामायणी चौपाई या दोहा अर्ध-स्वर में सुनाता, फिर अभिनेता उसका (रटा या ज्ञात) अर्थ जनता को सुना देता था। रामायणी कहता- देवि, पूजि पद-कमल तुम्हारे, सुर-नर-मुनि सब होहिं सुखारे, तब सीता जी कहतीं- हे देवि! तुम्हारे सर्व-पूज्य पद कमलों को पूज-पूजकर सुर, नर और मुनि सभी सुख पाते हैं। संवाद की इस विधि में अक्सर अभिनय और उसके प्रभाव का खून हो जाता था। पर जो जनता लीला देखने आती थी वह रामलीला को थिएटर न समझ किसी भी भाव, भाषा या भेष में भगवान-भगवती की भावना मात्र से प्रभावित होने वाली होती थी। एक बार कहीं भरत का पार्ट करने वाला हमारा संगी बीमार पड़ गया। अब मुश्किल यह सामने आई कि भरत का कठोर काम करे तो कौन? इस पर मेरे बड़े भाई ने मंडली के मालिक महंत को वचन दिया कि वह चिंता न करें। भरत का काम बेचन कर लेगा। मुझसे उन्होंने गाँजे के नशे में चूर आँखें दिखाकर कहा- भरत के काम में ज़रा भी भूल की तो याद रहे, लीला-भूमि से ही पीटते-पीटते तुझे डेरे पर ले चलूँगा। उनसे पिटने का मुझे इतना डर था कि भरत तो भरत, वह धमकाता तो मैं कमसिनी भूल दशरथ का पार्ट भी अदा करके रख देता। रावण का भी! उस दिन राम के वन-गमन के बाद ननिहाल से बेहाल लौटे भावुक भाई भरत का संवाद था कौशल्या के आगे। वशिष्ठ की सभा में परम साधु बड़े भाई के मोह में भरत को रोते चित्रित किया है तुलसीदास जी ने। मुझे रोना आया था बड़े भाई के क्रूर भय से, और मैंने बहुत सावधानी से भरत का अभिनय किया। रामायण मुझे याद ही थी, सो बिना रामायणी का मुख देखे संवाद की चौपाई-पर-चौपाई, दोहे-पर-दोहा अर्थ सहित मैं सुनाता गया। मैं रोता था भाई के भय से, जनता ने समझा भरत जी अभिनय-कला का शिखर छू रहे हैं। खूब ही जमा मेरा काम! महंतजी प्रसन्न हो गए और स्टेज ही पर दस रुपए इनाम, तथा एक रुपया महीना तनख़ाह बढ़ने की घोषणा हुई। बधाइयाँ और इनाम के रुपये भाई साहब के पल्ले लगे। पाँव तो उस दिन भी मैं भाई साहब के दाबता रहा तब तक जब तक वह सो नहीं गए- हाँ

उस दिन उन्होंने नित्य की तरह, पाँव दबवाते-दबवाते दो-चार लातें नहीं लगाई कि मैं ठीक से क्यों नहीं दबाता? कि मैं झपकियाँ क्यों लेता हूँ?

बोध प्रश्न

- उग्र जी ने हनुमान चालीसा की प्रति क्यों चोरी की थी?

8.3.2 समीक्षा

आत्मकथा हिंदी साहित्य की नूतन विधओं में से एक है। पश्चिम के प्रभाव से यह विधा भी हिंदी में पल्लवित हुई। स्वयं के द्वारा लिखी अपनी जीवन की कहानी 'आत्मकथा' कहलाती है। दूसरे शब्दों में कहें तो जब कोई व्यक्ति कलात्मक, साहित्यिक ढंग से अपनी जीवनी स्वयं लिखता है तब उसे आत्मकथा कह सकते हैं। लेखक अपने जीवन में घटित घटनाओं का क्रमिक ढंग से वर्णन कर, उन्हें सजीवता प्रदान करता है।

आत्मकथा से अतीत के चित्रण के साथ परिवेश की अभिव्यक्ति होती है। जो क्षण वह जी चुका है, उसका पुन: सृजन वह आत्मकथा के माध्यम से करता है। यहाँ लेखक स्रष्टा भी होता है और सामग्री भी। उसे साधन और साध्य दोनों कहा जा सकता है। ऐसे हालात में कभी सृजक कथ्य पर तो कभी कथ्य सृजक पर हावी हो जाता है।

जीवन यात्रा में प्राप्त हुए अपने अनुभवों को दूसरों के समक्ष रखना मानवीय प्रवत्ति है। इस स्वाभाविक प्रवृत्ति के अतिरिक्त और अनेक कारण होते हैं जिनकी वजह से आत्मकथा लिखी जाती है। मनुष्य चाहता है कि उसके अनुभवों से अन्य लोग लाभ उठाएँ। आत्मकथाकार के लिए अपने चरित्र का उद्घाटन और विश्लेषण करना बहुत कठिन होता है। गुण-निरूपण से आत्म प्रशंसक होने का खतरा होता है, तो दोष दर्शाने से यह भय होता है कि लोग उसे बुरा समझेंगे। आत्मकथा में वैयक्तिक जीवन का उल्लेख होता है। यह जरूरी नहीं कि लेखक अपने जीवन की संपूर्ण घटनाओं का वर्णन करे। आत्मकथा में अतीत और वर्तमान का गहरा संबंध है।

बोध प्रश्न

- आत्मकथाकार को अपने चरित्र का उद्घाटन करना क्यों कठिन होता है?

लेखक जीवन मूल्यों के संबंध में आत्मकथा के माध्यम से विशिष्ट व्याख्या भी प्रस्तुत करता है। उससे उसके व्यक्तित्व और चरित्र का पता चलता है। उग्र जी ने 'अपनी खबर' शीर्षक से आत्मकथा प्रस्तुत करने के साहस किया। विक्रम संवत के 1957वें वर्ष के पौष शुक्ल अष्टमी की रात साढ़े आठ बजे पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' का जन्म यू.पी. के मिर्जापुर जिले के चुनार तहसील के सद्दूपुर नामक मुहल्ले में हुआ। आपके पिता का नाम बैजनाथ पांडेय और माता का नाम जयकली था। आपका जन्म एक सरयुपारीण ब्राह्मण परिवार में हुआ। उग्र के पिता तेजस्वी वैष्णव हृदय के थे किंतु माता ब्राह्मणी होने के बाजवूद उग्र एवं क्षत्राणी स्वभाव की थी। आपके बहुत से भाई बहन पैदा हुए किंतु अधिकतर पैदा होते ही भगवान को प्यारे हो गए। अंत में उग्र का जन्म हुआ। सर्वप्रथम तो उन्हें बेच दिया गया और उस पैसे का गुड़ मँगाकर उनकी माँ ने खा लिया इसी कारण से उग्र का नाम 'बेचन शर्मा उग्र' पड़ा।

उग्र एक गरीब परिवार में पैदा हुए। इनके जन्म के कुछ दिन बाद ही उनके पिता का स्वर्गवास हो गया। पिता की मृत्यु के बाद वे अपने बड़े भाई की निगरानी में रहने लगे। उनके भाई पढ़े लिखे नहीं थे किंतु बुद्धि के बड़े तेज थे। उग्र एक ब्राह्मण परिवार से थे। इनका घर भी ब्राह्मणों के मोहल्ले में था। इनके घर की आर्थिक स्थिति बहुत ही खराब थी इसलिए बहुत से लोग गरीब और ब्राह्मण जानकर उनके घर भीख पहुँचा जाते थे।

उग्र की आत्मकथा में जाति प्रथा की भी निंदा की गई है। इनका कहना है कि उच्च और निम्न जाति में भेद करना सही नहीं है। प्रारंभ में सभी नीच कुल से ही उत्पन्न होते हैं। आर्थिक विपन्नता के कारण उग्र आगे की शिक्षा पूरी नहीं कर सके। उनके भाई साहब के कारण घर का माहौल कुछ अलग तरह का ही रहता था। उग्र के घर में हमेशा उनके भाई के कारण जुए का खेल होता था। पिता के नहीं रहने के कारण वेश्या को भी घर में रखा गया था। उनकी माता और भाभी यह सब देखकर बहुत दुखी होती। जुए की बुरी लत के कारण उनके भाई ने अपनी पत्नी तथा माता के गहने तक बेच डाले। अंत में घर के बर्तनों की बारी आई वे भी बिक गए अकसर ये शराब और गाँजे के नशे में होते थे। एक बार पुलिस ने छापा मारा और सारे जुआरियेां को पकड़ लिया और हवालात में बंद कर दिया। बहुत दिनों के बाद पचास रुपये के जुर्माना पर भाई साहब छूटे।

बोध प्रश्न

- जाति के संबंध में उग्र जी की क्या मान्यता है?
- उग्र आगे की शिक्षा क्यों पूरी नहीं कर पाए?

उग्र और उनके भाई रामलीला मंडलियों में एक्टिंग करने लगे। इस कारण से कुछ पैसा आने लगा। रामलीला मंडली में भी उग्र के बड़े भाई उग्र पर खूब रौब जमाते थे। उन्हें अक्सर जानकी लक्ष्मण और भरत का पार्ट रामलीला मंडली में करने को दिया जाता था। उग्र की औपचारिक स्कूली शिक्षा नहीं हुई थी। उन्होंने पढ़ना लिखना भी रामलीला में ही सीखा। दोनों भाइयों के रामलीला में काम करने से उनकी आर्थिक दशा में कुछ सुधार आया। उनके बड़े भाई साहब कुछ पैसा घर भी भेजा करते थे। पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' अपने जिंदगी के साठ साल सकुशल गुजार लेने के बाद अपने जीवन के आरंभिक बीस वर्ष की कहानी सुनाते हैं। उनका पेशा अखबारनवीसी और अफसाना नवीसी था।

बोध प्रश्न

- उग्र जी ने पढ़ना-लिखना कैसे सीखा?

8.4 पाठ सार

पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र' ने 'अपनी ख़बर' (1960) में अपने जीवन के प्रारंभिक इक्कीस वर्ष की घटनाओं को वाणी दी है। उग्र की लेखन-शैली की विशेषता ओजपूर्ण शैली में दो टूक बात कहना है और ये विशेषताएँ उनकी आत्मकथा में भी परिलक्षित होती है। अपनी ख़बर लेना और

अपनी ख़बर देना जीवनी साहित्य की दो बुनियादी विशेषताएँ हैं। उग्र जैसे लेखक की अपनी ख़बर उनके जैसे बेबाकी, साफगोई और जीवंत भाषा-शैली हिंदी में आज भी दुर्लभ है। हिंदी के आत्मकथा साहित्य में आज भी दुर्लभ है। हिंदी के आत्मकथा साहित्य में अपनी ख़बर को मील का पत्थर माना जाता है। अपने निजी जीवन अनुभवों, उद्वेगों और घटनाओं को इन पृष्ठों में उग्र जी ने जिस खुलेपन से चित्रित किया है, उनसे हमारे सामने मानव स्वभाव की अनेकानेक सच्चाइयाँ उजागर हो उठती हैं। यह स्वाभाविक भी है, क्योंकि मनुष्य का विकास उसकी निजी अच्छाइयों-बुराइयों के बाजवूद अपने युग युग-परिवेश से भी प्रभावित होता है। यही कारण है कि आत्मकथा-साहित्य व्यक्तिगत होकर भी सार्वजनीन और सार्वकालिक महत्व रखता है।

विक्रमीय संवत के 1957 के वर्ष के पौष शुक्ल अष्टमी की रात साढ़े आठ बजे पांडेय बेचन शर्मा उग्र का जन्म यू.पी. के मिर्जापुर जिले के चुनार तहसील के सद्दूपुर नामक मुहल्ले में हुआ। आपके पिता का नाम बैजनाथ पांडेय और माता का नाम जयकली था। आपका जन्म एक सरयूपारीण ब्राह्मण परिवार में हुआ। उग्र जी के पिता तेजस्वी वैष्णव हृदय के थे किंतु माता ब्राह्मणी होने के बावजूद उग्र एवं क्षत्राणी स्वभाव की थी। आप के बहुत से भाई बहन पैदा हुए किंतु अधिकतर पैदा होते ही भगवान को प्यारे हो गए। उनके अच्छे नाम रखे गए किंतु वे अधिकतर दगा दे गए अर्थात मर गए। अंत में उग्र जी का जन्म हुआ। सर्वप्रथम तो उन्हें बेच दिया गया और उस पैसे का गुड़ मँगाकर उनकी माँ ने खा लिया। इसी कारण से उग्र का नाम 'बेचन शर्मा उग्र' पड़ा। यह नाम अधिकतर निम्नवर्गीयों में प्रचलित था।

उग्र जी एक गरीब परिवार में पैदा हुए। इनके जन्म के कुछ दिन बाद ही उनके पिता का स्वर्गवास हो गया। पिता की मृत्यु के बाद वे अपने बड़े भाई की निगरानी में रहने लगे। उनके भाई पढ़े-लिखे नहीं थे किंतु बुद्धि के बड़े तेज थे। हिंदी, बंग्ला, संस्कृत के वे ज्ञाता थे। थोड़ा बहुत ज्योतिषी में भी ज्ञान प्राप्त था। उग्र जी एक ब्राह्मण परिवार से थे। इनका घर भी ब्राह्मणों के मोहल्ले में ही था। इनके घर की आर्थिक स्थिति बहुत ही खराब थी। इसलिए बहुत से लोग गरीब और ब्राह्मण जानकर उनके घर भीख पहुँचा जाते थे। उग्र जी का कहना था कि जजमानी वृत्ति एक सही काम नहीं था। इसमें स्वयं नीचातिनीच होकर भी दूसरों से चरण पुजवाना रह गई थी। यह केवल एक आडंबर मात्र रह गया था। लोग धर्म से दूर होते जा रहे थे।

पांडेय बेचन शर्मा उग्र की आत्मकथा 'अपनी खबर' में जाति प्रथा की भी निंदा की गई है। इनका कहना है कि उच्च और निम्न जाति में भेद करना गलत है। प्रारंभ में सभी नीच कुल से ही उत्पन्न होते हैं। उग्र के घर की आर्थिक स्थिति बहुत खराब थी। इसी कारण वे आगे की शिक्षा पूरी नहीं कर सके। उनके भाई साहब के कारण घर का माहौल कुछ अलग तरह का ही रहता था।

उग्र के घर में उनके भाई के कारण जुए का खेल होता था। पिता के नहीं रहने के कारण वेश्या को भी घर में रखा गया था। मुहल्ले के मनचले ब्राह्मण युवक उस वेश्या से मिलने उनके घर आते। उनकी माता और भाभी यह सब देखकर रोने लगती थी। जुए की बुरी लत के कारण उनके भाई ने अपने पत्नी तथा माता के गहने तक बेच डाले। अंत में घर के बर्तनों की बारी आई।

वे भी बिक गए। जिसने भी अपना संचय सौंपने में जरा भी हिचक दिखलाई उसे भाई साहब जूतों, थप्पड़ों, घूंसों लातों से मारते। अक्सर ये शराब और गाँजे के नशे में होते थे। पूरा परिवार कर्ज में डुबा रहता था। एक बार पुलिस ने छापा मारा और सारे जुआरियों को पकड़ लिया और हवालात में बंद कर दिया। बहुत दिनों के बाद पचास रुपए के जुर्माने पर भाई साहब छूटे।

उग्र और उनके भाई रामलीला मंडलियों में एक्टिंग करने लगे। उस कारण से कुछ पैसा आने लगा। रामलीला मंडली में भी उग्र जी के बड़े भाई उग्र पर खूब रोब जमाते थे। उन्हें अक्सर जानकी, लक्ष्मण और भरत का पार्ट रामलीला मंडली में करने को दिया जाता था। उग्र की औपचारिक स्कूली शिक्षा नहीं हुई थी। उन्होंने पढ़ना लिखना भी रामलीला में ही सीखा। रामायण के विविध अंश उन्हें कंठस्थ थे। एक बार अचानक से उन्हें भरत का पार्ट करना पड़ा किंतु उग्र ने इस रोल को बखूबी निभाया। इस कारण उनके वेतन में भी वृद्धि हुई। उनके भाई साहब भी बहुत प्रसन्न हुए। इन दोनों भाइयों के रामलीला मंडली में काम करने से घर की आर्थिक दशा में कुछ सुधार आया। उनके बड़े भाई साहब कुछ पैसा घर भी भेजा करते थे।

8.5 पाठ की उपलब्धियाँ

इस इकाई के अध्ययन से निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त हुए हैं -

1. उग्र जी के स्वभाव और साहित्य में उग्रता के समावेश का कारण जानने में उनकी आत्मकथा बहुत सहायता कर सकती है।
2. 'अपनी खबर' इस कारण आत्मकथा साहित्य में बेजोड़ है कि इसमें लेखक ने निर्ममतापूर्वक अपने जीवन और मन का खुलासा किया है।
3. 'अपनी खबर' का आरंभिक अंश भी यह प्रतिपादित करने में सक्षम है कि पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक और शैक्षणिक परिवेश किसी बालक के व्यक्तित्व और मानसिकता को बनाने-बिगाड़ने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं।

8.6 शब्द संपदा

1. अख़बार-नवीसी	=	समाचार लेखन
2. अनगढ़ता	=	बिना गढ़ा हुआ
3. अफ़साना नवीसी	=	कहानी लेखन
4. गलतीवश	=	भूल से
5. दुर्भाग्य	=	बदकिस्मत
6. निस्संकोच	=	बगैर हिचकिचाहट
7. फिरदौस	=	जन्नत
8. बेसबब	=	बेवजह - बिना कारण
9. मुकाम	=	जगह

8.7 परीक्षार्थ प्रश्न

खंड (अ)

(अ) दीर्घ श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 500 शब्दों में दीजिए

1. 'अपनी ख़बर' के माध्यम से उग्र जी के परिवार की आर्थिक स्थिति पर चर्चा कीजिए।
2. 'अपनी ख़बर' आत्मकथा में उग्र जी के परिवेश की सामाजिक परिस्थितियों का वर्णन कीजिए।

खंड (ब)

(आ) लघु श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 200 शब्दों में दीजिए

1. 'अपनी ख़बर' के माध्यम से रासलीला मंडली का वर्णन अपने शब्दों में कीजिए।
2. 'अपनी खबर' के पठित पाठ के आधार पर उग्र के जीवन पर प्रकाश डालिए।

खंड (स)

I. सही विकल्प चुनिए -

1. 'अपनी खबर' किसकी आत्मकथा है? ( )
   (अ) विष्णुप्रभाकर (आ) कमलेश्वर (इ) बेचन शर्मा (ई) योगी हरी
2. उग्र जी आगे की शिक्षा क्यों पूरी नहीं कर पाए? ( )
   (अ) जातिगत भेदभाव (आ) आर्थिक विपन्नता (इ) अहंकार (ई) इनमें से कोई नहीं
3. 'टाँग अड़ाना' मुहावरे का अर्थ है ..... ( )
   (अ) टाँग तोड़ना (आ) टाँग मरोड़ना (इ) दखल देना (ई) दिखावा करना
4. 'अपने हाथों पाँव में कुल्हाड़ी मारना' का अर्थ है .... ( )
   (अ) जान-बूझकर स्वयं को संकट में डालना (आ) अपने हाथ पैर तोड़ लेना
   (इ) दूसरों को संकट में डालना (ई) दूसरों के हाथ पैर तोड़ना
5. उग्र जी के पिता किस विद्या में दक्ष थे? ( )
   (अ) भूत-प्रेत (अ) वैद्यक (इ) तंत्र-मंत्र (ई) अघोर साधना

II. रिक्त स्थान की पूर्ति किजए -

1. धर्म .....पर पनपता है।
2. कुल-धर्म विरुद्ध आचरण करने वाले को .....की तरह काटकर समाज से अलग कर देना चाहिए।

3. जिसकी ..... सर्वथा खत्म हो जाती है, वही वस्तु नष्ट हो जाती है।
4. अनगढ़ पत्थर ..... का पूर्व रूप है।

III. सुमेल कीजिए -

1. उग्र जी के पिता	(अ) ब्रह्मा मिश्र
2. उग्र जी की माता	(आ) विंध्येश्वरी पांडेय
3. उग्र जी के पट्टीदार	(इ) जयकली
4. हवाले वाले	(ई) वैज्यनाथ पांडेय

8.8 पठनीय पुस्तकें

1. हिंदी साहित्य का इतिहास : सं. नगेंद्र
2. हिंदी का गद्य-साहित्य : रामचंद्र तिवारी
3. गद्य की नई विधाओं का विकास : माजदा असद

इकाई 9 : प्रेमचंदपर्यंत हिंदी उपन्यास

रूपरेखा

9.1 प्रस्तावना
9.2 उद्देश्य
9.3 मूल पाठ : प्रेमचंदपर्यंत हिंदी उपन्यास
9.3.1 प्रेमचंद का व्यक्तित्व
9.3.2 प्रेमचंद एवं उनका युग
9.3.3 प्रेमचंद व हिंदी उपन्यास
9.3.4 प्रेमचंद युग और प्रेमचंद के उपन्यास
9.3.5 प्रेमचंद युगीन हिंदी उपन्यास
9.4 पाठ सार
9.5 पाठ की उपलब्धियाँ
9.6 शब्द संपदा
9.7 परीक्षार्थ प्रश्न
9.8 पठनीय पुस्तकें

9.1 प्रस्तावना

प्रिय छात्रो! प्रस्तुत इकाई में हम प्रेमचंदपर्यंत हिंदी उपन्यासों का अध्ययन करेंगे। इसके माध्यम से प्रेमचंद और उनके समकालीन हिंदी के उपन्यासकारों के संदर्भ में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे। किसी भी समय के युग के परिप्रेक्ष्य को समझने के लिए उस दौर के साहित्य को समझना अनिवार्य है। प्रेमचंद के व्यक्तित्व के साथ, उनके उपन्यास साहित्य का भी अध्ययन अपेक्षित हैं। साथ ही प्रेमचंद और उनके समकालीन उपन्यास साहित्य का भी परिचयात्मक अध्ययन किया जाएगा। उस दौर में समाज में धर्म, जाति, वर्ण की जकड़बंदी, सामंती प्रवृत्तियों की जकड़बंदी खूब थी। प्रेमचंद और उनके समकालीन उपन्यासकारों ने इस यथार्थ के उद्घाटन के साथ आदर्श और समाज सुधार जैसे प्रश्नों को भी उठाया है। इस इकाई में इन सब का अध्ययन करेंगे।

9.2 उद्देश्य

प्रिय छात्रो! इस इकाई के अध्ययन से आप -

- प्रेमचंद और उनके पहले तथा समकालीन उपन्यासों के बारे में जान सकेंगे।
- प्रेमचंद युग के उपन्यास के विकास को विषय वस्तु के स्तर पर समझ सकेंगे।
- प्रेमचंद युग के उपन्यास के विकास को शिल्प के स्तर पर समझ सकेंगे।
- हिंदी उपन्यास के विकास में प्रेमचंद युग की भूमिका से अवगत हो सकेंगे।

9.3 मूल पाठ : प्रेमचंदपर्यंत हिंदी उपन्यास

9.3.1 प्रेमचंद का व्यक्तित्व

हिंदी कथा साहित्य में प्रेमचंद एक सहज, सरल और साधारण मनुष्य के रूप में असाधारण मानव मन, हृदय वाले व्यक्तित्व के स्वामी थे। प्रेमचंद का जन्म 31 जुलाई, 1880 को लमही नामक ग्राम में हुआ था तथा इनकी मृत्यु 8 अक्तूबर, 1936 को हुई थी। प्रेमचंद का मूल नाम 'धनपत राय' था। वह उर्दू में 'नवाब राय' तथा हिंदी में 'प्रेमचंद' नाम से रचनाएँ लिखते थे। प्रेमचंद को 'प्रेमचंद' नाम उर्दू पत्र 'जमाना' के संपादक दयानारायण निगम ने दिया था। प्रेमचंद को 'उपन्यास सम्राट' की संज्ञा प्रसिद्ध बंगला कथाकार शरतचंद्र चट्टोपाध्याय द्वारा दी गई थी। उनकी सहजता और साधारणता उनके साहित्य लेखन में भी परस्पर देखने को मिलती हैं। उन्होंने अपने जीवन को लक्ष्य करते हुए लिखा है कि "मेरा जीवन सपाट, समतल मैदान है, जिसमें कहीं-कहीं गड्ढे तो हैं, पर टीलों, पर्वतों, घने जंगलों, गहरी घाटियों और खंडहरों का स्थान नहीं है। जो सज्जन पहाड़ों की सैर के शौकीन है। उन्हें तो यहाँ निराशा ही होगी।" इस कथन के माध्यम से प्रेमचंद अपने जीवन में जो साधारणता है उसको सामने लाना चाहते हैं और कथन के माध्यम से उनका आग्रह है कि उन्हें आम भारतीय मानव की तरह ही समझा जाए। वह आम भारतीय मनुष्य की तरह ही साधारण है।

बोध प्रश्न

- प्रेमचंद कैसा व्यक्ति थे?

9.3.2 प्रेमचंद एवं उनका युग

प्रेमचंद की कृतियाँ भारत के सर्वाधिक विशाल और विस्तृत वर्ग की कृतियाँ हैं। उन्होंने उपन्यास, कहानी, नाटक, समीक्षा, लेख, सम्पादकीय, संस्मरण आदि अनेक विधाओं में साहित्य की सृष्टि की, किंतु प्रमुख रूप से वह कथाकार हैं। उन्होंने कुल 15 उपन्यास, 300 से कुछ अधिक कहानियाँ, 3 नाटक, 10 अनुवाद, 7 बाल-पुस्तकें तथा हज़ारों पृष्ठों के लेख, संपादकीय टिप्पणियाँ, भाषण, भूमिका, पत्र आदि की रचना की। जिस युग में प्रेमचंद ने कलम उठाई थी, उस समय उनके पीछे ऐसी कोई ठोस विरासत नहीं थी और न ही विचार और न ही प्रगतिशीलता का कोई मॉडल ही उनके सामने था, सिवाय बांग्ला साहित्य के। उस समय बंकिम बाबू थे, शरतचंद्र थे और इसके अलावा टॉलस्टॉय जैसे साहित्यकार थे। लेकिन प्रेमचंद ने 'गोदान' जैसे कालजयी उपन्यास की रचना की जो कि एक आधुनिक क्लासिक माना जाता है।

उपन्यास को बीसवीं शताब्दी के हिंदी गद्य की सर्वाधिक सशक्त और लोकप्रिय विधा कहा जा सकता है। साहित्य के इस माध्यम से जीवन की यथार्थ अभिव्यक्ति के उजागर होने से इसमें समाज की सच्ची तस्वीर देखने को मिलती है। सामाजिक जीवन के विविध स्पंदनों, अनुभूतियों एवं विचारों का, समस्याओं एवं चिंताओं का इस माध्यम द्वारा हू-ब-हू साक्षात्कार कर सकते हैं। गद्य की इस महाकाव्यात्मक विधा में हम भारतीय जन-जीवन के विविध रंगों एवं

पक्षों को प्रतिबिंबित होते देख सकते हैं। साथ ही समाज की विविध समस्याओं का व्यापक फलक पर उपन्यास विधा में ही चित्रण किया जा सकता है। इन समस्याओं का समाधान लेखक कभी यथार्थवादी दृष्टि से करता है तो कभी आदर्शवादी दृष्टि से, और ये सभी तत्व प्रेमचंद के उपन्यासों में विशेष रूप से देखने को मिलते हैं।

प्रेमचंद के आगमन तक हिंदी उपन्यास काल्पनिकता तथा नैतिक उपदेशों से भरा रहता था। प्रेमचंद ने हिंदी उपन्यास परंपरा की धारा में पहली बार उपन्यास लेखन को सामाजिक यथार्थ से जोड़ा। प्रेमचंद के उपन्यास लेखन के संदर्भ में इतिहासकार व आलोचक बच्चन सिंह लिखते हैं कि 'प्रेमचंद के उपन्यासों के संबंध में जो विचार व्यक्त किए गए हैं, वे प्रायः एकांगी हैं। एक ओर वे दुनिया के सर्वश्रेष्ठ उपन्यासकारों की श्रेणी में रखे जाते हैं तो दूसरी ओर उन्हें द्वितीय श्रेणी का उपन्यासकार कहा जाता है। कोई उन्हें गांधीवादी सिद्ध करता है तो कोई उन्हें मार्क्सवादी; कोई आदर्शवादी कहता है तो कोई यथार्थवादी; कोई उनके कथ्य को भारतीय कहता है तो रूप को पाश्चात्य यानि अभारतीय। भिन्न-भिन्न रंगीन चश्मों का रंग हावी हो जाता है, प्रेमचंद पीछे छूट जाते हैं।'

बोध प्रश्न

- प्रेमचंद ने हिंदी उपन्यास को किस धारा से जोड़ा?

9.3.3 प्रेमचंद व हिंदी उपन्यास

उपन्यास हिंदी साहित्य के गद्य विधा में एक नई विधा के रूप में उन्नीसवीं सदी में विकसित हुआ। आगे चलकर देश के स्वाधीनता आंदोलन के साथ उपन्यास लेखन भी बढ़ता गया और प्रेमचंद तक आते-आते उपन्यास साहित्य की एक महत्वपूर्ण विधा के रूप में स्थापित हो गया। विद्वानों का मत है कि हिंदी में आधुनिक उपन्यास लेखन की परिपाटी यूरोपीय साहित्य के प्रभाव से आया। कालांतर में बांग्ला साहित्य के माध्यम से उपन्यास विधा का आगमन हिंदी गद्य साहित्य में हुआ। हितोपदेश, पंचतंत्र, कथा सरित्सागर, वृहत्कथा, वैताल पंचविशांति, स्वप्नवासवदत्ता, दशकुमारचरीत तथा कादंबरी आदि कथापरक रचनाओं में औपन्यासिकता मिलती हैं। हालांकि इन रचनाओं में आधुनिक उपन्यास विधा के सभी गुण, पहचान और चिह्न नहीं हैं लेकिन भारतीय औपन्यासिक परंपरा की जानकारी के लिए इनका अध्ययन आवश्यक हैं। हिंदी के प्रथम उपन्यास को लेकर अनेक विद्वानों ने अपने मत प्रस्तुत किए हैं लेकिन अधिकांश विद्वान लाला श्रीनिवास दास के उपन्यास 'परीक्षा गुरु' (1882) को हिंदी का प्रथम उपन्यास मानते हैं। हिंदी उपन्यास विधा के विकास क्रम के दौरान उसे तीन भागों में विभक्त किया जाता है जो इस प्रकार है- (क) प्रेमचंद पूर्व हिंदी उपन्यास, (ख) प्रेमचंदयुगीन हिंदी उपन्यास और (ग) प्रेमचंदोत्तर हिंदी उपन्यास

प्रेमचंद पूर्व हिंदी उपन्यास लेखन को ध्यान में रखते हुए जो प्रमुख औपन्यासिक प्रवृत्तियाँ सामने आती हैं उनके आधार पर प्रेमचंद पूर्व उपन्यास लेखन को पाँच भागों में विभाजित किया जाता है। सामाजिक उपन्यास, तिलस्मी उपन्यास, जासूसी उपन्यास और ऐतिहासिक उपन्यास।

सामाजिक उपन्यासों में श्रद्धाराम फिल्लौरी का 'भाग्यवती' उपन्यास सामाजिक समस्या को लेकर लिखा हुआ सबसे प्रथम मौलिक उपन्यास था। इस उपन्यास की रचना सन 1877 में हुई थी। हिंदी के प्रथम उपन्यास के रूप में स्वीकृत लाला श्रीनिवास दास का उपन्यास 'परीक्षा गुरु' भी सामाजिक उपन्यास की श्रेणी में आता हैं। इसके अतिरिक्त बालकृष्ण भट्ट का उपन्यास 'नूतन ब्रह्मचारी', किशोरी लाल गोस्वामी का 'हृदयहारिणी' लज्जा राम मेहता का उपन्यास 'परतंत्र लक्ष्मी' कार्तिक प्रसाद का 'दीनानाथ' राधाकृष्ण दास का 'निस्सहाय हिंदू' हिंदी उपन्यास के प्रारम्भिक लेखन के दौर के अच्छे सामाजिक उपन्यास थे। इन उपन्यासों में सामाजिक कुरीतियों पर प्रकाश डाला गया है जिसमें उपदेशात्मक प्रकृति अधिक मौजूद है जो उपन्यास के पठनीयता को नुकसान पहुँचाती है। इन सबके बावजूद इन उपन्यासों ने सामाजिक तौर पर उपन्यास पढ़ने और लिखने के प्रति आकर्षण भी पैदा किया।

उपन्यास बीसवीं शताब्दी के हिंदी गद्य की सर्वाधिक सशक्त और लोकप्रिय विधा के रूप में लोकप्रिय है। साहित्य के इस माध्यम से जीवन की यथार्थ अभिव्यक्ति के उजागर होने से इसमें समाज की सच्ची तस्वीर देखने को मिलती है। सामाजिक जीवन के विविध स्पंदनों, अनुभूतियों एवं विचारों का, समस्याओं एवं चिंताओं का इस माध्यम द्वारा हू-ब-हू साक्षात्कार कर सकते हैं। गद्य की इस विधा में भारतीय जन-जीवन के विविध रंगों एवं पक्षों को प्रतिबिंबित होते देख सकते हैं। साथ ही समाज की विविध समस्याओं का व्यापक फलक पर उपन्यास विधा में ही चित्रण किया जा सकता है। इन समस्याओं का समाधान लेखक कभी यथार्थवादी दृष्टि से करता है तो कभी आदर्शवादी दृष्टि से और ये सभी तत्व प्रेमचंद के उपन्यासों में विशेष रूप से देखने को मिलते हैं।

हिंदी उपन्यास की परंपरा में तिलस्मी उपन्यासों की समृद्ध परंपरा देखने को मिलता है। उपन्यासों में यह विषय चयन उपन्यास को लोकप्रिय बनाने में काफी सहायक सिद्ध हुआ। हिंदी में तिलस्मी उपन्यासों की परंपरा फारसी कहानियों के अनुकरण के माध्यम से आया। सान 1881 में देवकीनंदन खत्री ने 'चंद्रकांता' और 'चंद्रकांता संतति' नामक दो उपन्यास लिखे। ये तिलस्मी उपन्यास इतने लोकप्रिय हुए की जो पाठक हिंदी पढ़ना नहीं जानते थे वे पाठकगण भी देवकीनंदन खत्री के इन उपन्यासों को पढ़ने के लिए हिंदी सीखें। लोकप्रियता का आलम यह हुआ की हिंदी में इससे प्रभावित होकर दूसरे उपन्यासकारों ने भी तिलस्मी कथा का उपन्यास में प्रयोग किए।

हिंदी के उपन्यासकारों की सूची में जासूसी उपन्यासों की प्रेरणा पश्चिमी उपन्यासों में खोजी अभियानों के प्रभाव से हुई। जासूसी उपन्यासों में सबसे प्रमुख उपन्यासकार गोपालराम गहमरी थे। इनके कथानक स्वाभाविक और पाठक को रुचिकर लगने वाले होते थे। साहित्य हो जीवन का क्षेत्र प्रेम एक महत्वपूर्ण विषय के रूप में मौजूद रहा हैं। साहित्य में भी सामाजिक उपन्यासों के अतिरिक्त अधिकांश उपन्यासों का विषय प्रेम से जुड़ा होता है। उपन्यास साहित्य में तिलस्मी उपन्यासों में भी प्रेम के रूप देखने को मिलते हैं। आगे चलकर उपन्यासों के विकास और लेखन के बढ़ने के साथ कई ऐसे उपन्यास भी आए जिनमें प्रेम एक केंद्रीय विषय के रूप में

विद्यमान रहा है। प्रेमचंद पूर्व युग में कोशोरीलाल गोस्वामी के उपन्यास लीलावती, चंद्रावती, तरुण तपस्विनी उपन्यासों में प्रेम को ही आश्रय मिला हैं।

प्रेमचंद पूर्व उपन्यास साहित्य के लेखन युग में ऐतिहासिक उपन्यास लेखन की एक महत्वपूर्ण धारा रही हैं। इन ऐतिहासिक उपन्यासों में मौजूदा दौर के सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक परिस्थितियों की मौजूदगी कथ्य के स्तर पर कम ही हैं। बृजनंदन सहाय ने 'लाल चीन' नामक उपन्यास की रचना की जिसमें एक गुलाम की कहानी हैं। वही मिश्र बंधुओं ने 'वीरमणी' किशोरीलाल गोस्वामी ने 'राजकुमारी', 'तारा', 'चपला', 'लखनऊ की कब्र', नामक उपन्यासों की रचना की है जो अपने कथ्य के स्तर पर ऐतिहासिक परिवेश को पाठक के सामने उपस्थित करते हैं।

प्रेमचंद पूर्व के हिंदी उपन्यास लेखन में औपन्यासिक तत्वों का अभाव था लेकिन उपन्यास विधा की शुरूआत की दृष्टि से ये सभी उपन्यास महत्वपूर्ण हैं। इन उपन्यासों में अधिकांश घटना प्रधान कथ्य के साथ मनोरंजन, कौतूहल और उपदेश होते थे। आने वाले समय के लिए इन उपन्यासों ने पाठक वर्ग को बनाने के साथ आने वाले उपन्यासकारों के लिए एक रास्ते का निर्माण भी किया जो इनकी उल्लेखनीय पहलू है।

बोध प्रश्न

- प्रेमचंद से पूर्व हिंदी उपन्यास लेखन की विषय वस्तु क्या थी?
- प्रेमचंद से पूर्व हिंदी उपन्यास लेखन में किन तत्वों का अभाव था?

9.3.4 प्रेमचंद युग और प्रेमचंद के उपन्यास

लाला श्रीनिवासदास के समय के कुछ नामांकित उपन्यासकारों में बालकृष्ण भट्ट, राधाकृष्ण दास, किशोरीलाल गोस्वामी, देवकीनंदन खत्री, गोपालराम गह्मारी और भारतेंदु हरिश्चंद्र का नाम लिया जा सकता हैं। उनके बाद की पीढ़ी में आए धनपतराय उर्फ़ 'प्रेमचंद', जो उर्दू और हिंदी दोनों भाषाओं में लिखते थे। भारतेंदु युग में हिंदी को हिंदुओं की भाषा ज़ाहिर कर उसे संस्कृत के करीब लाने के प्रयत्न हुए थे, मगर प्रेमचंद उन सबसे अलग थे। उन्होंने अपनी अधिकतर कहानियाँ और कई उपन्यास प्रथम उर्दू और उसके बाद हिंदी में लिखे थे।

प्रेमचंद का जीवन उनकी कहानियों की तरह ही दिलचस्प हैं। यहाँ उनके जीवन की कुछ बातें करनी इसलिए आवश्यक हैं क्योंकि उनका सीधा संबंध उनकी रचनाओं से एवं उस समय की भारत की स्थिति से हैं। प्रेमचंद का जन्म बनारस के करीब लमही नाम के एक गाँव में हुआ था। उन्होंने अपने जीवन में गरीबी देखी, सौतेली माँ से अन्याय का अनुभव किया, अपने आसपास के टूटते हुए लोगों को देखा, और साथ ही अंग्रेजों द्वारा किए जाने वाले अत्याचारों को भी देखा। यह सभी अनुभव उनके सर्जन-विश्व का बड़ा हिस्सा बननेवाले थे। बचपन से ही उन्हें पढ़ने-लिखने का बड़ा शौक था, और उन पर चार्ल्स डिकन्स, मेक्सिम गोर्की, टॉलस्टॉय जैसे लेखकों का प्रभाव अधिक था।

प्रेमचंद आदर्शवादी यथार्थवाद के पक्षधर थे जिसके पीछे जो वैचारिक कारण था वह देश और समाज की वर्तमान स्थिति। देश अपनी स्वाधीनता की लड़ाई को लड़ रहा था जहाँ अपनी लड़ाई को जारी रखने के लिए समाज को आदर्श की जरूरत थी और रचनाकारों, सोचने-समझने वालों पर यह दबाव भी था कि समाज के यथार्थ से मुख न मोड़ें बल्कि उन्हें सामने लाए। प्रेमचंद पहले ऐसे लेखक थे जिन्होंने 'वास्तव' का सही ढंग से अपनी रचनाओं में विनियोग किया। 1900-1930 तक भारत में साम्यवादी विचारधारा का सामाजिक एवं राजनैतिक प्रभुत्व रहा। इसका असर उस समय के साहित्य पर भी हुआ साहित्य-लेखन की प्रमुख धारा थी 'सामाजिक वास्तव' और प्रेमचंद उसके प्रमुख कर्ता थे। सामाजिक वास्तव की धारा का लेखन किसानों और गरीबों के जीवन को वस्तु बनाता था और शुद्ध साहित्यिक हिंदी से दूर हटकर बोल-चाल की हिंदी को प्राधान्य देता था। यह समय गाँधी का भी समय था और गांधीवाद एवं राष्ट्रवाद का प्रभाव उतना ही प्रबल था जितना साम्यवाद का। गाँधी द्वारा की गई समाज के निम्न वर्ग और किसानों के उद्धार की बात का समर्थन प्रेमचंद ने अपनी रचनाओं द्वारा दिया और गाँधी के शुरू किए गए 'असहयोग' आंदोलन के समर्थन में उन्होंने अपनी सरकारी नौकरी से त्यागपत्र भी दे दिया।

प्रेमचंद 'आदर्शवादी यथार्थ' को प्रमुख स्थान देते थे। वे इस बात पर बल देते थे कि रचना यथार्थ का चित्रण करते हुए भी किसी आदर्श की तरफ अंगुलिनिर्देश करनी चाहिए।

हिंदी उपन्यासकारों में प्रेमचंद अपने औपन्यासिक महत्व की वजह से युग प्रवर्तक के रूप में मौजूद है। प्रेमचंद ने अपनी लेखनी के माध्यम से उपन्यास का कथ्य और शिल्प दोनों स्तरों पर उसे चरमोत्कर्ष पर पहुँचाया। उनके उपन्यासों में पहली बार कथ्य के स्तर पर आम जनता की समस्याओं की अभिव्यक्ति हुई। इस अभिव्यक्ति के जरिए उन्होंने आम जन-जीवन के प्रामाणिक और यथार्थपरक चित्र को प्रस्तुत किया। अपने उपन्यास लेखन में आम जीवन की उपस्थिति और उनके स्वाभाविक चित्रण के कारण वे वास्तव में 'कथा सम्राट' के रूप में गद्य साहित्य में प्रतिष्ठित हुए। प्रेमचंद के उपन्यासों में राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन, कृषि समस्या, सामंतवाद, मानवतावाद, भारतीय संस्कृति, शोषण, विधवा विवाह, अनमेल विवाह, दहेज प्रथा, जाति व्यवस्था जैसे प्रश्नों से उनके औपन्यासिक विषय संबंधित है। प्रेमचंद अपने उपन्यास लेखन के संबंध में लिखते हैं कि "मैं उपन्यास को मानव चरित्र का चित्र मात्र समझता हूँ। मानव चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को प्रेमचंद ने उपन्यास के विषय को तिलिस्म, प्रेम और इतिहास के तथ्यों से निकालकर जीवन की समस्याओं और उसकी जिजीविषा पर लाकर खड़ा कर दिया। उनके उपन्यासों की कथावस्तु कोरी कल्पना न होकर मनुष्य के जीवन और उसकी वास्तविकता से जुड़ी हुई है। उन्होंने अपनी लेखनी के माध्यम से यह सिद्ध कर दिया कि केवल आदर्शवाद से ही नहीं बल्कि समाज के यथार्थ को भी हमें साहित्य में जगह देनी होगी। समाज के यथार्थ के साथ प्रेमचंद का साहित्य आदर्शोन्मुख यथार्थवाद की अभिव्यक्ति के रूप में साहित्य में एक नई धारा की स्थापना भी करता हैं।

प्रेमचंद ने हिंदी में ग्यारह उपन्यास लिखे है जिसमें देवस्थान रहस्य (1905), प्रेमा (1907), सेवसादन (1918), वरदान (1921), प्रेमाश्रम (1922), रंगभूमि (1925), कर्मभूमि (1932), कायाकल्प (1926), निर्मला (1927), गबन (1931) और गोदान (1936) हैं। प्रेमचंद ने एकमात्र ऐतिहासिक उपन्यास रूठी रानी लिखा जिसका रचना वर्ष 1907 है जबकि प्रेमचंद का पहला उपन्यास उर्दू में 'असरारे मआविद' (1903) नाम से आया था जिसका बाद में हिंदी रूपांतरण 'देवस्थान रहस्य' (1905) नाम से उन्होंने किया था। प्रेमचंद ने अपने अधिकतर उपन्यास उर्दू में लिखे और बाद में उन्हें हिंदी में रूपांतरण कर प्रकाशित करवाया। आलोचक नगेंद्र के अनुसार प्रेमचंद का हिंदी में पहला उपन्यास 'कायाकल्प' है। प्रेमचंद युग की मर्यादा 1918 से 1936 ई. तक मान्य है। हिंदी साहित्य में यह 'युग' काव्यधारा छायावाद के नाम से प्रसिद्ध है।

प्रेमचंद के उपन्यास व्यक्ति और लोक-कल्याण की कामना से प्रेरित हैं। वे हमारे समक्ष एक समाज सुधारक के रूप में उपस्थित होते हैं। उनकी सुधारवादी प्रवृत्ति उनके उपन्यासों में स्पष्ट है। कहीं-कहीं उनका यह सुधारवादी रूप इतना प्रचंड हो गया है कि वह इनकी एक बहुत बड़ी दुर्बलता बन गया है। वे वहाँ पर उपन्यासकार के रूप में उपदेशक मात्र बन जाते हैं जो उस युग कि एक विशेषता भी थी। कथावस्तु, कथोपकथन इत्यादि उपन्यास के सभी अंग उनके उपन्यासों में समान रूप से विकसित हुए हैं। उनकी शैली सर्वथा अपनी थी। पात्रों का मानसिक विश्लेषण और उनके आंतरिक संघर्ष का चित्रण कलात्मक और स्वाभाविक है। व्यंग्यपूर्ण शाब्दिक चित्र प्रस्तुत करने में वे पटु थे, इनकी मुहावरेदार भाषा भी इनकी सफलता का रहस्य है। उनके प्राकृतिक दृश्यों के चित्रण में हल्की भावुकता और कवित्व का सम्मिश्रण है। उनकी रचनाओं को देखते हुए प्रेमचंद जी को हिंदी-उपन्यास साहित्य का निर्माता कहा जा सकता है। उनकी रचनाएँ भारतीय परम्परा के अनुसार आदर्शोन्मुख और यथार्थ की धरातल पर हैं।

प्रेमचंद की रचना-दृष्टि, विभिन्न साहित्य रूपों में, अभिव्यक्त हुई। वह बहुमुखी प्रतिभा संपन्न साहित्यकार थे। प्रेमचंद की रचनाओं में तत्कालीन इतिहास बोलता है। उन्होंने अपनी रचनाओं में जन साधारण की भावनाओं, परिस्थितियों और उनकी समस्याओं का मार्मिक चित्रण किया। उनकी कृतियाँ भारत के सर्वाधिक विशाल और विस्तृत वर्ग की कृतियाँ हैं। अपने उपन्यासों से प्रेमचंद मानव-स्वभाव की आधारभूत महत्ता पर बल देते हैं।

प्रेमचंद 'मानवतावाद' से भी प्रभावित थे। उन्होंने 'जीवन में साहित्य का स्थान' विषय पर विचार करते हुए लिखा है "आदि काल से मनुष्य के लिए सबसे समीप मनुष्य है। हम जिसके सुख-दुख, हँसने-रोने का मर्म समझ सकते है, उसी से हमारी आत्मा का अधिक मेल होता है।" जीवन के अंतिम दिनों में प्रेमचंद की आदर्शवादी आस्था हिल उठी थी। 'सेवासदन' (1918) से लेकर 'गोदान' (1936) तक आते-आते भीतर ही भीतर उनके विचारों में क्रांतिकारी परिवर्तन हो चुके थे। गोदान तक आते-आते प्रेमचंद का आदर्शान्मुख यथार्थवाद, यथार्थोन्मुख आदर्शवाद बन गया है। प्रेमचंद का 'गोदान' एक ऐसी मनोभूमि पर प्रतिष्ठित है जहाँ भारतीय किसान जीवन की महागाथा उपन्यास के नायक 'होरी' के माध्यम से चित्रित किया हैं।

प्रेमचंद युग के अंतिम दौर में जैनेंद्र की आत्मकेंद्रित अंतर्मुखी पीड़ा इलाचंद जोशी की कामकुण्ठा-जनित जटिल व्यक्ति-चेतना, यशपाल का समाजोन्मुख यथार्थवाद, भगवतीचरण वर्मा और उपेंद्रनाथ 'अश्क' का रूमानी समाजोन्मुखी व्यक्तिवाद तथा अमृतलाल नागर का सर्व-मांगलिक मानववाद सभी के प्रेरणा-सूत्र लक्षित किए जा सकते हैं। प्रेमचंद युग के अंतिम चरण में उपर्युक्त सभी प्रवृत्तियों का नवोन्मेष हो चुका था।

बोध प्रश्न

- प्रेमचंद के उपन्यास किस्से प्रेरित हैं?
- 'गोदान' तक आते-आते प्रेमचंद की दृष्टि किस तरह बदल गई?
- प्रेमचंद युग के अंतिम दौर के उपन्यासकारों के नाम बताइए।

9.3.5 प्रेमचंद युगीन हिंदी उपन्यास

प्रेमचंद के समय में हिंदी उपन्यास अपने पुराने कलेवर को छोड़ नए दौर के साथ तालमेल करने की कोशिश करता हुआ दिखलाई पड़ता हैं। यह कोशिश केवल भी कथ्य के स्तर पर ही नहीं बल्कि शिल्प के स्तर पर भी नए प्रयोग और आनेवाले भविष्य की आधारशिला के रूप में देखा जा सकता हैं। हालांकि जो उपन्यास लेखन प्रेमचंद के दौर में हुए उसमें निर्विवाद रूप से प्रेमचंद शिखर उपन्यासकार के रूप में हमारे सामने हैं। प्रेमचंद वस्तु, शिल्प और भाषा सभी दृष्टियों से उपन्यास लेखन में अपनी विशिष्ट पहचान से सबको परिचित करवाते हैं। अक्सर यह देखने में आता है कि प्रेमचंद और उनके युग की चर्चा करते हुए प्रेमचंद के साथ के गौण उपन्यासकारों की चर्चा नहीं होती हैं। हालांकि यह कहा जा सकता है कि प्रेमचंद के आलोक में इन उपन्यासकारों कि सर्जनात्मकता ओझल हो जाती हैं लेकिन विषय के विस्तार और शिल्पगत प्रयोग की दृष्टि से इन गौण उपन्यासकारों का योगदान उल्लेखनीय हैं।

प्रेमचंद युग में जो उपन्यास लेखन हुआ उनमें कुछेक में तो पूर्व उपन्यास परंपरा लेखन की ही अनुगूँज मिलती हैं। परंतु प्रेमचंद के लेखन का प्रभाव यह पड़ा कि अधिकांश उपन्यास लेखन करने वाले उपन्यासकारों ने सामाजिक यथार्थ को ही आधार बनाकर उपन्यास लेखन किया। जिसमें जगदीश झ विमल, गिरिजादत्त शुक्ल गिरीश, विश्वंभरनाथ शर्मा कौशिक, सियाराम शरण गुप्त, प्रतापनारायण श्रीवास्तव, देव नारायण द्विवेदी, अनुपलाल मण्डल, जैसे उपन्यासकारों ने भी सामाजिक यथार्थ पर उपन्यास लेखन आकर अपने नाम को साहित्य धारा में जोड़ा। सामाजिक यथार्थ के चित्रण में प्रेमचंद के समकालीन उपन्यासकारों में पाण्डेय बेचन शर्मा उग्र, ऋषभचरण जैन और जयशंकर प्रसाद अपने प्रकृतवादी लेखन के प्रेमचंद युग के महत्वपूर्ण उपन्यासकारों में गिने जाते हैं। इन उपन्यासकारों में सूर्यकांत त्रिपाठी निराला का नाम इस दृष्टि से महत्वपूर्ण है कि उनके उपन्यासों में सामाजिक बदलाव कि आकांक्षा सर्वाधिक मुखर रूप से अभिव्यक्त हुई।

सामाजिक यथार्थ के चित्रण की दृष्टि से प्रेमचंद के समकालीन उपन्यासकारों में निराला कही-कही प्रेमचंद से आगे बढ़े हुए नजर आते हैं। विषय और भाषा दोनों दृष्टियों से निराला

यथार्थवाद की ओर जो प्रगति करते हैं वह उल्लेखनीय हैं। हालांकि निराला के उपन्यास को लेकर यह भी कहा जाता हैं कि औपन्यासिक विजन कि कमी और कथा निर्माण में स्वाभाविकता के अभाव की वजह से वह उपन्यास लेखन के क्षेत्र में हलचल तो करते हैं लेकिन युगांतकरी बदलाव की ओर नहीं बढ़ पाते हैं। इस कल के गौण उपन्यासकारों में कथ्य का विस्तार मिलता हैं। कथ्य क्षेत्र विस्तार की दृष्टि से यह युग अपना ध्यान आकर्षित करता हैं। नारी विषयक समस्याओं का चित्रण, वैवाहिक समस्या, दहेज का प्रश्न, अनमेल विवाह, विधवा विवाह जैसे नारी विषयों को लेकर इस युग के उपन्यासकारों ने अपनी यथार्थवादी दृष्टि का परिचय दिया हैं। इस युग के कई उपन्यासों में पुरुष वर्ग तथा समाज के अत्याचारों के विरुद्ध नारी को विद्रोह करते हुए भी दिखलाया गया है। जैनेंद्र कुमार के उपन्यास (परख) स्त्री-पुरुष की समस्या को अधिक वैचारिक गंभीरता, सनवेदनशीलता के साथ मनोवैज्ञानिक स्तर पर भी स्त्री समस्या को सामने रखते हैं। वेश्यावृत्ति की समस्या को लेकर इस दौर के उपन्यासों में खूब लिखा गया। प्रेमचंद के उपन्यासों से लेकर उग्र तक के उपन्यासों में वेश्यावृत्ति के संबंध में अंकन देखने को मिलता हैं। इस युग में गौण उपन्यासकारों ने वेश्यावृत्ति की समस्या पर अपनी संवेदनशीलता का परिचय दिया हैं। वेश्याओं के जीवन को वर्णित करने वाले उपन्यासों में वेश्याओं की महानता, त्याग, उनका निश्छल प्रेम का चित्रण हुआ हैं।

भारतीय स्वाधीनता आंदोलन का मुखरता के साथ वर्णन, अंकन इस युग के उपन्यास लेखन की एक बड़ी उपलब्धि हैं। भगवत प्रसाद शुक्ल द्वारा रचित उपन्यास भारतप्रेमी (1919) स्वाधीनता आंदोलन से जुड़ा पहला उपन्यास था। इस युग में दो दर्जन से अधिक उपन्यासकार स्वाधीनता आंदोलन से जुड़ी स्थितियों, विचारों, भावनाओं का चित्रण उपन्यासों में हुआ हैं। जिसमें मोहिनी मोहन द्वारा लिखा गया उपन्यास देशोद्धार (1920), कृष्णलाल वर्मा का उपन्यास पुनरुत्थान (1921), छविनाथ पाण्डेय का उपन्यास प्रोत्साहन (1921) आदि उपन्यासों में स्वाधीनता आंदोलन तथा गांधीवादी विचारों का खुले तौर पर चित्रण हुआ हैं।

प्रेमचंद युग में ही वृंदावन लाल वर्मा हिंदी उपन्यास के कथ्य को एक नए आयाम पर ले जाने वाले उपन्यासकार के रूप में चिह्नित होते हैं। हालांकि इनके पूर्व उपन्यास लेखन में इतिहास का प्रयोग किशोरिलाल गोस्वामी, जयरामदास गुप्त, ब्रजनंदन सहाय ने किया था लेकिन वृंदावन लाल वर्मा ने अपने उपन्यासों में इतिहास का अधिक सर्जनात्मक ढंग से उपयोग किया। इतिहास, स्थानीयता और क्षेत्र विशेष के प्राकृतिक परिवेश, लोकसंस्कृति, स्वाभिमान को जोड़कर ऐतिहासिक उपन्यासों की स्वतंत्र रूप से सर्जना उनके उपन्यास लेखन की विशेषता हैं।

प्रेमचंद युग में औपन्यासिक शिल्प से जुड़े तथ्यों पर भी विशेष ध्यान दिया गया। शिल्प के स्तर पर जैनेंद्र ने हिंदी उपन्यास को एक नई पहचान दी। प्रेमचंद ने औपन्यासिक कथानक को शिथिलता से निकालकर उपन्यास में स्वाभाविक प्रवाह में लाया, घटनाओं या पात्रों के कार्यव्यापारों में तारतम्यता को बनाए रखने का सफल प्रयास किया। प्रेमचंद युग में पत्रात्मक प्रविधि में भी उपन्यास लिखने के प्रयास हुए। पत्रात्मक प्रविधि एक विकसित उपन्यास प्रविधि है जिसमें विभिन्न पात्रों के अवलोकन बिन्दुओं से कथा प्रस्तुत की जाती है और उपन्यास को

पढ़ने वाला पात्र विशेष के मस्तिष्क में अभिनीत होते नाटक का प्रत्यक्ष अनुभव करता है। पत्रात्मक प्रविधि में पहला उपन्यास बेचन शर्मा उग्र ने चंद हसीनों के खातूत (1927) शीर्षक से लिखा। 1927 से लेकर 1936 तक के समय में इस शिल्प में कुल 18 उपन्यास लिखे गए। पत्रात्मक प्रविधि की तरह डायरी शैली में भी उपन्यास लेखन प्रेमचंद युग में हुआ। इस शैली का हिंदी का प्रथम उपन्यास का प्रयोग का करते हुए आदित्यप्रसन्न राय ने मुन्नी की डायरी (1932) में लिखा। प्रेमचंद युग में सहयोगी उपन्यास लेखन की परंपरा प्रारम्भ हुई थी। इस युग में 1927 में त्रिमूर्ति के नाम से मीठी चुटकी नामक उपन्यास लिखा गया जिसमें लेखन भगवती प्रसाद वाजपेयी और शंभू दयाल सक्सेना थे। इसी परंपरा में जैनेंद्र कुमार और ऋषभचरण जैन द्वारा संयुक्त रूप से लिखित उपन्यास तपोभूमि (1932) है।

इस युग की एक प्रमुख विशेषता उपन्यास लेखन के क्षेत्र में लेखिकाओं का आना। इसके पूर्व हिंदी की पहली कथा लेखिका होने का गौरव 'बंग महिला' मल्लिका देवी को ही है परंतु उन्होंने कोई मौलिक उपन्यास लेखन का कार्य नहीं किया था। इस युग में महिला उपन्यासकारों में सोलह महिला लेखिकाओं ने उपन्यास लेखन का कार्य किया। जिसमें रुक्मिणी देवी कृत मेम और साहब (1919), कुंती देवी कृत सुंदरी (1922), विमला देवी चौधरानी कृत कामिनी (1923), गिरिजा देवी कृत कमला कुसुम (1925) उषा देवी कृत वचन का मोल (1936) आदि उल्लेखनीय उपन्यास हैं। इन उपन्यासों में सर्वाधिक विषय हिन्दू समाज की दयनीय विधवाओं की स्थिति, पट-पत्नी संघर्ष, सतीत्व की महता, विधवा प्रेम और सामाजिक बंधनों को अंकन इन उपन्यासों में हुआ। हालांकि ये लेखिकाएं परंपरागत नारी जकड़न का विरोध तो नहीं कर सकी लेकिन स्त्री की विषम स्थिति को उजागर करने में सफल जरूर हुई और अपने उपन्यासों में सबसे महत्वपूर्ण की इन लेखिकाओं ने स्त्री शिक्षा का खुलकर समर्थन किया।

प्रेमचंद और उनके समकालीन उपन्यासकारों ने अपने औपन्यासिक लेखन कार्य से उपन्यास लेखन में शिल्प और भाषा तक में बदलाव लाने का कार्य किया। प्रेमचंद युग में उपन्यास प्रौढ़ता को प्राप्त किया। इस युग में उपन्यासकार वृन्दावन लाल वर्मा और शिवपुजन सहाय ने बोलचाल की भाषा को आंचलिकता से जोड़ उसे एक नई भाव भंगिमा प्रदान की। वही जैनेंद्र की भाषा तथ्यात्मक वर्णन के रूप में नहीं बल्कि पात्रों के अंतर्मन के लयात्मक संकेतपूर्ण अभिव्यक्ति के रूप में सामने आती हैं। साथ ही इस युग में संस्कृत गद्यकाव्य वाली अलंकरण वाली भाषा उपन्यास लेखन में कम प्रयोग में हुई लेकिन चाँदी प्रसाद हृदयेश, जयशंकर प्रसाद और सूर्यकांत त्रिपाठी निराला ने इस भाषा के उपयोग अपने उपन्यास लेखन में किया।

बोध प्रश्न

- प्रेमचंद युग में पत्रात्मक शैली में किसने उपन्यास की रचना की?
- संयुक्त रूप से उपन्यासों का लेखन इस युग में हुआ उसके बारे में बताइए।
- शिल्प की दृष्टि प्रेमचंद के युग के प्रमुख उपन्यासों का परिचय दे?

9.4 पाठ सार

उपन्यास कथा को लेकर यह कहा जाता है कि उपन्यास कथा मनुष्यों की कथा है। मनुष्य उपन्यास कथा संसार के नायक के रुप में मनुष्य के जीवन की वास्तविकताओं, भावनाओं, उसके संघर्ष जटिलताओं बीच अपने जीवन का तलाश करता हैं और उसको जीता हैं। यह एक उल्लेखनीय तथ्य है कि हिंदी उपन्यास का प्रारंभ चरित्र केंद्रित 'नवल कथा' के रूप में और जिसमें मनुष्य चरित्र की ही प्रधानता नजर आती है। उपन्यास लेखन के कथा में मनुष्य की उपस्थिति होने के साथ ही मानव जीवन की साधारणता अपनी असाधारण संघर्ष और जिजीविषा के साथ उपस्थित होती है जो साहित्य में एक नए संस्कार का द्योतक हैं। हिंदी की यथार्थवादी या आदर्शवादी धारा में अतिमानवीय शक्तियों से युक्त चरित्र कम ही दिखाई पड़ते हैं।

प्रेमचंद केवल कहने या पाठ में लिखने के लिए कथा सम्राट नहीं थे बल्कि वह अपनी रचनाओं और उन रचनाओं में मौजूद विचार व उसकी कथात्मक अभिव्यक्ति को सामने लाने का जो अनूठा कार्य किया जो उनकी प्रासंगिकता को बढ़ा देता हैं। प्रेमचंद और उनके समकालीन उपन्यासकार साहित्य और उसकी सोद्देशयता समझते थे। यही कारण है कि उनका प्रयोजन स्पष्ट रहा रचना में और रचना से इतर भी। इस पाठ में अंततः यही स्वीकारोक्ति है कि प्रेमचंद एक महान रचनात्मक व्यक्तित्व के रूप में स्थित है। प्रेमचंद स्वीकारोक्ति की वजह से ही अपने पूर्व के सभी उपन्यासों को कमजोरियों ने उन्हें कथ्य और शिल्प की दृष्टि से माँजने का काम किया जिसका परिणाम आज दुनिया के सामने है। प्रेमचंद की रचनाएँ अपने युग की एवं आने वाले दौर के लिए एक पूर्व पीठिका तैयार कर रही थी, जिसकी मजबूत भूमि पर मुंशी प्रेमचंद सेवासदन, रंगभूमि, कर्मभूमि, प्रेमाश्रम, ग़बन और गोदान की रचना कर सके। प्रेमचंद अपने जीवन में प्राप्त अनुभवों से अनुभव से अपनी रचनात्मकता को उस उच्चता तक ले गए जहाँ पहुँचकर वे 'रंगभूमि' और 'गोदान' की रचना कर सके। प्रेमचंद के पूर्ववर्ती उपन्यासों ने उनकी रचनाधर्मिता की आधारभूमि तैयार की जिसकी मजबूत पूर्वपीठिका पर एक महान कथा सम्राट खड़ा होता है। ऐसा नहीं है कि सामाजिक व्यवस्था के प्रति उनकी सोच अंतिम समय में एकाएक बदल गयी मगर 'सेवासदन' और 'प्रेमाश्रम' में समस्या का समाधान आश्रम बनाकर आदर्श तरीके से करने की कोशिश प्रेमचंद को नाकाफ़ी लगी। इसीलिए अपने अंतिम प्रकाशित उपन्यास 'गोदान' का कथ्य यथार्थ की जमीन पर तैयार किया और दूषित सामाजिक व्यवस्था को नंगा करके रख दिया। यहीं पर पहुँच कर प्रेमचंद उपन्यास साहित्य में अपनी रचनाधर्मिता के शिखर को छूते हैं।

9.5 पाठ की उपलब्धियाँ

प्रेमचंदपर्यंत हिंदी उपन्यासों पर आधारित इस इकाई के अध्ययन से निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त हुए हैं -

1. हिंदी उपन्यास साहित्य में प्रेमचंद एक युगांतरकारी साहित्यकार के रूप में उदित हुए। यही कारण है कि उपन्यास के इतिहास को प्रेमचंदपर्यंत युग और प्रेमचंदोत्तर युग के रूप में विभाजित किया जाता है।
2. प्रेमचंद के उदय से पूर्व हिंदी उपन्यास अपनी बाल्यावस्था में था और तिलस्मी व जासूसी मनोरंजन प्रधान रचनाएँ ही अधिक रची जाती थीं। प्रेमचंद ने उसे व्यापक सामाजिक और राष्ट्रीय सरोकारों से जोड़ा। इसी कारण उन्हें 'कथा सम्राट' के रूप में याद किया जाता है।
3. प्रेमचंद के सामाजिक प्रतिबद्धता से भरे उपन्यासों का पाठकों और लेखकों पर संक्रामक असर हुआ। उस युग के अधिकांश लेखकों ने सामाजिक और राष्ट्रीय प्रश्नों को ध्यान में रखते हुए उपन्यास विधा का सर्वतोमुखी विकास किया।
4. उपन्यास के शिल्प और भाषा-शैली के विकास की दृष्टि से भी प्रेमचंद और उनके समकालीन लेखकों ने सर्वथा नई जमीन तोड़ी और हिंदी उपन्यास को वयस्कता प्रदान की।

9.6 शब्द संपदा

1. अंतर्मुखी = अंतर्लीन
2. अनुगूँज = प्रतिध्वनि
3. आंचलिकता = अंचल विशेष
4. आदर्शोन्मुख = आदर्श से प्रेरित
5. कलेवर = ढाँचा
6. नवल कथा = नई कथा, उपन्यास कथा
7. नवोन्मेष = खोज
8. यथार्थवाद = वास्तविकता से भरा हुआ
9. लयात्मक = लय के साथ

9.7 परीक्षार्थ प्रश्न

खंड (अ)

दीर्घ श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 500 शब्दों में दीजिए।

1. "मेरा जीवन सपाट, समतल मैदान है, जिसमें कहीं-कहीं गड्ढे तो हैं, पर टीलों, पर्वतों, घने जंगलों, गहरी घाटियों और खंडहरों का स्थान नहीं है। जो सज्जन पहाड़ों की सैर के शौकीन है। उन्हें तो यहाँ निराशा ही होगी।" इस कथन के आलोक में प्रेमचंद के व्यक्तित्व की समीक्षा करें।

2. 'प्रेमचंद का उपन्यास लेखन औपन्यासिक शासन के विरोध में एक साहित्यिक प्रतिफल है।' इस कथन पर विचार करें।
3. प्रेमचंद युग के महिला उपन्यासकारों के योगदान पर प्रकाश डालिए।

खंड (ब)

लघु श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 200 शब्दों में दीजिए।

1. प्रेमचंद की रचना दृष्टि पर प्रकाश डालिए।
2. प्रेमचंद और उनके युग पर प्रकाश डालिए।
3. प्रेमचंदयुगीन हिंदी उपन्यास साहित्य पर प्रकाश डालिए।

खंड (स)

I. सही विकल्प चुनिए -

1. प्रेमचंद का हिंदी में पहला उपन्यास का नाम क्या है? ( )
   (अ) गोदान (आ) रंगभूमि (इ) निर्मला (ई) कायाकल्प
2. सूर्यकांत त्रिपाठी निराला किस संदर्भ में प्रेमचंद से आगे थे? ( )
   (अ) सामाजिक मुखरता में (आ) भाषा अभिव्यक्ति में
   (इ) प्रकृति चित्रण में (ई) ग्रामीण चित्रण में
3. प्रकृतवादी उपन्यासकार कौन हैं? ( )
   (अ) जयशंकर प्रसाद (आ) अमृतलाल नागर (इ) प्रेमचंद (ई) रुक्मिणी देवी

II. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए -

1. प्रेमचंद युग के उपन्यासों में केंद्रीय विषय सामाजिक .....का उद्घाटन था।
2. 'परख' उपन्यास के रचनाकार का नाम ..... है।
3. भगवत प्रसाद शुक्ल ने ..... आंदोलन विषयक उपन्यास का लेखन किया।

III. सुमेल कीजिए -

1. मेम और साहब	(अ) आदित्यप्रसन्न राय
2. मुन्नी की डायरी	(आ) भगवत प्रसाद शुक्ल
3. मीठी चुटकी	(इ) रुक्मिणी देवी
4. भारत प्रेमी	(ई) त्रिमूर्ति

9.8 संदर्भ ग्रंथ

1. प्रेमचंद और उनका युग : रामविलास शर्मा
2. प्रेमचंद घर में : शिवरानी देवी
3. हिंदी उपन्यास - एक अंतर्यात्रा : रामदरश मिश्र
4. हिंदी उपन्यास का इतिहास : गोपाल राय

इकाई: 10 प्रेमचंद : एक परिचय

रूपरेखा

10.1 प्रस्तावना
10.2 उद्देश्य
10.3 मूल पाठ :प्रेमचंद : एक परिचय
10.3.1 प्रेमचंद का जीवन परिचय
10.3.2 प्रेमचंद का रचना संसार
10.3.3 हिंदी साहित्य में प्रेमचंद का स्थान
10.4 पाठ सार
10.5 पाठ की उपलब्धियाँ
10.6 शब्द संपदा
10.7 परीक्षार्थ प्रश्न
10.8 पठनीय पुस्तकें

10.1 प्रस्तावना

प्रिय छात्रो! आप जान चुके हैं गद्य साहित्य की परिधि बहुआयामी होने के कारण इसकी अनेक विधाओं में उपन्यास भी एक विधा है। आधुनिककाल में काव्य के साथ-साथ गद्य विधा का भी खूब विकास हुआ। कथा साहित्य में प्रेमचंद का महत्वपूर्ण स्थान है। इन्हें उपन्यास सम्राट भी कहा जाता है। प्रेमचंद की रचनाओं में ग्रामीण जीवन की सुखद, निश्चल झलक है तो जमींदारी शोषण का खुलासा भी है। प्रेमचंद ने तीन सौ कहानियाँ, तेरह उपन्यास, निबंध, आलेख, भाषण लिख कर हिंदी गद्य साहित्य को समृद्ध किया। किसानों और स्त्रियों के प्रति हुए अन्याय को उपन्यास सम्राट प्रेमचंद ने अभिव्यक्ति दी। सामाजिक समस्याओं और रूढ़ियों के विरुद्ध आवाज उठाकर समाज का मार्गदर्शन किया। ये देशभक्त थे। स्वदेशी आंदोलन से प्रभावित होकर सरकारी नौकरी छोड़ दी थी। कथाकार मुंशी प्रेमचंद ने अपनी रचनाओं में आम आदमी की व्यथा को अभिव्यक्त किया।

10.2 उद्देश्य

प्रिय छात्रो! इस इकाई के अध्ययन से आप -

- कथा सम्राट प्रेमचंद के जीवन से परिचित हो सकेंगे।
- उनकी याचनाओं की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- उनकी कहानियों की विशेषताओं से परिचित हो सकेंगे।
- उनके उपन्यासों की विशेषताओं से अवगत हो सकेंगे।
- हिंदी साहित्य में प्रेमचंद के महत्व और स्थान को समझ सकेंगे।

10.3 मूल पाठ : प्रेमचंद : एक परिचय

10.3.1 प्रेमचंद का जीवन परिचय

आधुनिक गद्य साहित्य में विशेषकर कथा साहित्य को प्रगति मार्ग पर ले जाने वाले उपन्यास सम्राट 'प्रेमचंद' का जन्म 31 जुलाई, 1880 ई. को उत्तर प्रदेश के वाराणसी के लमही ग्राम में हुआ था। प्रेमचंद का वास्तविक नाम धनपत राय था उनके पिता का नाम अजायब राय था, वे डाकखाने में कार्य करते थे। इनके चाचा इन्हें नवाबराय कहा करते थे। बचपन में ही माता का स्वर्गवास हो गया था। सौतेली माँ के नियंत्रण में रहने के कारण प्रेमचंद का बचपन ममता, प्रेम और स्नेह से वंचित रहा अत: उनका प्रारंभिक जीवन संघर्षमय रहा। धनपत को बचपन से कहानी सुनने का बड़ा शौक था। इसी शौक ने प्रेमचंद को महान कहानीकार, उपन्यासकार बना दिया। प्रेमचंद ने पढ़ाने में तेज होने के कारण मैट्रिक परीक्षा पास कर ली। कठोर परिश्रम के चलते इंटरव्यू भी जल्दी ही पास कर लिया। कम उम्र में ही प्रेमचंद का विवाह कर दिया गया, किंतु परिवारिक कलह के कारण इन्होंने बाद में बाल विधवा शिवरानी देवी से विवाह किया। प्रेमचंद उपनाम से लिखने वाले धनपत राय श्रीवास्तव हिंदी और उर्दू के महानतम भारतीय लेखकों में से एक हैं।

प्रेमचंद बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। कलम के सिपाही अर्थात प्रेमचंद ने कलम की ताकत से समाज को नई दिशा देने की कोशिश की। समाज में व्याप्त कुप्रथाओं, रूढ़ियों, दलित, जातिगत भेद आदि समस्याओं पर कुठाराघात किया। देश परतंत्रता की बेड़ियों में जकड़ा था उसी समय प्रेमचंद ने न केवल ब्रिटिश सत्ता का विरोध किया बल्कि समाज को खोखला करती हुई परंपराओं पर भी अपने लेखन से ज्वाला जगाई। हिंदी साहित्य में प्रेमचंद जी का नाम बहुत ऊँचा है।

बचपन के अकेलेपन को दूर करने के लिए किताबों का सहारा लिया। प्रेमचंद ने रूढ़ियों का विरोध न केवल लिखने के लिए किया बल्कि बाल विधवा शिवरानी देवी से शादी कर क्रांतिकारी कदम उठाया। कम उम्र में पिता की मृत्यु के बाद प्रेमचंद के कंधों पर घर और अध्ययन दोनों की जिम्मेदारी आ पड़ी। उन्हें अपने कौशल के कारण सरकारी स्कूल में नौकरी मिली। प्रेमचंद पर महात्मा गांधी तथा स्वदेशी आंदोलन का प्रभाव रहा। ब्रिटिश राज के लिए प्रेमचंद एवं उनका साहित्य खतरा बन रहा था इसलिए उनके उपन्यास 'सोजे वतन' की ब्रिटिश हुकूमत ने पाँच सौ से अधिक प्रतियाँ जला दी थी। इससे स्पष्ट होता है कि प्रेमचंद ने अंग्रेजी शासन के नाक में दम कर दिया था।

बोध प्रश्न

- प्रेमचंद के बचपन के बारे में लिखिए।
- प्रेमचंद ने समाज को नई दिशा दी इस पर अपने विचार लिखिए।
- अंग्रेज सरकार ने सोजे वतन पर प्रतिबंध क्यों लगाया?

10.3.2 प्रेमचंद का रचना संसार

प्रेमचंद जी ने हिंदी साहित्य को समृद्ध किया। उनकी कृतियाँ भारत के सर्वाधिक विशाल और विस्तृत वर्ग की कृतियाँ हैं। उन्होंने उपन्यास, कहानी, नाटक, समीक्षा, लेख, संपादकीय, संस्मरण आदि अनेक विधाओं में साहित्य की सृष्टि की किंतु प्रमुख रूप से वे कथाकार हैं। उन्हें अपने जीवनकाल में ही' उपन्यास सम्राट 'की पदवी मिल गई थी। प्रेमचंद ने कुल पन्द्रह उपन्यास, तीन सौ से अधिक कहानियाँ, तीन नाटक, दस अनुवाद पुस्तकें तथा हजारों पृष्ठों के लेख, भाषण, भूमिका, पत्र आदि की रचना की थी। प्रेमचंद की कहानियों में अधिकतर ग्रामीण जीवन से संबंधित घटनाएँ हैं। सत्याग्रह आंदोलन जमींदारों, साहूकारों एवं पदाधिकारियों की समस्याओं के बारे में प्रेमचंद ने कई कहानियों में लिखा था। प्रेमचंद नाम से उनकी पहली कहानी 'बड़े घर की बेटी' ज़माना पत्रिका में छपी थी।

प्रेमचंद की प्रमुख रचनाएँ इस प्रकार हैं - उपन्यास : सेवासदन, प्रेमाश्रम, रंगभूमि, निर्मला, कायाकल्प, अहंकार, प्रतिज्ञा, गबन, गोदान, मंगलसूत्र (अपूर्ण)। कहानी संग्रह : सप्तसरोज, नवनिधि, प्रेमपूर्णिमा, प्रेम-पचीसी, प्रेम-प्रतिमा, प्रेम-द्वादशी, समरयात्रा, मानसरोवर। नाटक : संग्राम, कर्बला, प्रेम की वेदी। इनके अतिरिक्त बाल साहित्य और निबंध भी उपलब्ध हैं।

10.3.3 हिंदी साहित्य में प्रेमचंद का स्थान

साहित्य का प्रभाव समाज पर पड़ने के लिए कुछ समय लगता है। समाज को हर क्षण प्रभावित करने वाली शक्ति साहित्य में समाहित होती है। साहित्य की प्रेरणा से समाज अपना रूप बदलता है और नवीनता प्राप्त करता है। प्रेमचंद के साहित्य में भी सर्वत्र कला नजर आती है। जीवन का अर्थ भी उनके लिए वर्तमान सामाजिक जीवन था।

प्रेमचंद वर्तमान से दूर नहीं गए। वे आजीवन ईमानदारी के साथ वर्तमान काल की अपनी वर्तमान अवस्था का विश्लेषण करते रहे। उन्होंने देखा कि बंधन समाज के भीतर है बाहर नहीं। प्रेमचंद का मानना था कि एक बार अगर किसान तथा गरीब यह अनुभव कर सकें कि संसार की कोई भी शक्ति उनको दबा नहीं सकती, तो वे निश्चय ही अजय हो जाएँगे।

'गोदान' के अपने मौजी पात्र (मेहता) से कहलवाते हैं, "मैं भूत की चिंता नहीं करता, भविष्य की परवाह नहीं करता; भविष्य की चिंता हमें कायर बना देती है। भूत का भार हमारी कमर तोड़ देता है। हममें जीवनी शक्ति इतनी कम है कि भूत और भविष्य में फैलाने से क्षीण हो जाती है। हम व्यर्थ का भार अपने ऊपर लादकर रूढ़ियों और विश्वासों तथा इतिहासों के मलबे के नीचे दबे पड़े हैं। उठने का नाम ही नहीं लेते।" यह तार्किक सोच थी प्रेमचंद की। इसी दृष्टिकोण से प्रेमचंद ने समाज को नई दिशा दी। असहाय, गरीब किसानों की अभिव्यक्ति थे प्रेमचंद जी।

मुंशी प्रेमचंद ने "साहित्य को जीवन की आलोचना कहा है।" साहित्य मानव जीवन से जुड़ा है, कहीं पर भी वह मानव जीवन से अलग नहीं है। उसका सृजन मानव अपने जीवन के लिए करता है। मनुष्य सामाजिक प्राणी है, वह अकेला नहीं रह सकता। मानव अपने जीवन में एकाकीपन से मुक्ति पाने के लिए ही साहित्य का सृजन करता है।

साहित्य मनुष्य के भाषाबद्ध विचारों का प्रवाह है। अतः साहित्य और समाज का अन्योन्याश्रित संबंध है।

बोध प्रश्न

- प्रेमचंद के किसानों के प्रति क्या विचार थे?
- मेहता प्रेमचंद की किस कृति का पात्र है?
- मुंशी प्रेमचंद ने साहित्य के बारे में क्या कहा?

कहानियों की विशेषताओं के आधार पर

प्रेमचंद ने अपनी कहानियों में मध्यवर्गीय पात्रों का सजीव चित्रण किया है। प्रेमचंद के वकील, पुलिस अधिकारी, डॉक्टर, अध्यापक आदि मध्यम वर्गीय पात्र किसी न किसी रूप में निम्न वर्ग का शोषण सिद्ध होता है। उदाहरण के लिए 'नृत्य के पीछे' कहानी के ईश्वरचंद्र की पत्नी मानकी कहती है कि "इसी शहर में सैकड़ों वकील और बैरिस्टर पड़े हुए हैं, लेकिन एक व्यक्ति भी ऐसा नहीं है जिसके हृदय में दया हो, जो स्वार्थपरता के हाथों बिक न गया हो। छल धूर्तता इस पेशे के मूल तत्व हैं। इसके बिना किसी तरह निर्वाह नहीं।"

प्रेमचंद ने भी अपनी कहानियों के द्वारा उच्च वर्ग के जमीदारों का सजीव चित्रण दोनों तरफ से दिखाया है। जमींदार केवल शोषक अत्याचारी दुराचारी ही नहीं बल्कि अच्छे, दयालु, परोपकारी और आदर्शवादी उदार और न्यायप्रिय भी थे।

'मंदिर और मस्जिद' कहानी के चौधरी इशरत अली अपनी रियासत के दयालु और न्यायप्रिय जमीदार हैं। इसी प्रकार बलिदान कहानी के जमींदार 'ओंकारनाथ' बहुत ही साधारण जमींदार हैं जो जमींदारी के रौब, घमंड से कोसों दूर हैं।

'पूस की रात' शीर्षक कहानी के नायक हल्कू एक शोषित वर्ग का प्रतिनिधि है वह एक मामूली किसान है उसकी पत्नी का नाम मुन्नी है जो निर्भयी, स्वाभिमानी और विचारशील है। हल्कू के रात दिन खेत में परिश्रम करने पर भी ज्यादा उपज नहीं होती। उपज के पैसे इतने कम हैं, जिसे लगान की बाकी भी नहीं चुका सकता है। लगान की पूरी रकम चुकाने के लिए अपने खेत के काम के साथ दूसरों के खेतों में मेहनत मजदूरी करता है। हल्कू को पूस के महीने में कड़कड़ाती ठंड में रात में पुरानी चादर के सहारे सोना पड़ता है। महाजन और जमीदार लोग न

जाने हल्कू जैसे कितने किसानों का शोषण करते हैं। हल्कू आर्थिक दृष्टि से इतना विपन्न है कि वह एक कंबल तक नहीं खरीद सकता। पूरी रात पत्तों से बनी मढ़ैया में रहता है।

इस कड़कड़ाती ठंड को कम करने के लिए हल्कू सूखे पत्तों से ताप देता है। इतने में जानवर की आहट पाकर भी जबरे कुत्ते के पास से वह बाहर निकलने की हिम्मत नहीं कर सकता। और नीलगाय पूरी फसल को चौपट कर देती है। सारा खेत जल जाता है। उसकी पत्नी कहती है कि सारे खेत का सत्यानाश हो गया और तुम इस तरह से सो रहे हो हल्कू ?ने प्रसन्न मुख से कहा अच्छा हुआ रात की ठंड में यहाँ सोना तो न पड़ेगा। वह प्रसन्नता से कहता है कि पूस की रात यहाँ बिताने से मजदूरी करके मालगुजारी भरना बेहतर है।

नमक का दरोगा, सभ्यता का रहस्य, घास वाली, ठाकुर का कुआँ, सुभागी, सवा सेर गेहूँ, मंत्र, लांछन, गरीब की हाय, बेटी का धन, विध्वंस आदि कहानियों में प्रेमचंद ने समाज के हर पहलू को दर्शाया है। शोषण, भाईचारा, लड़कियों की बेबसी अदि समस्याओं को रेखंकित किया है तो कहीं उनकी आवाज़ को शक्ति प्रदान की है। जो समाज में व्याप्त परंपराओं के नाम पर दकियानूसी सोच को बदने की क्षमता रखती हैं।

प्रेमचंद ने हिंदी कहानी में एक ऐसी धारा की शुरूआत की जिसमें आदर्श और यथार्थ का सुंदर समन्वय किया जाता है।

बोध प्रश्न

- प्रेमचंद की कहानियों के मुख्य पात्र किस वर्ग के होते हैं?
- प्रेमचंद की कहानियों में किस तरह की समस्याओं को देखा जा सकता है?

उपन्यासों की विशेषताओं के आधार पर

'सेवा सदन' - इसमें दहेज, अनमेल विवाह, वेश्यावृत्ति व उसके सुधार के बारे में प्रेमचंद ने अपने विचार व्यक्त किए हैं। कार्ल मार्क्स के समान ही प्रेमचंद भी वेश्यावृत्ति का कारण काम भावना को न मानकर आर्थिक व्यवस्था मानते थे। सेवासदन उपन्यास की सुमन दरोगा कृष्णचंद की बेटी है। पुत्री के विवाह में दहेज देने के लिए दरोगा जी घूस लेते हैं। फलत :चार साल का कारावास दंड मिलता है। दहेज के अभाव के कारण सुमन का अनमेल विवाह मासिक पंद्रह रुपए के वेतन भोगी ,अधेड़ उम्र वाले गजाधर के साथ होता है। निर्धन गजाधर दरोगा की बेटी की छोटी-बड़ी माँगों को भी पूरी नहीं कर सकता परिणामस्वरूप सुमन में असंतोष की भावना जाग उठती है। सुमन चारदीवारी से बाहर निकल कर अपनी सखी सुभद्रा जो शहर के बड़े वकील की पत्नी थी, के यहाँ आती जाती है। इससे नाराज़ गजाधर उस पर आरोप लगाता है कि वकील साहब से मन मिला है, तो भला मजदूर की परवाह क्यों करने लगी? इस तरह दोनों के बीच झगड़ा होता है। वह सुमन को घर से बाहर निकाल देता है।

दरोगा कृष्ण चंद के घर के सामने ही भोली बाई वेश्या रहती है, वह धन के साथ-साथ धर्मात्मा लोगों का आदर भी पाती है। सुमन उससे अपनी तुलना करने लगती है पिता की

उदारता व पति की निर्धनता, तिरस्कार और सुमन की विलासिता का भयंकर परिणाम यह निकलता है कि सुमन भोली बाई के द्वारा दालमंडी की सुमन बाई बन जाती है। अंत में गजाधर भी अपनी गलती सुधार कर साधु जीवन बिताने लगता है। सुमन पश्चाताप व्यक्त करती है तथा त्याग और सेवा की जिंदगी गुजारने के लिए विधवाओं के आश्रम 'सेवा सदन' में उनकी सेवा करने लगती है।

प्रेमचंद का विश्वास है कि जिस समाज में अत्याचारी जमींदार, रिश्वतखोर, कर्मचारी, अन्यायी महाजन, स्वार्थी बंधु आदि का अंत होगा तभी वेश्यागृह-दालमंडी खत्म होंगे। उससे पहले नहीं। अर्थात समाज में फैली कुव्यवस्था कहीं ना कहीं उसकी आर्थिक विपन्नता का प्रतीक होती है।

'वरदान' - इस उपन्यास का प्रकाशन 1920 ई. में हुआ। यह पहले उर्दू में लिखा गया था जिसका हिंदी में रूपांतरण कर प्रेमचंद ने उपन्यास को 'वरदान' शीर्षक से प्रकाशित करवाया। यह प्रेमचंद की एक अपरिपक्व कृति है-कथानक की दृष्टि से भी और कला की दृष्टि से भी। इस कथा की शुरूआत देवी के वरदान से शुरू होती है। कथानक को इस प्रकार ढाला गया है जिससे देवी का वरदान सत्य हो किंतु कथा का गठन ठीक ढंग से नहीं हो पाया है। कथा को प्रारंभ में जैसी उत्सुकता है वह पाठक के मन को पकड़ लेता है लेकिन कथ्य का विकास या अन्त अपना प्रभाव नहीं छोड़ पाता है।

'प्रेमाश्रम' - प्रेमचंद के प्रसिद्ध उपन्यासों में से एक। इसका प्रकाशन सन् 1921 में हुआ था। इसमें लेखक ने ग्रामीण जीवन के चित्रण को प्रधानता दी है। इस उपन्यास में प्रेमचंद ने ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के अंतर्गत किसानों और जमींदारों के सम्बन्धों का चित्रण किया है। 'प्रेमाश्रम' की कहानी ब्रिटिश शासन की छाया में बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्ध की भारतीय जीवन की वास्तविक कहानी है। विदेशियों का एकमात्र लक्ष्य देश का आर्थिक शोषण करना था। इस उद्देश्य के पूर्त्ति के लिए ब्रिटिश शासन ने प्रशासन तंत्र, जमींदार वर्ग और साहूकार-महाजन को अपना सहायक बना लिया था। 'प्रेमाश्रम' का वास्तविक संघर्ष जमींदारों और किसानों के बीच है जिसमें सरकारी कर्मचारी किसी न किसी रूप में सम्मिलित है। इस बाहरी संघर्ष के साथ ही एक आंतरिक संघर्ष भी उपन्यास में चल रहा है। वह संघर्ष है हिंसा और अहिंसा में, अत्याचार और प्रेम में, नीचता और उच्चाशय में। इस उपन्यास में हिंसा, अत्याचार और नीचता का प्रतीक ज्ञानशंकर है और अहिंसा और प्रेम की प्रतिमूर्त्ति उसका भाई प्रेमशंकर है। किसानों का बाहरी संघर्ष प्रेम के आंतरिक संघर्ष का भाग बन जाता है। इस प्रकार इस उपन्यास का वास्तविक संघर्ष असत् और सत् का है जिसमें सत् अन्त में विजयी होता है।

'रंगभूमि' - 'रंगभूमि' प्रेमचंद का सबसे वृहदाकार उपन्यास है। 'गोदान' के उपरान्त यह उपन्यास प्रेमचंद की श्रेष्ठ उपन्यास है। इस उपन्यास का मुख्य उद्देश्य गाँव की छाती पर पनपने वाले उद्योग के विषैले प्रभाव को चित्रित कर उसका विरोध करना है। इस उपन्यास के दो पक्ष हैं- (1) उद्योगीकरण और (2) उसके विरोधियों। उद्योगीकरण के समर्थक मि. जॉनसेवक हैं और

उनके सहयोगी राजा, रईस और सराकार हैं। अपने अधिकारों की रक्षा करते हुए इसका विरोध करने वाले पाँडेपुर गाँव के निवासी हैं। सूरदास उनका मुखिया है। यह रंगभूमि का नायक है- जाति का चमार, कर्म से भिखारी, जन्म से अंधा। टूटी-फूटी झोंपड़ी में रहता है। बाघ दृष्टि से वह जितना साधारण है, भीतर से उतना ही असाधारण। वह दुःख-सुख में निरंतर हँसने वाला निरभिमान, दयालु और परोपकारी है। इसकी शक्ति उसके अपने गाँव तक ही सीमित नहीं है। इसके पवित्र उद्देश्य में सभी इसका साथ देते हैं यहाँ तक कि विनयसिंह, सोफिया और इंदु भी सूरदास के संघर्ष में सहयोगी बनते हैं जो उद्योगीकरण के समर्थक हैं। इस उपन्यास में मुख्य रूप से भारतीय जनता का शोषण, देशी नरेशों एवं जमींदारों की स्थिति, अंग्रेजों का जाल, शासक वर्ग की अत्याचारी मनोवृत्ति, सत्याग्रह-आंदोलन आदि पर प्रकाश डाला गया है। गांधीवादी नीति और दर्शन के कारण इस उपन्यास का अपना अलग महत्व है।

'कायाकल्प' - इसका प्रकाशन 1924 ई. में हुआ। इस उपन्यास में प्रेमचंद की नई मनोवृत्ति प्रस्तुत है। इसमें अलौकिक कथा का समावेश है। इसमें आध्यात्मिक चित्रण की प्रधानता के साथ ही पुनर्जन्म, योग तथा चिरयौवन प्राप्ति के लिए की जाने वाली विविध क्रियाओं का अंकन भी है लेखक ने इस उपन्यास में रानी देवप्रिया की अतृप्त वासना का बहुत नग्न चित्रण किया है। रियासतों के जीवन को यथार्थ रूप में चित्रित किया गया है।

'निर्मला' उपन्यास में नारी की व्यथा का सजीव चित्रण किया गया है। उपन्यास की कथावस्तु मुख्यत दहेज :प्रथा पर आधारित है। इसमें यह दिखाया गया है कि नारी किस प्रकार सामाजिक रूढ़ियों की शिकार होती है। इसमें एक साथ दो समस्याओं पर विचार किया गया है। एक तो दहेज और दूसरा पुनर्विवाह का।

'प्रतिज्ञा' भी एक सामाजिक उपन्यास है। इस उपन्यास की मुख्य समस्या है विधवा-विवाह की। प्रेमचंद ने इस उपन्यास में विधवाओं की समस्याओं का समाधान 'वनिता भवन' की स्थापना द्वारा किया है।

'गबन'- इसका प्रकाशन सन् 1931 में हुआ। यह एक समस्या प्रधान उपन्यास है। इस उपन्यास की मूल 'गबन'- समस्या आभूषण-प्रेम है। भारतीय नारी के हृदय में आभूषण प्रेम इतना तीव्र होता है कि कभी-कभी इसके सामने पति-प्रेम तो क्या जीवन के अन्य सभी प्रकार के सुखों की बलि चढ़ा दी जाती है। नारी हृदय के इसी उत्कट आभूषण-प्रेम से उत्पन्न दुष्परिणामों का यथार्थ एवं कलात्मक ढंग से सफलतापूर्वक चित्रण इस उपन्यास में किया गया है।

'कर्मभूमि'- इसमें जीवन में कर्म का गौरव प्रतिपादित करने वाला उपन्यास है। इसमें स्वदेशी आंदोलन का चित्र उपस्थित किया गया है। यंत्रणाओं और दासता के विरोध में भारतीय समाज के सभी वर्गों ने, स्त्रियों और पुरुषों ने जो विद्रोह किया और जिस प्रकार अनेक कष्ट सहते हुए वे आत्म-बलिदान के पथ पर बढ़े इसका प्रभावशाली चित्रण इस उपन्यास में हुआ है। इसमें प्रेमचंद जी ने कर्म की सभी महत्त्वपूर्ण और व्यापक दिशाओं को समेट लिया है।

'गोदान' - यह प्रेमचंद का एक ऐसा वृहत उपन्यास है जिसमें एक साथ समाज में व्याप्त अनेक समस्याओं जैसे ऋण, शोषण, अछूत, नारी दुर्दशा तथा शहरी जीवन का चित्रण किया गया है। प्रेमचंद ने यह दिखाया है कि समाज में फैली प्रथाएँ किसानों के लिए दमन तथा शोषण का साधन बन जाती है। इसमें मुख्य रूप से दो कथाएँ हैं। एक ग्रामीण जीवन से संबंधित होरी की कथा दूसरी नागरिक जीवन से संबंधित मेहता मालती की कथा। प्रेमचंद स्त्री के गुणों का वर्णन मेहता के मुँह से कहलवाते हैं। "मेरे ज़हन में औरत वफ़ा और त्याग की मूर्ति है, अपनी कुर्बानी से अपने को मिटाकर पति की आत्मा का अंग बन जाती है।"

प्रेमचंद के उपन्यासों में स्त्री के विविध रूप और उनकी विविध समस्याएँ उजागर हुई हैं। स्त्रियाँ चारदीवारी में रहकर जीती हैं, पति की पैर की जूती में ही उसका स्वर्ग मानकर जीने में ही उसकी भलाई है। ऐसी विचारधाराओं पर प्रेमचंद जी ने नजर डाली है। समाज में अंधविश्वासओं के कारण विधवाओं को अमंगल का प्रतीक माना जाता था। दूसरी तरफ उनका शारीरिक व मानसिक शोषण होता था। ऐसी स्थिति में प्रेमचंद जी ने बाल विधवाओं के पुनर्विवाह का समर्थन किया और अपने समर्थन की पुष्टि के लिए स्वयं प्रेमचंद ने बाल विधवा शिवरानी देवी से विवाह किया था।

'मंगलसूत्र' प्रेमचंद का अधूरा उपन्यास है। इसके उनके पुत्र अनृतराय ने पूरा किया था।

बोध प्रश्न

- 'सेवासदन' उपन्यास किस सामाजिक समस्या पर आधारित है?
- 'प्रतिज्ञा' उपन्यास की मुख्य समस्या क्या है?

यहाँ यह कहना भी आवश्यक है कि हिंदी साहित्य के जिस युग को कविता के क्षेत्र में छायावाद युग कहा जाता है, उपन्यास के क्षेत्र में वह निर्विवाद रूप से 'प्रेमचंद युग' है, "क्योंकि 'सेवा सदन' (1918) का प्रकाशन न केवल प्रेमचंद (1880-1936) के साहित्यिक जीवन की, वरन हिंदी उपन्यास की भी एक महत्वपूर्ण घटना थी। 'सेवा सदन' पूर्ववर्ती कथा साहित्य का अभूतपूर्व विकास था - इससे पहले कथा साहित्य में आ तो अजीबो-गरीब घटनाओं के द्वारा कुतूहल और चमत्कार की सृष्टि रहती थी अथवा आर्य समाज और तत्समान अन्य सामाजिक आंदोलनों से प्रभावित समाज सुधारों का प्रचार ही उसकी उपलब्धि रह गई थी। जीवन की सही अभिव्यक्ति का साधन वह नहीं बन पाया था। ... हिंदी में 'उपन्यास' की कोई परंपरा न होने के कारण प्रेमचंद को उसका समुचित ढाँचा (फॉर्म) नहीं मिल रहा था। ... 'सेवा सदन' उनकी पहली प्रौढ़ कृति है, जहाँ से उनके नए औपन्यासिक जीवन का ही नहीं, बल्कि हिंदी उपन्यास के एक नए युग का प्रादुर्भाव हुआ।" (सं. नगेंद्र, हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ. 558)।

हिंदी उपन्यास को प्रेमचंद की सबसे बड़ी देन यह है कि उन्होंने हिंदी कथा साहित्य को 'मनोरंजन' के स्तर से उठाकर जीवन के साथ सार्थक रूप में जोड़ा। उनका उपन्यास 'गोदान' तो ग्रामीण जीवन और कृषि संस्कृति का ऐसा बेजोड़ महाकाव्यात्मक उपन्यास है जिसकी मिसाल

विश्व साहित्य में भी ढूँढना आसान नहीं है। दरअसल, यह प्रेमचंद की महान प्रतिभा का ही चमत्कार था कि विधा के रूप में उदित होने के तुरंत बाद हिंदी उपन्यास और कहानी को इतनी जल्दी परिपक्व होने का अवसर मिल गया है। डॉ. रामस्वरूप चतुर्वेदी का यह मत इस बारे में द्रष्टव्य है -

> "प्रेमचंद हिंदी उपन्यास की वयस्कता की प्रभावशाली उद्घोषणा है। सामाजिक यथार्थ की जिस समस्या को उनके पूर्ववर्ती उपन्यासकारों ने आदर्श और यथार्थ के खानों में बाँटकर देखा था, उसे प्रेमचंद एक संपृक्त और संश्लिष्ट रूप में समझते हैं। ... मौलिक मनोवृत्तियों की समझ में से वे जीवन के प्रति एक नया दृष्टिकोण विकसित करते हैं, जिसे उन्होंने 'आदर्शोन्मुख यथार्थवाद' का नाम दिया है, यद्यपि अपनी पूर्ववर्ती रचनाओं में वे धीरे-धीरे और छुपचाप यथार्थ की ओर झुकते जाते हैं। यहाँ स्मरणीय है कि यथार्थ को वे घटना के स्तर पर उतना चित्रित नहीं करते, जितना अनुभूति के स्तर पर।" (हिंदी साहित्य : संवेदना और विकास, पृ. 140)

हिंदी कथा साहित्य में प्रेमचंद के महत्व को उजागर करते हुए आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने ठीक ही लिखा है -

> "आप बेखटके प्रेमचंद का हाथ पकड़कर मेड़ों पर गाते हुए किसान को, अंतःपुर में मान किए बैठी प्रियतमा को, कोठे पर बैठी हुई वारवनिता को, रोटियों के लिए ललकते हुए भिखमंगों को, कूट परामर्श में लीन गोयेन्नों को, ईर्ष्या-परायण प्रोफेसरों को, दुर्बल हृदय बैंकरों को, साहसपरायण चमारिन को, ढोंगी पंडितों को, फरेबी पटवारी को, नीचाशय अमीर को देख सकते हैं और निश्चिंत होकर विश्वास कर सकते हैं कि जो कुछ आपने देखा वह गलत नहीं है। उससे अधिक सचाई से दिखा सकने वाले परिदर्शक को अभी हिंदी-उर्दू की दुनिया नहीं जानती।" (हजारीप्रसाद द्विवेदी, हिंदी साहित्य : उद्भव और विकास, पृ.229)

बोध प्रश्न

- प्रेमचंद के संबंध में रामस्वरूप चतुर्वेदी क्या कहते हैं?
- प्रेमचंद के महत्व के बारे में हजारी प्रसाद द्विवेदी क्या कहते हैं?

प्रेमचंद की जीवन दृष्टि

एक रचनाकार के व्यक्तित्व निर्माण और जीवन दृष्टि के विकास में समकालीन परिवेश की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। प्रेमचंद के व्यक्तित्व में अमृतराय का यह कथन उल्लेखनीय है - "प्रेमचंद की सरलता सहज है। उसमें कुछ तो इस देश की पुरानी मिट्टी का संस्कार है, कुछ उसका नैसर्गिक शील है, संकोच है, कुछ उसकी गहरी जीवन दृष्टि है और कुछ उसका सच्चा आत्मगौरव है, जो किसी तरह के आत्मप्रदर्शन या विज्ञापन को उसके नजदीक घटिया बना देता

है।" बाहर से सीधा-सादा दीखने वाले प्रेमचंद अंदर से क्रांतिकारी स्वभाव के थे। 1906 में विधवा विवाह की पहल करना एक क्रांतिकारी कदम ही तो है। 'जमाना' पत्रिका में उन्होंने 'रफ़्तारे जमना' शीर्षक स्तंभ लेखन करते थे। उसमें देश में होने वाले परिवर्तनों और राष्ट्रीय चेतना की झलक प्रस्तुत करने वाली टिप्पणियाँ होती थीं। कहना न होगा, सरकारी नौकरी करने वाले के लिए यह भी एक दुस्साहस ही था। उन्हें समकालीन राजनीति में भी दिलचस्पी थी। उनकी राजनीतिक चेतना की अभिव्यक्ति का माध्यम उनका साहित्य ही है।

कहा जाता है कि प्रेमचंद ने पहले से ही तोलस्तोय से सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह आदि की शिक्षा पहले से प्राप्त की थी। कर्मठता उनके स्वभाव का हिस्सा है। प्रेमचंद के जीवन के संबंध अमृतराय कहते हैं कि "उनका जीवन 'कलाकार' का नहीं, किसान का था, जिसके हाथ में कुदाल की जगह कलम थी।" राष्ट्रीय भावनाओं से संबंधित अनेक पहलुओं को उनकी कहानियों और उपन्यासों में देखा जा सकता है। विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार, स्वदेशी का प्रचार, स्त्रियों के सत्याग्रह आंदोलन में भाग लेना, जेल जाना, स्वयंसेवकों की गिरफ़्तारी, मद्य-निषेध, सरकारी स्कूलों का विरोध, विधवा पुनर्विवाह का समर्थन आदि अनेक घटनाओं को उनके कथा-साहित्य में देख सकते हैं। 'मैकू' शीर्षक कहानी में उन्होंने भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के एक मुख्य द्वंद्व हिंसावाद और अहिंसावाद के द्वंद्व को दर्शाया है। इस कहानी में लेखक ने बहुत प्रभावशाली ढंग से यह दिखाया है कि स्वतंत्रता आंदोलन केवल राजनैतिक संघर्ष ही नहीं था, बल्कि उसका सामाजिक पक्ष भी बहुत अधिक प्रबल था। महात्मा गांधी तथा दूसरे नेतागण यह मानते थे कि सामाजिक बुराइयों को दूर किए बिना लोगों को स्वतंत्रता आंदोलन से नहीं जोड़ा जा सकता। प्रेमचंद ने भी इसी तथ्य को इस कहानी के माध्यम से उजागर किया है।

'हंस' का पहला अंक 10 मार्च, 1930 को निकला था। संपादकीय टिप्पणी में प्रेमचंद ने ब्रिटिश सरकार की खुली आलोचना और नमक सत्याग्रह की प्रशंसा की। उन्होंने बनारसीदास चतुर्वेदी को एक पत्र में लिखा यथा - "इस समय तो सबसे बड़ी आकांक्षा यही है कि हम स्वराज्य-संग्राम में विजयी हों। धन या यश की लालसा मुझे नहीं रही। खाने भर को मिल ही जाता है। मोटर और बंगले की मुझे हवस नहीं है। हाँ, यह जरूर चाहता हूँ कि दो-चार ऊँची कोटि की पुस्तकें लिखूँ, पर उनका उद्देश्य भी स्वराज्य-विजय ही है।" (अमृतराय, कलम का सिपाही)

प्रेमचंद को किसानों से गहरा लगाव था। किसानों-मजदूरों की शोषण और दमन से मुक्ति को स्वराज्य से जोड़कर देखते थे। 'हंस' के दूसरे अंक में प्रेमचंद ने 'स्वराज्य से किसका अहित होगा?' शीर्षक टिप्पणी में लिखा है कि "इसमें संदेह नहीं कि स्वराज्य का आंदोलन गरीबों का आंदोलन है। अंग्रेजी राज्य में गरीबों, मजदूरों और किसानों की दशा जितनी खराब है, और होती जा रही है, उतनी समाज के और किसी अंग की नहीं। कांग्रेस के मेम्बर या लोग भी कभी-

कभी न्याय और नीति के नाते भले ही किसानों की वकालत करें, लेकिन किसानों के नाना प्रकार के दुखों और वेदनाओं की उन्हें वह असर नहीं हो सकती जो एक किसान को हो सकती है। सब छोटे-बड़े उसी को नोचते हैं, सब उसी का रक्त और माँस खा-खा कर मोटे होते हैं पर कोई उसकी खबर नहीं लेता। उसकी शक्ति बिखरी हुई है। अगर उन्हें संगठित करने की कोशिश की जाती है तो सरकार, जमींदार, सरकारी मुलाजिम और महाजन सभी भन्ना उठते हैं, चारों ओर से हाय-हाय मैच जाती है, बोलसेविज्म का हौवा बताया कर उस आंदोलन को जड़ से खोद कर फेंक दिया जाता है। इसलिए यह कहना गलत नहीं है कि स्वराज्य किसानों की माँग है, उन्हें जिंदा रखने के लिए आवश्यक है, अनिवार्य है।"

प्रेमचंद स्त्री के पक्षधर हैं। उनकी नारी दृष्टि प्रगतिशील है और नवजागरण की चेतना से अनुप्राणित है। बाल विवाह, वृद्ध विवाह, अनमेल विवाह, सती प्रथा, पर्दा प्रथा आदि के वे विरोधी थे। वे स्त्री शिक्षा और विधवा विवाह का समर्थन करते हुए दिखाई देते हैं। उनके कथा-साहित्य की स्त्रियाँ सशक्त हैं। 'घासवाली' की मुनिया, 'ठाकुर का कुआँ' की गंगी, 'पूस की रात' की मुन्नी, 'पत्नी से पति' की गोदावरी, 'गोदान' की धनिया आदि स्त्रियों को प्रेमचंद ने अन्याय के विरुद्ध संघर्ष करते हुए दिखाया है।

बोध प्रश्न

- प्रेमचंद की राजनीतिक चेतना की अभिव्यक्ति का माध्यम क्या था?
- प्रेमचंद का उद्देश्य क्या था?
- भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन का मुख्य द्वंद्व क्या था?
- सामाजिक बुराइयों को दूर किए बिना लोगों को किससे जोड़ा नहीं जा सकता?

10.4 पाठ सार

हिंदी साहित्य को प्रेमचंद जी ने अनेक दृष्टि से समृद्ध किया है। उनका साहित्य तत्कालीन सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, इतिहास का प्रतिनिधित्व करता है। प्रेमचंद महान ग्रामीण कथाकार रहे हैं। इनके साहित्य में समाज तथा विभिन्न वर्गों की अनेक समस्याओं और उनके समाधान चित्रित हैं। प्रेमचंद का साहित्य आदर्शोन्मुख यथार्थवाद का उदाहरण है।

आधुनिक हिंदी कथा साहित्य को समृद्ध करने में उपन्यास सम्राट प्रेमचंद का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। समाज की वास्तविकता को उन्होंने अपनी कलम से उतारा। इन्होंने 300 कहानियाँ और लगभग 13 उपन्यास लिखें। कहानियाँ 'मानसरोवर' में संकलित हैं।

प्रेमचंद ने तत्कालीन समस्याओं को न केवल उकेरा बल्कि उसका समाधान भी प्रस्तुत किया। प्रेमचंद एक महान कथाकार हैं। किसान, जमींदार, स्त्री आदि को केंद्र में रखकर कथाएँ लिखी। प्रेमचंद ने शोषण के विरुद्ध आवाज उठाई। स्त्रियों के प्रति नया दृष्टिकोण स्थापित किया।

समाज में व्याप्त परंपराओं कुरीतियों का खंडन किया। इन्हें' कलम का सिपाही 'कहा जाता है। प्रेमचंद की रचनाओं में अंग्रेजी सत्ता का विरोध रहा। ब्रिटिश शासन ने इनकी रचनाओं को जला दिया। फलस्वरुप धनपत राय को कभी नवाब राय तो कभी प्रेमचंद बनकर अपनी लेखनी चलानी पड़ी। ये संपादक भी रहे। बचपन गरीबी और संघर्ष में बीता। प्रेमचंद की दृष्टि में ग्रामीण जीवन का हर रूप नजर आता है, तो शहरी जीवन भी। प्रेमचंद असहाय गरीब किसानों की अभिव्यक्ति थे।

प्रेमचंद स्वदेशी आंदोलन से बहुत प्रभावित थे। इसका प्रभाव उनकी रचनाओं पर पड़ा। इन्होंने समाज को नया दृष्टिकोण दिया। 'सुभागी' कहानी में बेटी द्वारा पिता का अंतिम संस्कार करवा कर सदियों से चली आ रही परंपरा को तोड़ा और यह स्पष्ट किया कि' लड़की 'लड़कों से कम नहीं है। प्रेमचंद जी दूरदर्शी थे 'बड़े भाई साहब' कहानी में शिक्षा प्रणाली के दोषों की ओर संकेत किया गया है। रटन पद्धति को बच्चे के विकास के लिए गलत माना। इस प्रकार प्रेमचंद जी ने समाज में रहकर समाज की बुराइयों पर कुठाराघात किया। गबन, सेवा सदन, निर्मला आदि उपन्यासों में स्त्रियों की समस्याओं को न केवल उठाया बल्कि उनके जीवन को एक नई दिशा भी प्रदान की।

10 5.पाठ की उपलब्धियाँ

इस इकाई के अध्ययन से निम्नलिखित निष्कर्ष उपलब्ध हुए हैं -

1. प्रेमचंद ने हिंदी कथा साहित्य को परिपक्वता प्रदान की। इसीलिए उन्हें कथा सम्राट कहा जाता है।
2. प्रेमचंद ने साहित्य और सौंदर्य की कसौटी को बदलने का महत्वपूर्ण काम किया। इसीलिए वे युग-प्रवर्तक कथाकार माने जाते हैं।
3. प्रेमचंद ने मनोरंजन और विलासिता से युक्त साहित्य को खारिज किया तथा सामाजिक प्रयोजन को साहित्य की कसौटी बनाया।
4. प्रेमचंद छायावाद काल में रहकर भी उस काल की अतीत-जीविता की प्रवृत्ति से अछूते रहें। उसके स्थान पर उन्होंने आदर्शोन्मुख यथार्थ का दर्शन प्रस्तुत किया।
5. प्रेमचंद के कथा साहित्य में किसानों, स्त्रियों और दलितों की चेतना का जो स्वरूप दिखाई देता है आगे चलकर उसी से किसान विमर्श, स्त्री विमर्श और दलित विमर्श का विकास हुआ। यही कारण है कि प्रेमचंद आज भी प्रासंगिक है।

10.6 शब्द संपदा

1. आख्यायिका = शिक्षाप्रद ,कल्पित कथा
2. दकियानूसी = पुराने विचारों का समर्थक
3. दूरदर्शी = दूर की बात सोचने वाला

4. दृष्टिकोण = सोचने समझने का पहलू
5. निर्वाह = निबाहना
6. प्रतिनिधि = किसी का स्थानापन्न व्यक्ति
7. विध्वंस = विनाश
8. विश्लेषण = छानबीन करना
9. समीक्षा = गुण-दोष विवेचन

10 7.परीक्षार्थ प्रश्न

खंड (अ)

दीर्घ श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर 500 शब्दों में लिखिए।

1. प्रेमचंद के व्यक्तित्व और कृतित्व पर प्रकाश डालिए।
2. हिंदी साहित्य में प्रेमचंद के स्थान एवं महत्व को निरूपित कीजिए।
3. प्रेमचंद के प्रमुख उपन्यासों के कथ्य पर प्रकाश डालिए।

खंड (आ)

लघु दीर्घ श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर 200 शब्दों में लिखिए।

1. प्रेमचंद के जीवन से संबंधित पहलुओं की चर्चा कीजिए।
2. 'सेवा सदन' उपन्यास के कथ्य पर संक्षिप्त रूप में प्रकाश डालिए।
3. 'गोदान में एक साथ समाज में व्याप्त अनेक समस्याओं का चित्रण है।' इस कथन को निरूपित कीजिए।
4. प्रेमचंद की जीवन दृष्टि पर प्रकाश डालिए।

खंड (स)

I. सही विकल्प चुनिए -

1. पूस की रात का हल्कू किस वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है? ( )
   (अ) शोषक वर्ग (आ) शोषित वर्ग (इ) धनवान वर्ग
2. गोदान मुख्यतः किस समस्या पर आधारित है? ( )
   (अ) किसान (आ) स्त्री (इ) मजदूर
3. प्रेमचंद किस आंदोलन से बहुत प्रभावित थे? ( )
   (अ) विदेशी (आ) मजदूर (इ) स्वदेशी

II. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए -

1. प्रेमचंद का साहित्य ..... का उदाहरण है।
2. प्रेमचंद के स्वभाव का हिस्सा ..... है।
3. प्रेमचंद की नारी दृष्टि ..... चेतना से अनुप्राणित है।
4. प्रेमचंद का अधूरा उपन्यास ..... है।

III. सुमेल कीजिए -

1. निर्मला	(अ) प्रेमचंद
2. मेहता	(आ) कहानी
3. कलम का सिपाही	(इ) गोदान
4. बड़े घर की बेटी	(ई) उपन्यास

10.8पठनीय पुस्तकें

1. प्रेमचंद एक विशेष अध्ययन : गंगा सहाय प्रेमी एवं जगदीश शर्मा
2. मानसरोवर भाग 8-1: प्रेमचंद
3. हिंदी साहित्य का इतिहास : सं. नगेंद्र

इकाई 11 : 'रंगभूमि' : कथानक

रूपरेखा

11.1 प्रस्तावना
11.2 उद्देश्य
11.3 मूल पाठ : 'रंगभूमि' : कथानक
11.3.1 'रंगभूमि' : कथानक
11.3.2 'रंगभूमि' के कथा-क्रम का विकास
11.3.3 'रंगभूमि' : कथानक के दोष
11.3.4 'रंगभूमि' कथानक का मूल उद्देश्य
11.4 पाठ सार
11.5 पाठ की उपलब्धियाँ
11.6 शब्द संपदा
11.7 परीक्षार्थ प्रश्न
11.8 पठनीय पुस्तकें

11.1 प्रस्तावना

प्रिय छात्रो! प्रेमचंद की औपन्यासिक कला को उनकी युगीन पृष्ठभूमि में ही भलीभाँति समझा जा सकता है। युगीन परिवेश में ही उनके उपन्यास शिल्प का उदय और विकास हुआ है। अपने पूर्ववर्ती उपन्यासकारों से निःसंदेह उन्हें उपन्यास रचना की प्रेरणा मिली, किंतु युग-जीवन के परिवेश में उन्होंने उपन्यास-शिल्प को जो अभिनव स्वरूप प्रदान किया, उससे वे असंदिग्ध रूप से युग-प्रवर्तक बन गए। अतः नाट्य-कला के क्षेत्र में जिस प्रकार जयशंकर प्रसाद ने एक अभिनव दिशा एवं दृष्टि का पथ प्रशस्त किया, उसी प्रकार प्रेमचंद जी ने भी कथा-साहित्य को अभिनव प्राणों से स्पंदित किया। और उपन्यास के क्षेत्र में भी उन्होंने युग-स्थापना का कार्य किया। इस इकाई में प्रेमचंद के प्रसिद्ध उपन्यास 'रंगभूमि' के कथानक का अध्ययन करेंगे।

11.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के माध्यम से आप -

- 'रंगभूमि' की कथावस्तु से अवगत हो सकेंगे।
- 'रंगभूमि' के कथानक में निहित कथा सूत्रों के विकासक्रम से अवगत हो सकेंगे।
- 'रंगभूमि' के कथानक की सीमाओं को जान सकेंगे।
- 'रंगभूमि' के प्रयोजन और प्रासंगिकता से परिचित हो सकेंगे।

11.3 मूल पाठ : 'रंगभूमि' : कथानक

11.3.1 'रंगभूमि' : कथानक

प्रेमचंद द्वारा लिखित 'रंगभूमि' उपन्यास अपने समय का महत्वपूर्ण उपन्यास है। इसकी रचना तिथि सन् 1924-25 है। काशी के बाहरी भाग में पांडेपुर गाँव को 'रंगभूमि' की कथा स्थल बनाया गया है। ग्वाले, मजदूर, गाड़ीवान और खोमचेवालों की इस गरीब बस्ती में एक गरीब और अंधा चमार रहता है - सूरदास। वह है तो भिखारी परंतु पुरखों की 10 बीघा जमीन भी उसके पास है, जिसमें गाँव के ढोर विचरते हैं। सामने ही एक ख्याल का गोदाम है, जिसका आढ़ती है एक ईसाई - जॉन सेवक। वह सिगरा मुहल्ले का निवासी है। इस जमीन पर उसकी बहुत दिनों से निगाह है। वह इस पर सिगरेट का कारखाना खोलना चाहता है। सूरदास किसी भी तरह अपने पुरखों की निशानी उस जमीन को बेचने के लिए जब राजी नहीं होता, तो जॉन सेवक अधिकारियों से मेल-जोल का सहारा लेकर उसके मन को बदलने का प्रयास करता है।

बोध प्रश्न

- 'रंगभूमि' की पृष्ठभूमि में कौन सा क्षेत्र है?
- सूरदास के पास कितनी बीघा जमीन थी?

जॉन सेवक की बेटी थी सोफिया। सोफिया के कारण से ही राजा भरतसिंह और उसके परिवार से जॉन सेवक का परिचय संबंध स्थापित हुआ। राजा साहब के परिवार में चार प्राणी थे - पत्नी रानी जाह्नवी, पुत्री इंदु, पुत्र विनय और स्वयं राजा साहब। एक दिन अपने स्वयंसेवकों के साथ आग बुझाने का अभ्यास करते हुए विनय आग की लपटों में फँस जाता है। संयोग से सोफिया अपनी माँ से झगड़ा कर उधर जा निकली थी। वह आग में कूदकर विनय को बचा लाई। आग ने उसे कई जगह झुलस दिया। विनय के माता-पिता सोफिया को अपने साथ ले गए और उसका इलाज कराया। वे उसके प्रति स्नेहासिक्त हो गए थे कि उसे अपने ही घर रखने के बारे में सोचने लगे।

राजा साहब की बेटी इंदु, सोफिया की सहपाठिनी और सखी थी। उसका विवाह छतारी के राजा महेंद्र कुमार से हुआ था। राजा महेंद्र कुमार सिंह बनारस म्युनिसिपल बोर्ड के अध्यक्ष थे। इंदु के द्वारा महेंद्र कुमार जॉन सेवक और सोफिया को थोड़ा बहुत जानने-पहचानने लगे थे। जॉन सेवक ने इस संयोग का पूरा-पूरा लाभ उठाया। एक ओर उसने राजा भरत सिंह को अपने कारखाने के शेयर खरीदने के लिए राजी कर लिया तो दूसरी ओर राजा महेंद्र कुमार सिंह से सूरदास की जमीन दिलवा देने की हामी भी भरवा ली। उस समय बनारस का जिला-अधिकारी क्लार्क नाम का अंग्रेज था। वह सोफिया पर आसक्त था और उसके लिए सोफिया के माता-पिता को भी वह अपने पक्ष में कर चुका था। सोफिया उससे मिली और हठ कर के राजा महेंद्र कुमार के आदेश को रद्द करवाकर क्लार्क से आज्ञा जारी करवा दी कि सूरदास की जमीन किसी को नहीं मिल सकती। लेकिन राजा महेंद्र कुमार ने गवर्नर से मिलकर सूरदास की जमीन जॉन सेवक के नाम करवा दी। क्लार्क का उदयपुर के लिए तबादला हो जाता है।

कारखाना निर्माण और उसके साथ ही मजदूरों के लिए घर बनाने का क्रम रखा गया। जमीन प्राप्त करने के बाद मजदूरों के लिए घर बनाने की आवश्यकता हेतु पांडेपुर बस्ती पर निगाह डाली गई। पांडेपुर बस्ती को खाली करवाया जाने लगा प्रांतीय सरकार से लिखा पारी हुई। बस्ती के लोगों को मुआवजा लेकर अपना-अपना घर छोड़ देने के लिए कह दिया गया लेकिन सूरदास अड़ गया। झोंपड़ी के सामने ही उसने सत्याग्रह कर दिया। झगड़े ने आंदोलन का रूप धारण कर लिया। सूरदास की मदद के लिए इंद्रदत्त, सोफिया और विनय आ गए। दूसरी ओर आंदोलन को दबाने के लिए फौज आ धमकी। आंदोलन बढ़ता ही गया। गोलियाँ चलीं, इंद्रदत्त शहीद हो गया। सूरदास को गोली लगी और विनय जब मंच पर आया तो जनता ने उस पर व्यंग्य करना शुरू कर दिया। अशांत जनता को शांत करने के लिए तथा फौज की गोलियों से बचाने के लिए विनय ने अपनी रिवाल्वर से ही अपने आपको में गोली मार दी। इस आत्मबलिदान से हतप्रभ जनता ने आंदोलन को रोक दिया। सूरदास को अस्पताल पहुँचाया गया लेकिन वह नहीं बचा। सूरदास की मृत्यु पर उपन्यासकार की यह टिप्पणी द्रष्टव्य है -

> "सबके सब इस खिलाड़ी को एक आँख देखना चाहते थे। जिसकी हार में जीत का गौरव था। कोई कहता था सिद्ध था, कोई कहता था वली था, कोई देवता कहता था, पर वह यथार्थ में खिलाड़ी था - वह खिलाड़ी जिसके माथे पर कभी मैल नहीं आया, जिसने कभी हिम्मत नहीं हारी, जिसने कभी कदम पीछे नहीं हटाए। जीता तो हारने वाले पर तालियाँ नहीं बजाईं। जिसने खेल में सदैव नीति का पालन किया, कभी धांधली नहीं की। कभी द्वंद्वी पर छिपकर चोट नहीं की। भिखारी था, अपंग था, अंधा था, दीन था, कभी भरपेट दाना नहीं नसीब हुआ। कभी तन पर वस्त्र पहनने को नहीं मिला, पर हृदय धैर्य, क्षमा, सत्य और साहस का अगाध भंडार था। देह पर मांस न था, पर हृदय में विनय, शील और सहानुभूति भरी हुई थी।"

जनता ने सूरदास की झोंपड़ी के सामने ही उसकी मूर्ति स्थापित कर दी। राजा महेंद्र कुमार रात में उसे मिटाने के लिए जाते हैं और उस मूर्ति के नीचे ही दबकर मर जाते हैं। इस प्रकार राजा महेंद्र कुमार जीतकर भी हार जाते हैं और सूरदास हारकर भी विजय पा जाता है।

बोध प्रश्न

- महेंद्र कुमार जीतकर भी कैसे हार जाते हैं?
- सूरदास की मृत्यु पर प्रेमचंद की क्या टिप्पणी थी?

अति संक्षेप में हम 'रंगभूमि' की कथानक को इस प्रकार से समझ सकते हैं। 'रंगभूमि' की सृजन प्रक्रिया और उसकी आधारभूमि को समझने के लिए अंग्रेजों की व्यावसायिक नीति, मशीनी युग, औद्योगीकरण, शासन-नीति आदि क समझना होगा। प्रेमचंद औद्योगीकरण के पूर्णतः विरोधी नहीं थे। लेकिन अंग्रेज जिस प्रकार से भारतीयों के सर्वस्व को लूट रहे थे इसका प्रेमचंद हमेशा विरोधिता करते रहे।

'रंगभूमि' के कथा-शिल्प की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि लेखक ने सूरदास की कथा में दूसरे पात्रों को सम्मिलित करके उनके व्यक्तित्व के विकास से उनकी व्यक्तिगत कथा को भी विकसित किया है। 'रंगभूमि' में कथा शिल्प को विकसित करने के लिए लेखक ने संकेत विधि का पर्याप्त उपयोग किया है। इसके लिए लेखक ने पात्र के संकल्प, आशंका, भविष्यवाणी आदि से भावी-कथा का संकेत किया है। 'रंगभूमि' की कथा को सुसंबद्ध बनाने के लिए लेखक पूर्णतः सचेष्ट रहे। 'रंगभूमि' में पात्रों की संख्या 100 से भी अधिक है। इनमें से 45 के लगभग तो नामधारी पात्र हैं और शेष पात्रों को लेखक ने अनाम ही छोड़ दिया है।

बोध प्रश्न

- 'रंगभूमि' के कथा-शिल्प की विशेषता क्या है?

11.3.2 'रंगभूमि' के कथा-क्रम का विकास

'रंगभूमि' की कथा को प्रेमचंद ने परिवार विशेष की कहानी कहते हुए प्रमुख पात्रों का परिचय देना शुरू किया है। धीरे-धीरे कथा के भावी विकास के लिए सामग्री अर्थात विषय मिलने लगी और उपन्यास का विकास द्रुत गति से होने लगा। प्रेमचंद ने संकेत, भविष्यवाणी, समस्याओं के निराकरण जैसी तरह-तरह की विधियों को अपनाकर 'रंगभूमि' के कथानक को विकसित करने का प्रयास किया है। जैसे सूरदास का ताहिर अली के सामने यह संकल्प करना कि, 'मेरे जीते-जी तो जमीन न मिलेगी, हाँ मर जाऊँ तो भले ही मिल जाए'। पाठक को यह संकेत तो मिल जाता है कि जमीन के लिए संघर्ष अवश्य होगा। यह संकेत पाठक को आगे बढ़ने का रोमांच भी प्रदान करता है।

'रंगभूमि' के कथानक में पेचीदगियों, उलझनों तथा बाधाओं की भरमार है, किंतु कथावस्तु का प्रवाह कहीं रुका नहीं है क्योंकि प्रेमचंद ने प्रत्येक समस्या का विस्तृत वर्णन किया है। जैसे औद्योगीकरण की समस्या को ही लीजिए। यह समस्या संपूर्ण कथानक की रीढ़ है। सामंतवादी शोषण भी इसमें सम्मिलित है। एक और जॉन सेवक के हथकंडे हैं, तो दूसरी और सूरदास का संकल्प। इस वैषम्य से भी कथानक आगे बढ़ती चली गई है। हमें यहाँ इस बात को ध्यान में रखना होगा कि प्रेमचंद ने 'रंगभूमि' उपन्यास में प्रमुख रूप से चार समस्याओं पर प्रकाश डाला है। ये समस्याएँ उपन्यास की प्राणतत्व होने के साथ-साथ कथानक की विकास प्रक्रिया के भी प्रमुख अंग हैं।

'रंगभूमि' की पहली समस्या उद्योग और व्यवसाय से जुड़ी हुई है। इसमें पूँजीवाद को उन्होंने अपना लक्ष्य बनाया है। प्रेमचंद ने पूँजीवाद के कुछ दोषों के बारे में भी बताया है, जिनकी ओर सहज ही किसी का ध्यान नहीं जाता। पूँजीवाद मनुष्य के जीवन को कुत्सित बना देता है और उसमें बुर्जुआ मनोवृत्ति भर देता है। प्रेमचंद ने इसकी तीव्र निंदा की है।

दूसरी समस्या धार्मिक है। धार्मिकता को भी इस उपन्यास ने समस्या के रूप में अपना लक्ष्य बनाया है। जैसा प्रसाद जी ने अपने नाटकों में आवश्यकता से अधिक राष्ट्रीय उत्साह अभिव्यक्त किया है, उसी प्रकार से आवश्यकता से अधिक धार्मिक उत्साह इस उपन्यास में

प्रेमचंद ने प्रकट किया है। सोफिया और विनय सिंह के माध्यम से धार्मिक स्वतंत्रता का पक्ष उन्होंने प्रस्तुत किया है। मिसेज सेवक की धार्मिक असहिष्णुता का विरोध सोफिया और प्रभु सेवक दोनों करते हैं। सोफिया घुटन भारी वातावरण से निकलकर स्वतंत्र रूप से जीवनयापन करना चाहती है। वास्तव में प्रेमचंद का दृष्टिकोण भी यही रहा कि धार्मिक बंधनों से अधिक मानवतावाद को अधिक महत्व मिलना चाहिए। 'रंगभूमि' उपन्यास के द्वारा उन्होंने स्थापित किया है कि 'मानव प्रेम के सम्मुख धर्म की सीमाएँ मूल्यहीन हैं।'

तीसरी समस्या देशी रियासतों की है। इन पर भी प्रेमचंद ने अपने राष्ट्रीय विचार प्रकट किया है। जसवंतनगर में रहते हुए विनय सिंह जिस प्रकार का जीवन बिता रहे थे, वह कदाचित तत्कालीन देशी रियासतों की वास्तविक दश का ही सजीव चित्रण रहा। रियासतों का जीवन कितना प्रतिक्रियावादी हो गया था, अन्याय और शोषण कैसे चरमोत्कर्ष तक पहुँच गया था और साधारण जनता के लिए इन रियासतों के नीचे रहना कितना कष्टकर हो गया था इन सब का सजीव चित्रण 'रंगभूमि' में देखा जा सकता है।

चौथी समस्या राजनैतिक है। प्रेमचंद का विश्वास था कि मनुष्य को सभी व्यक्तिगत कामनाओं और आकांक्षाओं से ऊपर उठकर निःस्वार्थ भाव से राष्ट्र-सेवा का व्रत लेना चाहिए। वे जाति को, समाज को, देश को केवल राजनैतिक दृष्टि से ही नहीं सभी दृष्टियों से जागृत होते हुए देखना चाहते थे। विनय सिंह की माता जाह्नवी के माध्यम से प्रेमचंद ने इस बात पर प्रकाश डाला कि भारत को ऐसी माताएँ चाहिए जो अपने पुत्रों को सही मार्ग दिखाकर उन्हें आगे बढ़ाएँ।

बोध प्रश्न

- कथानक की विकास प्रक्रिया में सहायक कुछ केंद्रीय समस्याओं के बारे में बताइए।

'रंगभूमि' की कथानक की आधारशिला भले ही पांडेपुर में रखी गई है किंतु कथा के तीन केंद्र हैं - पहला केंद्र पांडेपुर है, जहाँ का नायक सूरदास है। दूसरा केंद्र काशी है जहाँ जॉन सेवक, सोफिया, विनय, राजा महेंद्र कुमार, इंदु आदि के माध्यम से घटनाक्रम आगे बढ़ता दिखाई पड़ता है और तीसरा केंद्र उदयपुर की रियासत है इस रियासत से संबंधित घटनाएं जसवंत नगर और उसके समीपवर्ती क्षेत्रों में पल्लवित होती दिखाई पढ़ती है। तीन केंद्रों को एक ही कथानक के नीचे लेकर आगे बढ़ना आसान नहीं है लेकिन यह प्रेमचंद की विशेषता रही कि सभी कथाएँ साथ-साथ आगे बढ़ती हुई दिखाई पड़ती हैं।

'रंगभूमि' की पृष्ठभूमि में प्रेमचंद कालीन भारतीय समाज है। जीवन के जितने रूपों को चित्रित करना संभव हो सकता था, कथाकार ने उन सभी को अभिव्यक्त करने का पूर्ण प्रयत्न किया है - 'इसमें विश्व के तीन बड़े धर्म (हिंदू, मुसलमान एवं ईसाई), तीन वर्ग (पूँजीपति वर्ग, मध्यम वर्ग और निम्न वर्ग) तथा मानवीय जीवन की तीन अवस्थाओं में चित्रित पात्र (वृद्ध-ईश्वर सेवक, युवक-विनय, शिशु-ईसू) उपलब्ध होते हैं।'

बोध प्रश्न

- 'रंगभूमि' उपन्यास का कथानक पांडेपुर के अलावा और कहाँ-कहाँ तक फैला हुआ है?
- 'रंगभूमि' उपन्यास में जीवन की कितनी अवस्थाओं को देखा जा सकता है?

11.3.3 'रंगभूमि' : कथानक के दोष

देशकाल एवं वातावरण के चित्रण की दृष्टि से भी 'रंगभूमि' उपन्यास विशिष्ट है। इसमें लेखक ने कथानक के अनुसार वातावरण का सृजन किया है। फिर भी वस्तु-शिल्प की दृष्टि से 'रंगभूमि' की कथानक में कुछ दोष आ ही गए हैं। पहला दोष यह है कि इस उपन्यास में कथाकार बीच-बीच में आकर टीका-टिप्पणी करने लगते हैं जिससे कहीं-कहीं पर कथानक की विकास गति प्रभावित हुई है। उदाहरणार्थ- जब सोफिया अपनी माँ से झगड़कर घर से निकल पड़ती है। तो उसके बचपन की याद जाग उठती है और उसे अपनी सहेली इंदु का स्मरण हो आता है। यहीं लेखक अपनी टिप्पणी भी देने लगते हैं, 'मजबूरी में हमें उन लोगों की याद आती है, जिनकी सूरत भी विस्मृत हो चुकी होती है।'

दूसरा दोष यह है कि कथानक में कुछ घटनाओं का आकस्मिक, अस्वाभाविक एवं अप्रासंगिक रूप से समावेश। इस दृष्टि से सोफिया का जलते हुए भवन को देखकर आग में कूद जाना, जल जाना और इंदु का विनय के सम्मुख पहुँच जाना आदि। कभी-कभी तो ऐसा भी लगने लगता है कि विनय और सोफिया ही कथा के प्रमुख पात्र हैं। इनका पारस्परिक संबंध उतने घनिष्ठ रूप में स्थापित नहीं हो पाया है, जिस रूप में होना चाहिए था। 'प्रेमाश्रम', 'निर्मला' आदि उपन्यासों में जिस प्रकार से विभिन्न प्रेम संबंधों की कसावट देखी गई है उसकी कमी तो 'रंगभूमि' उपन्यास में अवश्य ही खलती है।

तीसरा दोष यह है कि तत्कालीन समाज में व्याप्त कारुणिक दशा को चित्रित करने के लिए प्रेमचंद ने आवश्यकता से अधिक कारुणिक चित्रों को दर्शाया है जिनकी आवश्यकता नहीं थी। जैसे, इंद्रदत्त की मृत्यु गोली लगने से होती है, विनय आत्महत्या करते हैं, सोफिया गंगा में डूबकर प्राणांत करती है, सूरदास अस्पताल में मर जाते हैं और राजा महेंद्र कुमार सिंह सूरदास की प्रस्तर प्रतिमा के नीचे दबकर जान से हाथ धो बैठते हैं। 'रंगभूमि' के अंतिम पर्व में एक के बाद एक दुखद प्राणांतों को दिखाया गया है, जिससे उपन्यास प्रभावशाली बनने के बजाय बोझिल बन गया है।

'रंगभूमि' कथानक में भले ही कुछ दोष हो लेकिन हम फिर भी इस बात को नकार नहीं सकते हैं कि उपन्यासकार ने उक्त उपन्यास के द्वारा भारत समाज की संपूर्णता को गाथाबद्ध करने का प्रयास किया है। 'रंगभूमि' जैसा उपन्यास लिखना साहस भरा काम है। इसलिए इन दोषों को अनदेखा किया जा सकता है।

बोध प्रश्न

- 'रंगभूमि' उपन्यास के कुछ दोष बताइए।

11.3.4 'रंगभूमि' कथानक का मूल उद्देश्य

उपन्यासकार प्रेमचंद के शब्दों में, 'साहित्यकार का काम केवल पाठकों को बहलाना नहीं है, यह तो भाटों और मदारियों, विदूषकों और मसखरों का काम है। साहित्यकार का पद इससे कहीं ऊँचा है। वह दूसरा पथ-प्रदर्शक होता है। वह हमारे मनुष्यत्व को जागता है - हममें सद्भावों का संचार करता है। हमारी दृष्टि को फैलाता है - कम से कम उसका यही उद्देश्य होने चाहिए।' प्रेमचंद की यह मान्यता उनके साहित्यिक स्वरूप को प्रकट करती है। उन्होंने ही सर्वप्रथम हिंदी उपन्यास में उद्देश्य-पक्ष की महत्ता स्थापित करते हुए उसके विकास की दिशा मोड़ी। मानव-जीवन से असंबद्ध हिंदी का उपन्यास-साहित्य प्रेमचंद का सक्रिय दिशा-निर्देश पाकर जीवन की वास्तविकता की ठोस चट्टान पर आ खड़ा हुआ।

मानव-जीवन की वास्तविकता 'रंगभूमि' संसार के मंच पर अभिनय करने वाले मनुष्यों का रंगमंच है। सूरदास इसका नायक है। वह अंधा-अपाहिज है तो क्या हुआ, दुनिया में आया है तो अभिनय उसे भी करना ही पड़ेगा। संसार किसी को नहीं छोड़ता। यह 'रंगभूमि' के उद्देश्य का एक पक्ष है। सूरदास को सच्चाई तथा ईमानदारी के साथ उपन्यासकार ने जीवन का खेल मन लगाकर खिलाया है और उसने इस खेल में प्राणों की बाजी भी लगवा दी है। बात हार या जीत की हमेशा नहीं होती, पर जो हमारे हिस्से का खेल है उसे मन लगाकर खेलना जरूरी है। यह पाठकों को समझाना लेखक का दूसरा प्रमुख उद्देश्य रहा।

पाश्चात्य तथा पूर्वी सभ्यता का तुलनात्मक विवेचन भी 'रंगभूमि' में प्रस्तुत है। इसके द्वारा प्रेमचंद ने भारतीय समाज के सम्मुख यह सांस्कृतिक प्रश्न उठाया है कि अंधानुकरण की प्रवृत्ति कहाँ तक उचित है? हम जो दूसरों का अनुकरण करते हुए अपने ही लोगों से दूर चले जाते हैं यह किस हद तक सही है? चाहे पांडेपुर के किसान-मजदूर हो या फिर उदयपुर के राजघराने के लोग, अगर हम भारतीय एक-दूसरे से कटकर रहेंगे तो किसी का भला नहीं होगा। कुटिल क्लार्क, जॉन सेवक जैसे विदेशी हमें कहीं का नहीं छोड़ेंगे और हमारी संस्कृति को नष्ट कर देंगे।

प्रेमचंद यह जानते हैं कि औद्योगीकरण को रोका नहीं जा सकता। संपूर्ण उपन्यास में उन्होंने इस यथार्थ की ओर संकेत किया है। लेखकीय संवेदना एवं सहानुभूति सूरदास के साथ है। वे धर्म के प्रति पूँजीवादी दृष्टि को स्पष्ट करते हैं जो पश्चिम का देन है। पूँजीपति के लिए धर्म स्वार्थ का संगठन है। इसलिए प्रेमचंद कहते हैं - "धर्म और व्यापार को एक तराजू में तौलना मूर्खता है। धर्म धर्म है, व्यापार व्यापार, परस्पर कोई संबंध नहीं। ... धर्म तो व्यापार का शृंगार है। वह धनाधीशों ही को शोभा देता है। खुदा आपको कमाई दे, अवकाश मिले, घर में फालतू रुपए हों, तो नमाज पढ़िए, हज कीजिए, मस्जिद बनवाइए, कुएँ खुदवाइए। तब मजहब है, खाली पेट खुदा का नाम लेना पापा है।" उन्होंने सूरदास के माध्यम से धर्म के मानवीय स्थिति को उजागर किया है।

छात्रो! ध्यान देने की बात है कि इस उपन्यास का आधा हिस्सा सूरदास और जॉन सेवक का है। प्रेमचंद ने इस हिस्से में देश की गरीब जनता और पूँजीपति वर्ग के द्वंद्व को दर्शाया है। 'रंगभूमि' उपन्यास पाठक को मनोरंजन प्रदान नहीं करता, बल्कि उन्हें वैचारिक दृष्टि से परिपक्व मनुष्य बनाता है। वे अपने समय के समाज की स्थितियों को बखूबी जानते थे। अतः उपन्यास में उन्होंने सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों पहलुओं को मार्मिक ढंग से उजागर किया है। साथ ही स्वाधीनता आंदोलन का समर्थन किया है। इस उपन्यास के माध्यम से उन्होंने तत्कालीन समाज का चित्र खींचने के साथ-साथ विभिन्न वर्गों का विश्लेषण भी प्रस्तुत किया है। एक जीवन दृष्टि का निर्माण किया है और भविष्य के नक्शे की तरफ संकेत किया है।

प्रेमचंद ने उस भारतीय समाज को बोलने पर मजबूर किया जो सदियों से अंधविश्वासी और रूढ़िग्रस्त होने के कारण मूक था। डॉ. इंद्रनाथ मदान का यह कथन द्रष्टव्य है - 'प्रेमचंद' की कला का मूल उद्देश्य न तो चरित्र चित्रण है और न वस्तु-संगठन, वरन सुधार है। साहित्य के कार्य है - एक जीवन की व्याख्या करना और दूसरा जीवन को परिवर्तित करना। प्रेमचंद पिछले पर अधिक जोर देते है।' कहने का आशय है कि प्रेमचंद उपदेश नहीं देते बल्कि अपने कथा पात्रों के माध्यम से, अपनी टिप्पणियों के माध्यम से पाठकों को सोचने पर मजबूर करते हैं। इस संदर्भ में डॉ. ऋषभदेव शर्मा का यह कथन द्रष्टव्य है -

> "स्मरण रहे कि 'रंगभूमि' प्रेमचंद के सरकारी नौकरी छोड़ने (1921) के बाद का उपन्यास है। अतः इसमें ब्रिटिश रीति-नीति की आलोचना अधिक मुखर होकर अभिव्यक्त हुई है। प्रेमचंद सूरदास के माध्यम से उन प्रयासों का विरोध करते हैं जो गाँव को आधुनिक व्यापार और नए उद्योग धंधे का केंद्र बनाकर ग्रामीण सभ्यता को उलटना चाहते हैं। उनका स्पष्ट मत है कि गाँव में कारखाना लगने से किसान और जमींदार दोनों ही निकम्मे हो जाएँगे। किसान भूमिहीन होकर मजदूर बनेगा और 'मरजाद' से पतित होगा जबकि जमींदार उद्योग के हिस्से (शेयर) खरीदकर क्रमशः भयंकर शोषक शक्ति के रूप में तब्दील हो जाएगा। सूरदास और जॉन सेवक आमने-सामने खड़े हुए दो पात्र ही नहीं हैं, बल्कि परस्पर विरोधी दो सभ्यताएँ हैं। सूरदास भारतीय ग्राम सभ्यता का प्रतीक हैं तो जॉन सेवक पश्चिमी सभ्यता का।" (कथाकारों की दुनिया, पृ. 27-28)

बोध प्रश्न

- 'रंगभूमि' उपन्यास में किन दो संस्कृतियों के बीच टकराहट को देखा जा सकता है?
- सूरदास किसका प्रतीक है?
- 'रंगभूमि' में ब्रिटिश रीति-नीति की आलोचना अधिक मुखर होकर क्यों अभिव्यक्त हुई है?
- 'रंगभूमि' में प्रेमचंद ने किसकी ओर संकेत किया है?
- प्रेमचंद सूरदास के माध्यम से किसका विरोध करना चाहते हैं?
- प्रेमचंद का मूल उद्देश्य क्या है?

11.4 पाठ सार

प्रिय छात्रो! 'रंगभूमि' प्रेमचंद द्वारा लिखित एक सामाजिक उपन्यास है। आपने देखा काशी की बाहरी भाग में बसे पांडेपुर गाँव 'रंगभूमि' का कथास्थल है। किंतु, कथा के तीन केंद्र हैं- पहला केंद्र पांडेपुर है, जहाँ का नायक सूरदास है। दूसरा केंद्र काशी है जहाँ जॉन सेवक, सोफिया, विनय, राजा महेंद्र कुमार, इंदु आदि के माध्यम से घटनाक्रम आगे बढ़ता दिखाई पड़ता है और तीसरा केंद्र उदयपुर की रियासत है। इस रियासत से संबंधित घटनाएँ जसवंत नगर और उसके समीपवर्ती क्षेत्रों में पल्लवित होती दिखाई पड़ती है। तीन केंद्रों को एक ही कथानक के नीचे लेकर आगे बढ़ना आसान नहीं है, लेकिन यह प्रेमचंद की विशेषता हैं कि उन्होंने सभी कथाओं को साथ-साथ आगे बढ़ती हुई दिखाई पड़ती है।

'रंगभूमि' की कथा का विषय उस समय का संपूर्ण भारतीय समाज है। जीवन के अधिक से अधिक जितने रूपों को चित्रित करना संभव हो सकता था, कथाकार ने उन सभी को अभिव्यक्त करने का पूर्ण प्रयत्न किया है। 'इसमें विश्व के तीन बड़े धर्म (हिंदू, मुसलमान एवं ईसाई), तीन वर्ग (पूँजीपति वर्ग, मध्यम वर्ग और निम्न वर्ग) तथा मानवीय जीवन की तीन अवस्थाओं में चित्रित पात्र (वृद्ध-ईश्वर सेवक, युवक-विनय, शिशु-ईसू) उपलब्ध होते है'। ग्वाले, मजदुर, गाड़ीवान और खोमचेवालों की इस गरीब बस्ती में एक गरीब और अंधा चमार रहता है जिसका नाम है सूरदास। वह है तो भिखारी, लेकिन उसके पास पुरखों की रखी हुई दस बीघा जमीन भी है। इसी दस बीघा जमीन के लिए जॉन सेवक का दिन प्रतिदिन बढ़ते रहनेवाला लालच उपन्यास को गति प्रदान करता है और साथ ही साथ कारुणिक दृश्य भी उभरता है। जमीन का यह लालच केवल छोटा सा लालच नहीं है, बल्कि यह पूँजीवाद और औद्योगीकरण की विभीषिका को दर्शाने वाला है। प्रस्तुत उपन्यास में वैसे तो सौ से अधिक पात्र हैं, लेकिन लेखक ने 45 पात्रों को नाम दिया है, बाकी को बेनाम ही छोड़ दिया है। आप सब ने यह तो भलीभाँति समझ ही लिया है कि प्रेमचंद ने कभी केवल मनोरंजन के लिए साहित्य रचना का काम नहीं किया था।

'रंगभूमि' की कथा को प्रेमचंद ने परिवार विशेष की कहानी कहते हुए तथा प्रमुख पात्रों का परिचय देना शुरू किया है। धीरे-धीरे कथा के भावी विकास के लिए सामग्री अर्थात विषय मिलने लगी और उपन्यास का विकास द्रुत गति से होने लगा। प्रेमचंद ने संकेत, भविष्यवाणी, समस्याओं के निराकरण आदि जैसी तरह-तरह की विधियों को अपनाकर 'रंगभूमि' के कथानक को विकसित करने का प्रयास किया है। जैसे सूरदास का ताहिर अली के सामने यह संकल्प करना कि, 'मेरे जीते-जी तो जमीन न मिलेगी, हाँ मर जाऊँ तो भले ही मिल जाए'। पाठक को यह संकेत तो मिल जाता है कि जमीन के लिए संघर्ष अवश्य होगा। यह संकेत पाठक को आगे बढ़ने का रोमांच भी प्रदान करता है। 'रंगभूमि' के कथानक में पेचीदगियों, उलझनों तथा बाधाओं की भरमार है, किन्तु कथावस्तु का

प्रवाह कहीं रुका नहीं है 'रंगभूमि' उपन्यास का भी अपना अलग महत्व और उद्देश्य है। मानव जीवन की वास्तविकता 'रंगभूमि' की चित्रपटी में उभर आया है। संसार के मंच पर अभिनय करने वाले मनुष्यों में से एक सूरदास भी है। संसार किसी को नहीं छोड़ता इसी कारण से सूरदास के हिस्से का संघर्ष उसे लगातार करना पड़ा।

सूरदास के माध्यम से लेखक ने यह समझाया कि मानव-जीवन की वास्तविकता 'रंगभूमि' की चित्रपटी है- संसार के मंच पर अभिनय करने वाले मनुष्यों की रंगस्थली, सूरदास उसका नायक है। वह अंधा-अपाहिज है तो क्या हुआ, दुनिया में आया है तो अभिनय उसे भी करना ही पड़ेगा। अपने हिस्से का खेल अर्थात कर्तव्य पूरी ईमानदारी से निभाना ही मनुष्य का सबसे पहला धर्म है। पाश्चात्य तथा पूर्वी सभ्यता का तुलनात्मक विवेचन भी 'रंगभूमि' में प्रस्तुत है। जिसके द्वारा प्रेमचंद ने भारतीय समाज के सम्मुख यह सांस्कृतिक प्रश्न भी उठाया है कि हमारी अंधानुकरण की प्रवृत्ति कहाँ तक उचित है? हम जो दूसरों का अनुकरण करते हुए अपने ही लोगों से दूर चले जाते हैं यह कितना उचित है? चाहे पांडेपुर के किसान-मजदूर हो या फिर उदयपुर के राजघराने के लोग अगर हम भारतीय एक-दूसरे से कटकर रहेंगे तो भला किसी का नहीं होगा। कुटिल क्लार्क, जॉन सेवक जैसे विदेशी हमें कहीं का नहीं छोड़ेंगे और हमारी संस्कृति को नष्ट कर देंगे।

'रंगभूमि' उपन्यास को भले ही सन् 1924-25 के दौरान लिखा गया लेकिन इन सब उद्देश्यों को देखकर यह कह सकते है कि आज भी 'रंगभूमि' उपन्यास की प्रासंगिकता कम नहीं हुई है क्यों की आज भी भारतीयों में अंधानुकरण की प्रवृत्ति है और औद्योगीकरण की समस्या आज भी व्याप्त है। आप विद्यार्थियों ने यह भी देखा कि उक्त उपन्यास में कथाकार बीच-बीच में आकर टीका-टिप्पणी करने लगते हैं जिससे कहीं-कहीं पर कथानक की विकास गति प्रभावित हुई है। उदाहरणार्थ- जब सोफिया अपनी माँ से झगड़कर घर से निकल पड़ती है। तो उसके बचपन की याद जाग उठती है और उसे अपनी सहेली इंदु का स्मरण हो आता है। यहीं लेखक अपनी टिप्पणी भी देने लगते हैं, 'मजबूरी में हमें उन लोगों की याद आती है, जिनकी सूरत भी विस्मृत हो चुकी होती है।'

कथानक में कुछ घटनाओं का आकस्मिक, अस्वाभाविक एवं अप्रासंगिक रूप से समावेश। इस दृष्टि से सोफिया का जलते हुए भवन को देखकर आग में कूद जाना, जल जाना, और इंदु का विनय के सम्मुख पहुँच जाना आदि। कभी-कभी तो ऐसा भी लगने लगता है कि विनय और सोफिया ही कथा के प्रमुख पात्र हैं। इनका पारस्परिक संबंध उतने घनिष्ठ रूप में स्थापित नहीं हो पाया है, जिस रूप में होना चाहिए था। 'प्रेमाश्रम', 'निर्मला' आदि उपन्यासों में जिस प्रकार से विभिन्न प्रेम संबंधों की कसावट देखी गई है उसकी कमी तो 'रंगभूमि' उपन्यास में अवश्य ही खली है। तत्कालीन समाज में व्याप्त कारुणिक दशा को चित्रित करने के लिए प्रेमचंद ने आवश्यकता से अधिक कारुणिक चित्रों को दर्शाया है जिनकी आवश्यकता नहीं थी। जैसे, इंद्रदत्त की मृत्यु गोली लगने से होती है, विनय आत्महत्या करते हैं, सोफिया गंगा में डूबकर प्राणांत

करती है, सूरदास अस्पताल में मर जाते हैं और राजा महेंद्र कुमार सिंह सूरदास की प्रस्तर प्रतिमा के नीचे दबकर जन से हाथ धो बैठते हैं।

'रंगभूमि' के अंतिम पर्व में एक के बाद एक दुखद प्राणान्तों को दिखाया तो गया है लेकिन उससे उपन्यास प्रभावशाली बनने के बजाय बोझिल बन गया है। लेकिन 'रंगभूमि' कथानक में भले ही कुछ दोष हो लेकिन हम फिर भी इस बात को नकार नहीं सकते हैं कि उपन्यासकार ने उक्त उपन्यास के द्वारा भारत समाज की संपूर्णता को गाथाबद्ध करने का प्रयास किया है। हिन्दी साहित्य में इतनी बड़ी 'रंगभूमि' को लेकर, 'रंगभूमि' लिखने का साहस पर ने ही किया था। इसलिए इन कुछ दोषों को अनदेखा किया ही जा सकता है।

11.5 पाठ की उपलब्धियाँ

इस इकाई के अध्ययन से निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त हुए हैं -

1. प्रेमचंद का विराट उपन्यास 'रंगभूमि' विदेशी शासन के हथकंडों की समझ पर आधारित उपन्यास है।
2. 'रंगभूमि' एक सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक और राष्ट्रीय चेतना प्रधान उपन्यास है।
3. 'रंगभूमि' का नायक सूरदास भारतीय जीवन मूल्यों का समेकित पुंज है।
4. सूरदास के माध्यम से प्रेमचंद ने महाजनी सभ्यता के खिलाफ भारतीयता के संघर्ष को रूपायित किया है।
5. 'रंगभूमि' का कथानक यह दर्शाता है कि प्रेमचंद भारत के गाँवों के अर्थशास्त्र को भली प्रकार समझते थे। वे जानते थे कि सरकार, महाजन और जमींदार तीनों मिलकर एक ऐसे गठबंधन की रचना करते हैं जिसका एकमात्र उद्देश्य शोषण की व्यवस्था को बनाए रखना है।
6. 'रंगभूमि' में निहित किसान विमर्श और विकलांग विमर्श इसे आज भी प्रासंगिक बनाते हैं।

11.6 शब्द संपदा

1. अंधानुकरण = आँख मूँदकर किसी के पीछे चलना
2. असहिष्णुता = असहनशीलता
3. औद्योगीकरण = व्यवस्था को उद्योग बनाने की प्रक्रिया
4. पूँजीपति = धनवान, विभिन्न धंधों में पैसा लगाने वाला धनी व्यक्ति
5. प्रासंगिकता = सार्थकता
6. शोषक = शोषण करने वाला व्यक्ति
7. सत्याग्रह = सत्य का आग्रह

11.7 परीक्षार्थ प्रश्न

खंड (अ)

दीर्घ श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 500 शब्दों में दीजिए।

1. 'रंगभूमि' उपन्यास की कथानक पर प्रकाश डालिए।
2. 'रंगभूमि' की प्रासंगिकता की चर्चा कीजिए।
3. 'रंगभूमि' के मूल उद्देश्य को स्पष्ट कीजिए।
4. 'रंगभूमि' में निहित राष्ट्रीय चेतना पर प्रकाश डालिए।

खंड (ब)

लघु श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 200 शब्दों में दीजिए।

1. 'रंगभूमि' कथानक के उद्देश्य पर प्रकाश डालिए।
2. 'रंगभूमि' कथानक में कुछ दोष भी हैं, उन पर प्रकाश डालिए।
3. 'रंगभूमि' उपन्यास की कथानक के विकास क्रम पर प्रकाश डालिए।
4. सूरदास की मृत्यु पर प्रेमचंद द्वारा की गई टिप्पणी पर प्रकाश डालिए।
5. 'रंगभूमि' के आधार पर प्रेमचंद के विचारों पर प्रकाश डालिए।

खंड (स)

I. सही विकल्प चुनिए -

1. 'रंगभूमि' में लेखकीय सहानुभूति किसके साथ है? ( )

   (अ) जॉन सेवक (आ) सूफिया (इ) सूरदास (ई) विनय

2. 'रंगभूमि' में प्रेमचंद का मूल उद्देश्य क्या है? ( )

   (अ) पात्र निरूपण (आ) घटना संयोजन (इ) समाज सुधार (ई) सत्ता का विरोध

3. 'रंगभूमि' उपन्यास का नायक कौन है? ( )

   (अ) सूरदास (आ) लक्ष्मीदास (इ) मानिकदास (ई) गुरुदास

II. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए -

1. 'रंगभूमि' उपन्यास का सूरदास ..... का प्रतीक है।
2. 'रंगभूमि' में इस बात की ओर संकेत किया गया है कि ..... को रोका नहीं जा सकता।
3. गाँव में कारखाना लगने से ..... और ..... दोनों ही निकम्मे हो जाएँगे।

III. सुमेल कीजिए -

1. सूरदास	(अ) आत्मबलिदान
2. जॉन सेवक	(आ) भारतीय ग्राम्य सभ्यता
3. विनय	(इ) भारतीय समाज
4. अंधविश्वास	(ई) पश्चिमी सभ्यता

11.8 पठनीय पुस्तकें

1. रंगभूमि : प्रेमचंद
2. मुंशी प्रेमचंद एवं उनका उपन्यास 'रंगभूमि': जगदीश शर्मा

इकाई 12 : 'रंगभूमि' : एक सामाजिक उपन्यास

रूपरेखा

12.1 प्रस्तावना
12.2 उद्देश्य
12.3 मूल पाठ : 'रंगभूमि' : एक सामाजिक उपन्यास
12.3.1 'रंगभूमि' की सामाजिक चेतना
12.3.2 'रंगभूमि' का राष्ट्रीय संदर्भ
12.3.3 आलोचकों की दृष्टि में 'रंगभूमि'
12.4 पाठ सार
12.5 पाठ की उपलब्धियाँ
12.6 शब्द संपदा
12.7 परीक्षार्थ प्रश्न
12.8 पठनीय पुस्तकें

12.1 प्रस्तावना

प्रिय छात्रो! प्रेमचंद हिंदी उपन्यास के इतिहास में युग प्रवर्तक के रूप में जाने जाते हैं। उन्होंने तत्कालीन समाज और साहित्य दोनों ही का बहुत निकट से अध्ययन और अनुभव किया था। वे मनोरंजन और विलासिता से परे सामाजिक चेतना और मानवीय मूल्यों को साहित्य के मूल सरोकार मानते थे। कोरे आदर्श और घोर यथार्थ दोनों ही को अतिवादी मानते हुए उन्होंने 'आदर्शोन्मुख यथार्थवाद' के रूप में साहित्य का मध्य मार्ग प्रशस्त किया। अपने उपन्यासों के माध्यम से उन्होंने युगीन जीवन और परिवेश के यथार्थ को चित्रित करते हुए आदर्श की झलक भी प्रस्तुत की। 'रंगभूमि' प्रेमचंद का ऐसा ही एक प्रतिनिधि उपन्यास है जिसमें महाजनी सभ्यता के फैलाव को एक सत्याग्रही अंधे भिखारी के द्वारा चुनौती दी गई है।

12.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से आप-

- 'रंगभूमि' में निहित सामाजिक चेतना को समझ सकेंगे।
- 'रंगभूमि' में निहित राष्ट्रीय सरोकारों से परिचित हो सकेंगे।
- 'रंगभूमि' में निहित प्रेमचंद के राजनैतिक दृष्टिकोण से अवगत हो सकेंगे।
- 'रंगभूमि' पर विभिन्न आलोचकों के विचारों से परिचित हो सकेंगे।
- 'रंगभूमि' की समकालीन प्रासंगिकता से अवगत हो सकेंगे।

12.3 मूल पाठ : 'रंगभूमि' : एक सामाजिक उपन्यास

12.3.1 'रंगभूमि' की सामाजिक चेतना

प्रिय छात्रो! प्रेमचंद के द्वारा लिखित 'रंगभूमि' एक सामाजिक उपन्यास है। इसमें लेखक ने कथानक के अनुसार वातावरण का सृजन किया है। तत्कालीन समाज के गुण-दोषों को स्पष्ट करने के लिए उन्होंने तदनुकूल सामाजिक विचारधारा और परिप्रेक्ष्यानुकूल वातावरण पर कथा को प्रतिष्ठित किया है। परिणामतः 'रंगभूमि' तत्कालीन भारतीय जीवन का प्रामाणिक दस्तावेज बन गया है, जिसमें व्यक्ति, समाज, परिवार, धर्म, राजनीति और इतिहास के दर्शन होते है। आइए, आगे हम देखेंगे 'रंगभूमि' में तत्कालीन समाज के किन-किन विषयों पर प्रकाश डाला गया है -

स्वाधीनता संग्राम का युग और उसका समाज

'रंगभूमि' का समाज भारत के स्वाधीनता संग्राम के युग का समाज है, जो औपनिवेशिक राजतंत्र से संघर्षरत है। इस उपन्यास में आर्थिक तथा सामाजिक स्तरों पर पूँजीवाद के बढ़ते हुए प्रभाव का चित्रण भी उतना ही सटीक है, जितना लेखक ने पूँजीवाद से लड़ते हुए स्वाधीनता की आकांक्षा रखने वाले भारतीय समाज का यथार्थ रूप अंकित किया है। सन् 1900 से सन् 1923 के बीच हुए कृषक आंदोलनों के राजनैतिक इतिहास की झलक 'रंगभूमि' में मिलती है। डॉ. रामदरश मिश्र 'रंगभूमि' को एक राष्ट्रीय उपन्यास मानते हैं क्योंकि इसमें एक विराट राष्ट्रीय मंच पर उसकी बहुआयामी परिस्थितियों और चेतना को उपस्थित किया गया है। उनके अनुसार -

> "राष्ट्रीय स्तर पर तत्कालीन भारत की अनेक राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक समस्याएँ थीं। 'रंगभूमि' में इन सारी समस्याओं के संश्लिष्ट रूप को प्रस्तुत किया गया है। ये समस्याएँ एक-दूसरे में से निकलती हैं, एक-दूसरे को काटती हैं और एक ऐसा जाल बुनती हैं जिसमें सामान्य जन फँसकर तड़प रहा होता है। प्रेमचंद ने हमेशा राजनीतिक लड़ाई को आम आदमी से जोड़कर देखा।" (हिंदी उपन्यास : एक अंतर्यात्रा, पृ.42)

प्रेमचंद यह भलीभाँति जानते थे कि जो लड़ाई आम आदमी से कटी हुई है, वह सही मायने सिर्फ बड़े लोगों की लड़ाई है। वह देश की लड़ाई नहीं हो सकती। 'रंगभूमि' में चित्रित समय वह समय है जब भारत में विदेशी सत्ता का बोलबाला था। एक देशी रियासतें थीं, राजे और सामंत थे, तो दूसरी ओर पूँजीपति वर्ग की संरचना हो रही थी। और तो और इस पूँजीवाद का एक रूप विदेशी था और दूसरा स्वदेशी। इन सबके बीच तनाव की स्थिति थी। कहा जा सकता है कि शोषण का भयानक दौर चल रहा था। अव्यवस्था और अराजकता थी। प्रेमचंद ने 'रंगभूमि' की कथा को राजस्थान के एक रियासत तक खींचकर इसी सत्य को अभिव्यक्त करने का प्रयास किया है।

छात्रो! उस समय देश में कांग्रेस का नेतृत्व था। गांधी के नेतृत्व में जनता में नई शक्ति और ऊर्जा का संचार हो रहा था। सत्य के धरातल पर पूरा देश एक होने लगा था। सत्ता या कहे अन्याय के विरुद्ध चलने वाले आंदोलन असहयोगात्मक और अहिंसात्मक था। व्यक्ति के प्रति कोई रोष नहीं था। यदि रोष था तो सत्ता और अव्यवस्था के प्रति था। गांधीजी हृदय परिवर्तन में विश्वास रखते थे। 'रंगभूमि' का नायक सूरदास गांधीजी के बहुत निकट दिखाई देता है क्योंकि वह गांधीजी की तरह ही बड़ी शक्तियों से लोहा लेता है। वह अपने अधिकारों के लिए मर मिटता है लेकिन उसके मन में किसी के प्रति कोई मैल नहीं होता।

बोध प्रश्न

- रामदरश मिश्र 'रंगभूमि' को एक राष्ट्रीय उपन्यास क्यों मानते थे?
- सूरदास गांधीजी के निकट क्यों दिखाई देता है?

स्वाधीनता आंदोलन का चित्रण

उपन्यास की शुरूआत शहरी संस्कृति के विरोध की मानसिकता से होता है। शहरों और धनी व्यक्तियों की मानसिकता के बारे में प्रेमचंद टिप्पणी करते हैं कि -

> "शहर अमीरों के रहने और क्रय-विक्रय का स्थान है। उसके बाहर की भूमि उनके मनोरंजन और विनोद की जगह है। उसके मध्य भाग में उनके लड़कों की पाठशालाएँ और उनके मुकद्दमे बाजी के अखाड़े होते हैं, जहाँ न्याय के बहाने गरीबों का गला घोंटा जाता है। शहर के आस-पास गरीबों की बस्तियाँ होती हैं।" (रंगभूमि, पृ.1)

प्रेमचंद ने इस उपन्यास में अंग्रेजों और ईसायों की मानसिकता पर टिप्पणी की है। इसमें एक ओर औद्योगीकरण से संबंधित कथा है, तो दूसरी ओर स्वाधीनता आंदोलन की। औद्योगिक विवाद सूरदास से जुड़ा हुआ है तो स्वाधीनता आंदोलन विनय से। आगे चलकर धीरे -धीरे दोनों कथाएँ एक हो जाती हैं। सूरदास की लड़ाई पहले तो निजी थी, लेकिन अंत में वह राष्ट्रीय प्रतिष्ठा के रूप में परिवर्तित हो जाती है। प्रेमचंद ने सूरदास, सोफिया, विनय, डॉ. गांगुली, काउंसिल के सदस्य, रानी जाह्नवी और वीरपाल सिंह आदि को अपनी-अपनी मान्यताओं के अनुरूप स्वाधीनता आंदोलन को आगे बढ़ाने के लिए प्रयत्नशील दिखाया।

डॉक्टर गांगुली यह मानते हैं कि भारत का उद्धार अंग्रेजों के द्वारा ही हो सकता है। वह इस बात को मनवाने की कोशिश भी करता है, यह कहकर कि "अब बोलिए, मेरा बात सच हुआ कि नहीं। आप लोग कहता था, सरकार का नीयत बिगड़ा हुआ है। पर हम कहता था, उसको हमारा बात मानना पड़ेगा। अब वह जमाना नहीं है, जब सरकार प्रजा-हित की उपेक्षा कर सकता था। अब काउंसिल का प्रस्ताव उसे मानना पड़ता है।" (रंगभूमि, पृ.279)। वे अंग्रेजों द्वारा बनाई गई काउंसिल में भाग लेता था और उनके भीतर न्याय की भावना जगाने का प्रयास करता था। वे सच्चे देशभक्ति था। सेवा समिति बनाने में वे विनय का सहयोग करते हैं। अंत में वे सूरदास के प्रशंसक और समर्थक भी बनते हैं।

बोध प्रश्न

- डॉ. गांगुली कैसे व्यक्ति थे?
- डॉ. गांगुली की क्या मान्यता थी?

संस्कारबद्ध सामाजिक परिवर्तन

वातावरण का समग्र स्वरूप तभी उपस्थित होता है जब जीवन के अनुकुल और प्रतिकूल दोनों पक्ष अपने सहज स्वाभाविक रूप से सामने आते है। 'रंगभूमि' में चाहे सूरदास को लें या सुभागी को या फिर विनय को, उनमें अगर जीवन की उन्मुक्तता है तो संस्कारबद्धता भी विद्यमान है। अगर उनमें धर्म और अंधविश्वास के प्रति विरोध है, तो मानवीय पक्ष का सहानुभूतिपरक समर्थन भी है। प्रेमचंद स्वयं गाँव के थे जिस कारण से उन्हें गाँव के सामाजिक वातावरण का पूर्ण ज्ञान था। गाँव की धरती सर्वत्र और सदैव उनकी दृष्टि में भारत-भाग्य-विधात्री रही। प्रेमचंद के इस विचारधारा को 'रंगभूमि' में देखा जा सकता है।

सूरदास बार-बार यह कोशिश करता है कि गाँव के लोग संघटित होकर अपने अधिकारों के लिए लड़ें। एक हद तक वह सफल भी होता है लोगों को प्रभावित और संघटित करने में। लेकिन प्रलोभन या भय के कारण उसकी टीम विघटित होता है। संघटन और विघटन का द्वंद्व उस समय पूरे देश में व्याप्त था। "सत्ता और व्यवस्था गांधीजी के नेतृत्व में अपने अधिकारों के लिए संघटित होती हुई जनता में संप्रदाय, भी, प्रलोभन, पद आदि अस्त्रों से फूट पैदा करती थी। लोग जुड़-जुड़कर खंडित होते थे, खंडित हो-होकर जुड़ते थे।" (हिंदी उपन्यास : एक अंतर्यात्रा, पृ. 44)। इस उपन्यास में सूरदास गांधीजी के समान अपने प्रतिद्वंद्वि यों से लड़ता है और अपना छाप छोड़ता है। अपने अधिकारों के लिए लड़ते-लड़ते हार जाता है और अंततः मर जाता है। लेकिन उसने डरकर सत्य और न्याय का मार्ग नहीं छोड़ा। उसके प्रतिपक्ष में खड़े जॉन सेवक, क्लार्क और महेंद्र कुमार के पास अपार संपत्ति और उस संपत्ति के कारण ताकत है। वे धोखाधड़ी में लिप्त हैं। वे जीत तो जाते हैं लेकिन सूरदास की सत्यनिष्ठता, संघर्षशीलता के आगे नतमस्तक हो उठते हैं और अपनी जीत को हार मानते हैं तथा सूरदास की हार को ही सच्ची जीत समझते हैं।

बोध प्रश्न

- सूरदास के प्रतिपक्ष लोग जीतकर भी अपना हार क्यों मानते हैं?

क्षेत्रीय सीमाओं का उल्लंघन करता वातावरण

प्रेमचंद के वातावरण चित्रण की प्रमुख विशेषता यह है कि यह उपन्यास शुरू तो होता है स्थानीय रंग के यथार्थवादी चित्रण से, किंतु धीरे-धीरे क्षेत्रीयता अंतर्देशीय बन जाती है। पांडेपुर का वातावरण भारत के प्रत्येक गाँव के वातावरण का दृश्य प्रस्तुत करता है। यह व्यापकता भारत की सांस्कृतिक व्यापकता है। देश-प्रदेश, भाषा-बोलचाल, वेश-भूषा, कर्मकांड, दिनचर्या, भाव-विचार सब मिलकर भारतीय सांस्कृतिक स्वरूप को उजागर करते हैं। यह व्यक्ति की उस

दशा का 'मिथ' है जो स्वाधीनता के संघर्ष काल के बीच बन रही थी, इसलिए जहाँ यह सत्य है कि प्रेमचंद ने अपने समय के मनुष्य को अपने उपन्यासों में प्रतिबिंबित किया, वहीं यह भी सत्य है कि उपन्यासों का व्यक्ति उनके समय के बाद में आने वाले व्यक्ति का आधार चरित्र है। वह देशातीत भी है और कालातीत भी।

'रंगभूमि' के नगर और ग्राम

देशकाल और वातावरण पर विचार करने पर एक बात स्पष्ट होती है कि प्रेमचंद के उपन्यासों में नगर और ग्राम एक दूसरे के पूरक बनकर सामने आते है। उनकी सभी रचनाओं में इसे देखा ज सकता है। 'रंगभूमि' भी इससे अलग नहीं। 'रंगभूमि' का सूरदास विकेंद्रीयकरण के आदर्श की रक्षा के लिए, सामाजिक सुविधाओं के लिए तथा भूमि के लिए जीवन पर्यंत संघर्ष में लीन रहता है। वस्तुतः 'रंगभूमि' में पूँजीपतियों के उद्योग धंधों से गाँवों के आर्थिक स्थिति के दुर्बल हो जाने का वैज्ञानिक तर्क वर्ग-संघर्ष का रूप धारण करता है। इस प्रकार इस उपन्यास को तत्कालीन सामाजिक क्रिया व्यवहारों का दर्पण माना जा सकता है। प्रेमचंद ने 'रंगभूमि' में ग्रामीण वातावरण का सजीव रूप प्रस्तुत किया है - 'कार्तिक का महीना था। वायु में सुखद शीतलता आ गई थी। संध्या हो चुकी थी सूरदास अपनी जगह पर मूर्तिवान बैठा हुआ किसी इक्के या बग्घी के आशाप्रद शब्द पर कान लगाए था'।

तत्कालीन रियासतों की दशा

'रंगभूमि' में तत्कालीन रियासतों की जीवंत दशा को प्रेमचंद ने दर्शाया है। 'रंगभूमि' में इस समस्या का सूत्रपात उदयपुर रियासत के जसवंत नगर से होता है। प्रेमचंद ने इसमें दिखाया है कि उस समय भारतीय रियसतें ब्रिटिश पॉलिटिकल एजेंटों की कठपुतली जी रही थी। विनय से वार्तालाप करते हुए दीवान नीलकंठ कहते है - 'रियासतों को आप सरकार की हरमसरा समझिए, जहाँ सूर्य के प्रकाश का भी गुजर नहीं हो सकता। हम जब इस हरमसरा के हबशी ख्वाजासरा हैं। रेजिडेंट साहब की इच्छा के विरुद्ध हम तिनका तक नहीं हिला सकते'। इस दशा को देखकर विनय सोचता है - 'इतना नैतिक पतन, इतनी कायरता, यों राज्य करने से डूब मरना अच्छा है'। प्रेमचंद ने 'रंगभूमि' में शासन की निरंकुशता, रियासतों की पंगुता, अराजकता, अव्यवस्था, अन्याय तथा भ्रष्टाचार का सजीव चित्रण प्रस्तुत किया है।

12.3.2 'रंगभूमि' का राष्ट्रीय संदर्भ

प्रेमचंद ने 'रंगभूमि' में असहयोग आंदोलन और जनवादी तत्वों के एकीकरण को दिखाया है। यदि कहें कि यह उपन्यास उस युग के सामाजिक अंतर्विरोधों को व्यापक फलक पर प्रस्तुत करता है तो गलत नहीं होगा। प्रेमचंद स्वतंत्रता को दिशा देने लिए एक लक्ष्य तय करते हैं और उस लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए एक मार्ग निर्धारित करते हैं। वे छिन्न-भिन्न होते ग्राम व्यवस्था तथा प्रतिस्पर्धा, लोभ एवं स्वार्थ पर आधारित औद्योगिक विकास पर अपने विचार व्यक्त किया है। भले ही अपनी आरंभिक कृतियों में उन्होंने सामाजिक समस्याओं पर सुधार की दृष्टि से विचार किया लेकिन कालांतर में उन्होंने क्रांतिकारी दृष्टिकोण अपनाया। 'रंगभूमि' उपन्यास में

उन्होंने पांडेपुर को औद्योगिक शोषण का केंद्र बनाया। मारती हुई सामंती प्रथा और विकसित होती हुई औद्योगिक व्यवस्था का मार्मिक चित्रण किया है।

अंधा सूरदास के जमीन पर सिगरेट कारखाना बनाने के लिए प्रयत्न किया जाता है। लेकिन वह अपनी जमीन बेचना नहीं चाहता। इस संबंध में उसका तर्क उल्लेखनीय है। वह कहता है - "साहब, इस जमीन से मुहल्ले वालों का बड़ा उपकार होता है। कहीं एक अंगुल-भर चरी नहीं है। आस-पास के सब ढोर यहीं चरने आते हैं। बेच दूँगा तो ढेरों के लिए कोई ठिकाना न रह जाएगा।" अन्याय देखकर उसे रहा नहीं जाता। अनीति उसके लिए असह्य थी। वह अपनी जमीन के साथ-साथ गाँव की जमीन के लिए भी मरते दम तक लड़ता है। सूरदास कहता है कि उस जमीन पर कारखाना बनेगा तो गाँव में अनाचार फैलेगा, जिसे वह नहीं चाहता। सूरदास के लिए जिंदगी एक संघर्ष है। वह कठिनाइयों से मुँह नहीं मोड़ता, बल्कि डटकर सामना करता है। वह मृत्यु शय्या पर लेते हुए भी कहता है - "फिर खेलेंगे, जरा दम लेने दो।" रामविलास शर्मा की मान्यता है कि यह भारत की अजेय जनता का स्वर था।

बोध प्रश्न

- सूरदास के पात्र की एक-दो विशेषताएँ बताइए।

छात्रो! प्रेमचंद के विचारों से भी अवगत होना समीचीन होगा। बनारसीदास चतुर्वेदी को लिखे पत्रों के माध्यम से उनकी आकांक्षाओं के बारे में जाना जा सकता है। 3.6.1930 को लिखे हुए एक पत्र में उन्होंने लिखा ही उनकी आकांक्षाएँ कुछ नहीं हैं। यदि हैं तो बस इतना कि "इस समय तो सबसे बड़ी आकांक्षा यही है कि हम स्वराज्य संग्राम में विजयी हों।" वह साहित्य और समाज के लिए कुछ-न-कुछ करते रहना चाहते थे। यदि वे कुछ लिखने की आकांक्षा रखते हैं तो भी उनका लक्ष्य स्वराज्य ही होगा।

बोध प्रश्न

- प्रेमचंद का प्रमुख लक्ष्य क्या है?

12.3.3 आलोचकों की दृष्टि में 'रंगभूमि'

प्रिय छात्रो! अब तक आपने 'रंगभूमि' के कथानक और उसकी औपन्यासिक विशेषताओं से तो परिचित हो चुके हैं। अब जरा 'रंगभूमि' को आलोचकों की दृष्टि से भी जानने का प्रयास करेंगे। हिंदी

उपन्यास साहित्य में प्रेमचंद का योगदान अविस्मरणीय है। उन्होंने हिंदी पाठकों को एक दृष्टि प्रदान की। डॉ. रामविलास शर्मा ने कहा है कि प्रेमचंद ने हजारों-लाखों 'तिलिस्मे होशरुबा' और 'चंद्रकांता' के पाठकों को 'सेवासदन', 'रंगभूमि' आदि के पाठक बनाया। इसे प्रेमचंद की महान उपलब्धि समझना चाहिए। उनका मानना है कि

> 'रंगभूमि' सन '20 और '30 के आंदोलनों के बीच हिंद-प्रदेश की रंगभूमि है। इसमें राजा, ताल्लुकेदार, पूँजीपति, अंग्रेज-हाकिम, किसान, मजदूर - हिंदुस्तानी

जीवन की एक विशद झांकी देखने को मिलती है। नायकराम का हास्य, सोफिया की सरलता, विनय का साहस, राजा महेंद्र प्रताप की धूर्तता, जॉन सेवक की स्वार्थपरता, वीरपाल का साहस, सूरदास की दृढ़ता पाठक के हृदय पर गहरी छाप छोड़ जाते हैं। अभी तक प्रेमचंद के किसी भी उपन्यास में इतने अविस्मरणीय पात्र एक साथ न आए थे। यह उनके बढ़ते हुए कौशल का परिचय था। (प्रेमचंद और उनका युग, पृ.80)

'रंगभूमि के संबंध में रामदरश मिश्र का कहना है कि -

"दरअसल, 'रंगभूमि' एक उपन्यास है। वह राष्ट्रीय जीवन के विविध पहलुओं का अलग-अलग दस्तावेज नहीं है वरन् इन विविध पहलुओं से बने हुए संश्लिष्ट राष्ट्रीय जीवन का दस्तावेज है। यह दस्तावेज तथ्यों का ही नहीं है वरन् मानवीय अनुभवों, अंतस्संबंधों तथा मूल्य चेतना का है।" (हिंदी उपन्यास : एक अंतर्यात्रा, पृ.46)

प्रेमचंद का यह उपन्यास विस्तृत भारतीय समाज व्यवस्था का प्रतीक है। इसके संबंध में इंद्रनाथ मदान का कहना है कि "जैसे 'प्रेमाश्रम' सामंती जीवन का महाकाव्य है, वैसे ही 'रंगभूमि' औद्योगिक सभ्यता का, जिसने कि गाँव के सामाजिक और आर्थिक संबंधों को नष्ट करना आरंभ कर दिया था।" (प्रेमचंद : एक विवेचन, पृ.77)

शिवकुमार मिश्र इसे गांधीवादी उपन्यास मानते हुए कहते हैं कि -

'रंगभूमि' गांधीवादी उपन्यास इसलिए कहा जाता है कि यह गांधी जी की राजनीतिक चेतना से अनुप्राणित है। 'रंगभूमि' प्रेमचंद की उपन्यास-कला का एक विकसित सोपान है। गांधीवाद का प्रभाव साहित्य या जीवन पर जैसा भी कुछ पड़ा वह 'रंगभूमि' में दिखाई पड़ता है। चरित्रों की विविधता, बहुलता (औपन्यासिक बाहुल्य) और तत्कालीन जीवन की व्यापकता का चित्रण 'रंगभूमि' की अपनी विशेषता है। (प्रेमचंद : विगत महत्ता और वर्तमान अर्थवत्ता, पृ.193)

डॉ. रांभजन सीताराम की मान्यता है कि इस उपन्यास में प्रेमचंद ने अंधे सूरदास को ग्राम्य जीवन के प्रतीक के रूप में प्रतिष्ठित किया है। वे यह भी कहते हैं कि "रंगभूमि में स्त्रियों के साहस का भी परिचय मिलता है और राष्ट्रीय जागरण में इसका प्रतिफलन महिला स्वयं सेविकाओं के रूप में हुआ था।" (स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यासों में लघु मानव की परिकल्पना, पृ.65)

प्रेमचंद ने साहित्य को उसकी वास्तविक पहचान दिलाई। फ़ैज़ अहमद फ़ैज़ का यह कथन उल्लेखनीय है -

"प्रेमचंद और उनके समकालीनों के साथ ही जिनमें से पंडित सुदर्शन जैसे लोग स्मरणीय है, अमीर लोगों की बैठकखानों के ऐश्वर्य और सिविल लाइंस की

> रौशनियों से बाहर निकलकर साहित्यगाँवों की चौपालों के फीकेपन और कस्बों की गलियों के धुंधलके तक पहुँच पाया। उन्हीं की उंगली पकड़कर हिंदी-उर्दू का कथा साहित्य सही मायनों में डी-क्लास हो पाया और उसने प्रगतिशील लेखक संघ, जिसके पहले अध्यक्ष प्रेमचंद ही थे, द्वारा प्रचारित 'सामाजिक यथार्थवाद' की राह पकड़ी। ××× अपने समय के सामाजिक यथार्थवाद की प्रस्तुति को लेकर प्रेमचंद का जो उपागम और तरीका था, वह आज के लेखकों के लिए भी प्रासंगिक है। ××× और सबसे बड़ी बात तो ये कि उनकी कृतियाँ अपनी ज़मीन और अपने लोगों के अनेक अभावों को लेकर अगाध करुणा और प्यार से आप्लावित हैं।" (प्रेमचंद : विगत महत्ता और वर्तमान अर्थवत्ता, सं. मुरली मनोहर प्रसाद सिंह, पृ.39-40)

प्रेमचंद 'प्रेमाश्रम' और उसके बाद के उपन्यासों में भारत की पराधीनता के यथार्थ को व्यापक आयामों और जटिलताओं के साथ प्रस्तुत करते हैं। गोपाल राय यह लिखते हैं कि "प्रेमचंद का 'रंगभूमि' राजनीतिक उपन्यास ही था, पर प्रेमचंद ने अपने राजनीतिक भावों और विचारों को अप्रत्यक्ष प्रसंगों के माध्यम से व्यक्त किया था।" (हिंदी उपन्यास का इतिहास, पृ.186)।

पंडित अमरनाथ झा प्रेमचंद को संबोधित एक पत्र में लिखते हैं कि "मैंने उसका एक-एक शब्द पढ़ा है और आपकी विलक्षण रचनात्मक प्रतिभा का पहले से भी ज्यादा प्रशंसक हो गया हूँ। सूरदास को अपना नायक बनाना अत्यंत साहस का काम था लेकिन उसका चरित्र भी आपने कैसा सुंदर खींचा है - 'रंगभूमि' आधुनिक हिंदी का एक गौरव ग्रंथ बनेगी।" (कथाकार प्रेमचंद, सं. सय्यद जाफ़र रज़ा, पृ.211)

नरेंद्र कोहली 'रंगभूमि' के सूरदास के संबंध में बात करते हुए यह कहते हैं कि उनकी आंधी आँखें यह देख रही थीं कि औद्योगिक सभ्यता के आने से कृषक-सभ्यता के मूल्यों का ह्रास होगा ही, साथ ही सब का जीवन नैतिक रूप से पतित हो जाएगा। इसके अनेक प्रमाण 'रंगभूमि' उपन्यास में मिल जाएँगे। वे कहते हैं कि

> "रंगभूमि' पढ़ने पर हार बार उन्हें यही लगा कि वह पूँजीवादी औद्योगिक सभ्यता की कहानी है। प्रेमचंद अपनी निर्भ्रांत आँखों से साफ-साफ देख रहे थे कि यूरोप का पूँजीवादी औद्योगिक इतिहास इस देश में भी दुहारा जाएगा। इस उपन्यास की कथा मुख्यतः जमीन की एक टुकड़े को लेकर ही आरंभ होती है। वह जमीन सूरदास की है और उसके किसी काम नहीं या रही। वह पांडेपुर की ही नहीं, आस-पास के अनेक गाँवों की एक मात्र चरागाह है। चरागाह से सूरदास को कोई लाभ नहीं, किंतु कृषक-सभ्यता के प्रतीक पशु-धन की सेवा के पुण्य का वही भागी है। .... वस्तुतः वह भूमि-खंड एक प्रकार से जमीन का एक बंजर टुकड़ा होते हुए भी ग्रामीण संस्कृति के सामूहिक जीवन का प्रतीक है।" (प्रेमचंद, पृ.64-65)

अंततः कथा सम्राट की रचनाधार्मिता के बारे में 'हिंदी साहित्य की भूमिका' में दिया गया आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का यह निष्कर्ष यहाँ उद्धृत करना उचित होगा कि -

> "प्रेमचंद हिंदी कथा साहित्य की प्रौढ़ता के सबूत हैं। उन्होंने अतीत गौरव का पुराना राग नहीं गाया। ईमानदारी के साथ अपनी वर्तमान अवस्था का विश्लेषण करते रहे। उन्होंने अपनी आँखों समाज को देखा था। वे इस नतीजे पर पहुँचे थे कि बंधन भीतर का है, बाहर का नहीं। बाहरी बंधन भी दो प्रकार के हैं : भूतकाल की संचित स्मृतियों का जाल और भविष्य की चिंता से बचने के लिए संग्रहीत जड़ संभार। एक का नाम है संस्कृति, दूसरे का संपत्ति। एक का रथवाहक धर्म है, दूसरे का राजनीति है। प्रेमचंद का यह विश्वास ही उनकी विशेषता है। उन्होंने बड़ी ईमानदारी और गहराई के साथ अपना विशेष दृष्टिकोण उपस्थित किया है।" (हिंदी साहित्य की भूमिका, पृ.33)

बोध प्रश्न

- 'रंगभूमि' के संबंध में रामविलास शर्मा ने क्या कहा?
- हजारीप्रसाद द्विवेदी प्रेमचंद को हिंदी कथा साहित्य की प्रौढ़ता का सबूत क्यों मानते हैं?
- प्रेमचंद ने 'रंगभूमि' में राजनीतिक विचारों को कैसे व्यक्त किया है?
- 'प्रेमाश्रम' सामंती जीवन का महाकाव्य है तो 'रंगभूमि' क्या है?

12.4 पाठ सार

छात्रो! रंगभूमि' का कथास्थल काशी के बाहरी भाग में बसा पांडेपुर गाँव है। ग्वाले, मजदूर, गाड़ीवान और खोमचेवालों की इस गरीब बस्ती में एक गरीब और अंधा रहता है जिसका नाम है - सूरदास। वह है तो भिखारी लेकिन उसके पास पुरखों की रखी हुई दस बीघा जमीन भी है। इसी दस बीघा जमीन के लिए जॉन सेवक का दिन प्रतिदिन बढ़ते रहने वाला लालच उपन्यास को विकास गति प्रदान करता है और साथ ही साथ कारुणिक दृश्य भी। जमीन का यह लालच केवल छोटा स लालच नहीं है बल्कि यह पूँजीवाद और औद्योगीकरण की विभीषिका को दर्शाने वाला है। प्रस्तुत उपन्यास में वैसे तो सौ से अधिक पात्र है लेकिन लेखक ने 45 पात्रों को नाम दिया है बाकी को बेनाम ही छोड़ दिया है। आप सब ने यह तो भलीभाँति समझ ही लिया है कि प्रेमचंद ने कभी केवल मनोरंजन के लिए साहित्य रचना का काम नहीं किया था। 'रंगभूमि' उपन्यास का भी अपना अलग महत्व और उद्देश्य है। मानव जीवन की वास्तविकता 'रंगभूमि' की चित्रपटी में उभर आया है।

हमने यह पाया कि प्रेमचंद के द्वारा लिखित 'रंगभूमि' सही अर्थों में एक सामाजिक उपन्यास है। आप सब ने यह तो भलीभाँति समझ ही लिया है कि प्रेमचंद ने कभी केवल मनोरंजन के लिए साहित्य रचना का काम नहीं किया था। 'रंगभूमि' की कथा को प्रेमचंद ने परिवार विशेष की कहानी कहते हुए तथा प्रमुख पात्रों का परिचय देना शुरू किया है। धीरे-धीरे

कथा के भावी विकास के लिए सामग्री अर्थात विषय मिलने लगी और उपन्यास का विकास द्रुत गति से होने लगा। प्रेमचंद ने संकेत, भविष्यवाणी, समस्याओं के निराकरण आदि जैसी तरह-तरह की विधियों को अपनाकर 'रंगभूमि' के कथानक को विकसित करने का प्रयास किया है। जैसे सूरदास का ताहिरअली के सामने यह संकल्प करना कि, 'मेरे जीते-जी तो जमीन न मिलेगी, हाँ मर जाऊँ तो भले ही मिल जाए'। पाठक को यह संकेत तो मिल जाता है कि जमीन के लिए संघर्ष अवश्य होगा। यह संकेत पाठक को आगे बढ़ने का रोमांच भी प्रदान करता है।

'रंगभूमि' के कथानक में पेचीदगियों, उलझनों तथा बाधाओं की भरमार है, किंतु कथावस्तु का प्रवाह कहीं रुका नहीं है 'रंगभूमि' उपन्यास का भी अपना अलग महत्व और उद्देश्य है। मानव जीवन की वास्तविकता 'रंगभूमि' की चित्रपटी में उभर आया है। संसार के मंच पर अभिनय करने वाले मनुष्यों में से एक सूरदास भी है। संसार किसी को नहीं छोड़ता इसी कारण से सूरदास के हिस्से का संघर्ष उसे लगातार करना पड़ा। सूरदास के माध्यम से लेखक ने यह समझाया कि मानव-जीवन की वास्तविकता 'रंगभूमि' की चित्रपटी है- संसार के मंच पर अभिनय करने वाले मनुष्यों की रंगस्थली, सूरदास उसका नायक है। वह अंधा-अपाहिज है तो क्या हुआ, दुनिया में आया है तो अभिनय उसे भी करना ही पड़ेगा। अपने हिस्से का खेल अर्थात कर्तव्य पूरी ईमानदारी से निभाना ही मनुष्य का सबसे पहला धर्म है। पाश्चात्य तथा पूर्वी सभ्यता का तुलनात्मक विवेचन भी 'रंगभूमि' में प्रस्तुत है। जिसके द्वारा प्रेमचंद ने भारतीय समाज के सम्मुख यह सांस्कृतिक प्रश्न भी उठाया है कि हमारी अंधानुकरण की प्रवृत्ति कहाँ तक उचित है? हम जो दूसरों का अनुकरण करते हुए अपने ही लोगों से दूर चले जाते हैं यह कितना उचित है?

'रंगभूमि' में लेखक ने स्वाधीनता संग्राम का युग और उस समय के समाज के दशा को दर्शाया है, संस्कारों के नाम पर होनेवाले अन्यायों का विरोध करते हुए उन्होंने संस्कार पालन की नवीन परिभाषा प्रस्तुत की है। हमें यह तो पता ही है कि प्रेमचंद के वातावरण चित्रण की प्रमुख विशेषता यह है कि यह शुरू तो होता है स्थानीय रंग के यथार्थवादी चित्रण से, किंतु क्षेत्रीयता अंतर्देशीय बन जाती है। 'रंगभूमि' में भी यही हुआ है। पांडेपुर का वातावरण भारत के प्रत्येक गाँव के वातावरण का दृश्य प्रस्तुत करता है। यह व्यापकता भारत की व्यापकता है। राजनीतिक आयाम को छूते हुए सामाजिक स्थिति का सही विवरण प्रस्तुत करके 'रंगभूमि' में प्रस्तुत समस्याएँ जनजागरण का संदेश देती हैं। गाँव से लेकर नगरों तक की पारिवारिक, सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक समस्याएँ इस उपन्यास की विषयवस्तु बन गई है।

12.5 पाठ की उपलब्धियाँ

इस इकाई के अध्ययन से निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त हुए हैं -

1. 'रंगभूमि' एक राष्ट्रीय उपन्यास है।
2. इसका समस्त घटना चक्र एक विराट राष्ट्रीय मंच पर बहुआयामी परिस्थितियों और चेतना के संदर्भ में उपस्थित होता है।

3. 'रंगभूमि' की सामाजिक चेतना अत्यंत प्रखर है जो सूरदास के माध्यम से संघर्ष का रूप धरण करती है। इसलिए इसे सामाजिक उपन्यास कहना भी उतना ही उचित है जितना की राष्ट्रीय उपन्यास कहना।
4. स्वाधीनता आंदोलन के युग में 'रंगभूमि' की रचना करके प्रेमचंद ने गांधीवादी राजनैतिक मूल्यों की प्रतिष्ठा की है। इस लिहाज से यह हिंदी में राजनैतिक उपन्यास धारा की पुरोधा कृति है।
5. एक दलित भिखारी को नायकत्व प्रदान करने के कारण यह उपन्यास दलित विमर्श और विकलांग विमर्श का पूर्वज सिद्ध होता है। स्त्री विमर्श और किसान विमर्श तो पूरे उपन्यास में व्याप्त है ही।

12.6 शब्द संपदा

1. कथानक = कहानी
2. चित्रपटी = कैनवास
3. विवरण = संपूर्ण जानकारी
4. व्यापकता = फैलाव
5. संस्कार = परंपरा से गृहीत विधि-विधान, परिमार्जन
6. स्थानीय = लोकल

12.7 परीक्षार्थ प्रश्न

खंड (अ)

दीर्घ श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 500 शब्दों में दीजिए।

1. 'रंगभूमि एक सामाजिक उपन्यास है।' इस कथन पर विचार कीजिए।
2. आलोचकों की दृष्टि में 'रंगभूमि' की उपादेयता पर प्रकाश डालिए।
3. 'रंगभूमि' में प्रेमचंद ने किस प्रकार गांधी के सिद्धांतों और असहयोग आंदोलन को चित्रित किया है?

खंड (ब)

लघु श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 200 शब्दों में दीजिए।

1. 'प्रेमचंद हिंदी कथा साहित्य की प्रौढ़ता के सबूत हैं।' इस कथन को स्पष्ट कीजिए।
2. 'रंगभूमि' में चित्रित स्वाधीनता संग्राम पर प्रकाश डालिए।
3. 'रंगभूमि' में चित्रित प्रेमचंद के विचारों पर चर्चा कीजिए।

खंड (स)

I. सही विकल्प चुनिए -

1. 'रंगभूमि' किस भारतीय व्यवस्था का प्रतीक है? ( )
   (अ) आतंक (आ) सांप्रदायिक (इ) समाज (ई) प्रशासनिक

2. प्रेमचंद को हिंदी कथा साहित्य की प्रौढ़ता के सबूत किसने कहा है? ( )
   (अ) रामदरश मिश्र (आ) हजारीप्रसाद द्विवेदी (इ) गोपाल राय (ई) रामविलास शर्मा

3. 'रंगभूमि' के सूरदास के स्वर को 'भारत की अजेय जनता का स्वर' किसने कहा है? ( )
   (अ) रामदरश मिश्र (आ) हजारीप्रसाद द्विवेदी (इ) गोपाल राय (ई) रामविलास शर्मा

4. 'रंगभूमि' उपन्यास का नायक कौन है? ( )
   (अ) सूरदास (आ) लक्ष्मीदास (इ) मानिकदास (ई) गुरुदास

II. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए -

1. 'रंगभूमि' गांधीजी की ..... चेतना से अनुप्राणित है।
2. 'रंगभूमि' ..... जीवन का दस्तावेज है।
3. 'रंगभूमि' गांधी जी की ..... चेतना से अनुप्राणित है।

III सुमेल कीजिए

1. पशु-धन	(अ) औद्योगिक शोषण का केंद्र
2. जॉन सेवक	(आ) औद्योगिक सभ्यता
3. रंगभूमि	(इ) कृषक सभ्यता
4. पांडेपुर	(ई) लालची

12.8 पठनीय पुस्तकें

1. रंगभूमि : प्रेमचंद
2. मुंशी प्रेमचंद एवं उनका उपन्यास 'रंगभूमि' : डॉ. जगदीश शर्मा
3. प्रेमचंद - विगत महत्ता और वर्तमान अर्थवत्ता : सं. मुरली मनोहर प्रसाद सिंह, रेखा अवस्थी

इकाई 13 : प्रेमचंदोत्तर हिंदी उपन्यास

रूपरेखा

13.1 प्रस्तावना
13.2 उद्देश्य
13.3 मूल पाठ : प्रेमचंदोत्तर हिंदी उपन्यास
13.3.1 प्रगति-प्रयोग काल
13.3.2 नवलेखन काल
13.3.3 समकालीन परिदृश्य
13.3.4 इक्कीसवीं शताब्दी
13.4 पाठ सार
13.5 पाठ की उपलब्धियाँ
13.6 शब्द संपदा
13.7 परीक्षार्थ प्रश्न
13.8 पठनीय पुस्तकें

13.1 प्रस्तावना

प्रिय छात्रो! इस इकाई में हम प्रेमचंदोत्तर हिंदी उपन्यासों का अध्ययन करेंगे। आप जान ही चुके हैं कि हिंदी उपन्यासों का उद्भव और विकास आधुनिक काल में हुआ है। भारतेंदु युग में ही उपन्यास कला का विकास हुआ, लेकिन प्रेमचंद के आगमन के साथ ही उपन्यास साहित्य का उत्तरोत्तर विकास हुआ। उत्तर भारत की समस्त जनता के आचार-विचार, रीति-रिवाज, रहन-सहन, आशा-आकांक्षा, दुख और सूझ-बूझ आदि प्रेमचंद के साहित्य के माध्यम से जाना जा सकता है। छात्रो! आप यह भी जान चुके हैं कि अध्ययन की सुविधा हेतु हिंदी उपन्यास साहित्य को प्रेमचंदपर्यंत और प्रेमचंदोत्तर हिंदी उपन्यास के रूप में विभाजित किया जाता है। प्रेमचंद को कसौटी के रूप में इस लिए अपना लिया गया है, क्योंकि उन्होंने उपन्यासों को ऐय्यारी और जासूसी के क्षेत्र से निकालकर समाज, राष्ट्र और देश से जोड़ा है। इस इकाई में आप प्रेमचंद के बाद के हिंदी उपन्यास साहित्य का अध्ययन करेंगे।

13.2 उद्देश्य

छात्रो! इस इकाई के अध्ययन के बाद आप -

- प्रेमचंदोत्तर हिंदी उपन्यास परंपरा के बारे में जान सकेंगे।
- प्रगति-प्रयोग काल के उपन्यासों से परिचित हो सकेंगे।
- नवलेखन काल के उपन्यास साहित्य से अवगत हो सकेंगे।
- हिंदी उपन्यास के समकालीन परिदृश्य को समझ सकेंगे।
- इक्कीसवीं शताब्दी के उपन्यासों के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

13.3 मूल पाठ : प्रेमचंदोत्तर हिंदी उपन्यास

छात्रो! प्रेमचंद को कसौटी के रूप में अपनाकर अध्ययन की सुविधा हेतु उपन्यास साहित्य को विभाजित किया जाता है। अब तक तो आप प्रेमचंदपूर्व कालीन और प्रेमचंद युगीन उपन्यासों के बारे में जान चुके हैं। आइए, अब प्रेमचंदोत्तर हिंदी उपन्यासों का अध्ययन करेंगे। प्रो. गोपाल राय ने 'हिंदी उपन्यास का इतिहास' शीर्षक पुस्तक में प्रेमचंदोत्तर हिंदी उपन्यासों को निम्नलिखित शीर्षकों में बाँटा है-

1. नई दिशाओं की तलाश - 1937-1947
2. विमर्श के नए क्षितिज - 1948-1980
3. समकालीन परिदृश्य - 1981-2000
4. इक्कीसवीं शताब्दी ...

आगे हम विस्तार से इनकी चर्चा करेंगे।

13.3.1 प्रगति-प्रयोग काल

प्रेमचंद के लेखन काल के उत्तरार्ध (1927-1936) में जिन औपन्यासिक प्रवृत्तियों की नींव पड़ी उनका पूरा विकास प्रेमचंद काल के बाद अर्थात 1937-1947 में होता दिखाई देता है। गोपाल राय द्वारा विभाजित 'नई दिशाओं की तलाश' वस्तुतः प्रगति-प्रयोग काल है। इस काल में साहित्य के क्षेत्र में जैनेंद्र सामने आए।

जैनेंद्र 'सुनीता' (1935) की रचना के साथ ही उपन्यासकार के रूप में प्रतिष्ठित हुए। साथ ही हिंदी उपन्यास में एक नए मोड के निर्माता के रूप में उन्हें स्वीकृति मिली। 1937 में उनका उपन्यास 'त्यागपत्र' प्रकाशित हुआ। उसके दो वर्ष के बाद 1939 में 'कल्याणी' का प्रकाशन हुआ। पुरुष-प्रधान समाज में स्त्री के शोषण को लेकर साहित्यकार चिंतित रहते ही हैं। जैनेंद्र ने इस चिंता को 'त्यागपत्र' और 'कल्याणी' में एक नया आयाम प्रदान किया। उन्होंने अपने उपन्यास 'सुनीता' में 'गृहिणी' की परंपरागत अवधारणा पर प्रश्न चिह्न लगा दिया था। 'त्यागपत्र' और 'कल्याणी' में खोखलेपन और अमानवीयता को जग जाहिर किया। उन्होंने जिस तरह से इस जड़ अवधारणा पर प्रहार किया वह उनके पूर्ववर्ती साहित्यकारों से भिन्न था।

'त्यागपत्र' की मृणाल स्त्री विषयक परंपरागत रूढ़ियों में जकड़ी अपने समय की स्त्री का प्रतिनिधित्व करती है। उस समय स्त्री को न ही प्रेम करने की स्वतंत्रता थी और न ही प्रेम को अभिव्यक्त करने की। वह तो अपनी इच्छा से साँस भी नहीं ले सकती थी। यदि किसी स्त्री ने इस परंपरा का उल्लंघन किया तो समाज उसे परंपरागत ढंग से दंडित करता है, जो अत्यंत यातनामय होता है। यहीं से जैनेंद्र ने मृणाल का मार्ग अलग दिखाया।

मृणाल अपने स्वभाव और संवेदना से उस समय की स्त्री से भिन्न थी। यह भिन्नता ही परंपरागत रूढ़ियों के खिलाफ आवाज उठाने के लिए, व्यवस्था के खिलाफ संघर्ष करने के लिए उसे प्रेरित करता है। यही भिन्नता उसकी त्रासदी का करण भी बनता है। जैनेंद्र ने मृणाल को

व्यवस्था के विरुद्ध संघर्ष करते हुए दिखाया। मृणाल इस परंपरागत रूढ़ियों से ग्रस्त व्यवस्था से विद्रोह करती है, उसे चुनौती देती है, पर बिल्कुल भिन्न तरीके से। विरोध का यह तरीका जैनेंद्र का अपना है। इस उपन्यास में तथाकथित सभ्य समाज का प्रतीक है जस्टिस दयाल। प्रमोद उसी घायल चेतना का प्रतीक है "जो मनुवादी संहिता की चक्की में स्वेच्छा से, धैर्य और स्वाभिमान के साथ, पिसती हुई मृणाल को लहूलुहान होते देखता है।" (हिंदी उपन्यास का इतिहास, पृ.171)।

छात्रो! वस्तुतः मृणाल की वेदना और विद्रोह दोनों मनोवैज्ञानिक तत्त्वों से युक्त हैं। मृणाल को अपने रूढ़िवादी उदासीन परिवार में किंचित भी स्नेह नहीं मिलता। परिणामस्वरूप उसके प्रेम को अस्वीकार किया जाता है तथा दुहाजू और प्रौढ़ व्यक्ति से उसका विवाह किया जाता है। पति का शंकालु स्वभाव, मृणाल का शारीरिक शोषण अंततः घर से निष्कासन एक के बाद एक घटित होते हैं। मृणाल आत्महत्या नहीं करती, बल्कि एक ऐसी जीवन पद्धति अपनाती है जो समाज की प्रबुद्ध चेतना को लहूलुहान कर देती है। "मृणाल के जीवन जीने के इस असाधारण चुनाव का प्रमोद की चेतना पर पड़े प्रभाव के रूप में अंकन ही जैनेंद्र की औपन्यासिक सफलता का रहस्य है।" (वही, पृ.172)

बोध प्रश्न

- 'त्यागपत्र' उपन्यास में जस्टिस दयाल किसके प्रतीक हैं?
- मृणाल को जैनेंद्र ने किसका विरोध करते हुए दिखाया है?

1937 में राजा राधिकारमण प्रसाद का उपन्यास 'राम रहीम' प्रकाशित हुआ। इसके कथ्य को समझने के लिए इस उपन्यास की भूमिका में दिए गए लेखकीय वक्तव पर ध्यान देना ठीक होगा- "धर्म और समाज के तमाम कच्चे चिट्ठे खोलकर रख देने की कोशिश की है। मैंने भारतवर्ष के इस युग के अत्याचार को, इस युग की पुकार को, दो जीती-जागती स्त्रियों के जीवन पर प्रस्फुटित करने का प्रयास किया है। यहाँ अध्यात्म के साए में शृंगार है, फैशन का दामन थामे दर्शन है। इसीलिए वास्तविकता की सादी जमीन पर नैतिकता की किनारी टँकी है - यथार्थवाद के मौसम में आदर्शवाद की छींटें हैं।" (रामदरश मिश्र, हिंदी उपन्यास : एक अंतर्यात्रा, पृ. 61)। वस्तुतः इस उपन्यास में बेला के माध्यम से जहाँ लेखक ने भारतीय स्त्री की धर्मपरायणता, त्याग, यातना का चित्रण किया है, वहीं बिजली के माध्यम से पश्चिमी संस्कार में पली स्त्री की धर्म-विमुखता, भोग प्रवृत्ति और मौज-मस्ती का चित्रण किया है। उन्होंने दो विरोधी प्रवृत्तियों को दिखाया है। इसमें अंग्रेजी शासन के अंतिम दिनों के पतनोन्मुख सामंत वर्ग का चित्रण भी है।

बोध प्रश्न

- 'राम रहीम' उपन्यास में किसका चित्रण है?

1936 ई. में उषादेवी मित्रा का प्रथम उपन्यास 'वचन का मोल' प्रकाशित हुआ था। "उषादेवी मित्रा का महत्व इस दृष्टि से है कि वे लगभग आधा दर्जन उपन्यास लिखने वाली पहली अहिंदीभाषी महिला उपन्यासकार हैं।" (गोपाल राय, हिंदी उपन्यास का इतिहास,

पृ.177)। उनके उपन्यासों में विधवा की व्यथा, स्त्री समस्याएँ, भारतीय स्त्री के आदर्श, परंपरा और आधुनिकता का द्वंद्व दिखाई देते हैं।

प्रताप नारायण श्रीवास्तव का पहला उपन्यास 'विदा' 1928 ई. में ही प्रकाशित हो चुका था। 1937 में 'विजय' और 1938 में 'विकास' प्रकाशित हुए। 'विजय' का मुख्य विषय है बाल विधवा की समस्या।

1940 में अज्ञेय के 'शेखर : एक जीवनी' का पहला भाग और 1944 में दूसरा भाग प्रकाशित हुआ। यह हिंदी उपन्यास साहित्य में एक नया मोड है। यह उपन्यास एक पात्र के पूरे जीवन पर आधारित है। इसे मनोवैज्ञानिक उपन्यास की संज्ञा दी गई है। फिर भी इसका कोई भी पात्र असामान्य मानसिकता से ग्रस्त नहीं हैं। गोपाल राय के शब्दों में कहें तो "यह 'मानवता' के संचित अनुभवों के प्रकाश में' एक क्रांतिकारी पात्र द्वारा 'स्वयं को पहचानने की कोशिश' है।" (हिंदी उपन्यास का इतिहास, पृ. 179)। इस उपन्यास के संबंध में अज्ञेय कहते हैं, "शेखर कोई बड़ा आदमी नहीं है, वह आधा भी आदमी नहीं है। लेकिन वह मानवता के संचित अनुभव के प्रकाश में ईमानदारी से अपने को पहचानने की कोशिश कर रहा है। वह अच्छा संगी भी नहीं हो सकता है, लेकिन उसके अंत तक उसके साथ चलकर आपके उसके प्रति कठोर भाव नहीं होंगे, ऐसा मुझे विश्वास है। और कौन जाने आज के युग में जब हम, आप सभी संश्लिष्ट चरित्र हैं, तब आप पाएँगे कि आपके भीतर भी एक शेखर है, जो बड़ा अच्छा भी नहीं, लेकिन स्वतंत्र और ईमानदार है, घोर ईमानदार।" हिंदी उपन्यास : एक अंतर्यात्रा, पृ.110)। शेखर एक सच्चा मनुष्य है। वह महान भी है और दीन भी। रामदरश मिश्र कहते हैं कि वह "महान इसलिए है कि उसकी जिज्ञासा में लगन है, निष्ठा है, दीन इसलिए है कि तीव्रता के कारण ही वह कई जगह सच्चा शोधक न रहकर केवल हेतुवादी रह जाता है और उसका हेतुवाद (रेशनलइजेशन) करुण और दयनीय जान पड़ने लगता है।" (वही)

बोध प्रश्न

- 'शेखर : एक जीवनी' कैसा उपन्यास है?

इलाचंद्र जोशी एक ओर व्यक्ति की मनःस्थिति का उद्घाटन करते हैं, तो दूसरी ओर अभिजात वर्ग के अहं पर चोट करते हैं। 1941 में उनके दो उपन्यास - संन्यासी और पर्दे की रानी- प्रकाशित हुए। संन्यासी का नंदकिशोरी एक अहंकारी पात्र है। आत्मकेंद्रित पात्र है। कामजन्य कुंठा का शिकार है। उसके चरित्र का विश्लेषण ही इस उपन्यास का उद्देश्य है। 'पर्दे की रानी' उपन्यास का विषय भी मानसिक विकृतियों के शिकार असामान्य व्यक्तियों के कुंठाग्रस्त चरित्र की व्याख्या है।

सर्वदानंद वर्मा के दो उपन्यास - 'संस्मरण' (1940) और 'नरमेधा' (1941) में भारतीय स्त्री की दयनीय स्थिति का चित्रण है। 'जूनिया' (1940), 'अनुरागिनी' (1944) तथा 'एकसूत्र और अमिताभ' (1946) गोविंद वल्लभ पंत के उपन्यास हैं। 'जूनिया' कूर्मांचल की पृष्ठभूमि पर आधारित दलित किसान की व्यथा-कथा है। 'अनुरागिनी' में ब्रिटिश शासन की शिक्षा पद्धति के

दोषों के साथ-साथ विधवा विवाह की समस्या का चित्रण है। 'एकसूत्र और अमिताभ' ऐतिहासिक उपन्यास है। इसमें 'एकसूत्र' अकबर के जीवन पर आधारित है जबकि 'अमिताभ' गौतम बुद्ध के जीवन पर।

1941 में यशपाल का उपन्यास 'दादा कामरेड' प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास में आतंकवाद और साम्यवाद का सम्मिश्रण है। इसके बाद 'देशद्रोही' (1943), 'दिव्या' (1945) और 'पार्टी कामरेड' (1946) प्रकाशित हुए। 'दिव्या' एक ऐतिहासिक उपन्यास है, जबकि 'दादा कामरेड', 'देशद्रोही' और 'पार्टी कामरेड' समकालीन राजनीति तथा स्त्री-पुरुष के संबंधों पर आधारित उपन्यास हैं। 'देशद्रोही' में "भारतीय साम्यवादी आंदोलन की सार्थकता और कांग्रेस पार्टी के वर्गचरित्र के अंतर्विरोध को अतिरिक्त उत्साह के साथ प्रस्तुत किया गया है। इसमें सन तीस से बयालीस तक की राजनीतिक स्थितियों का अंकन किया गया है, जिसमें उपन्यास के प्रमुख पात्र अपने समय के राजनीतिक प्रश्नों से जूझते हैं।" (हिंदी उपन्यास का इतिहास, पृ.184)

गंगा प्रसाद मिश्र के उपन्यास 'संघर्षों के बीच' (1944) मध्यवर्गीय परिवार की कथा है तथा 'महिमा' (1945) स्त्री-पुरुष के आकर्षण और अंतर्द्वंद्व की कथा है। राहुल सांकृत्यायन का पहला उपन्यास 'जीने के लिए' 1940 में प्रकाशित हुआ। उसके बाद 1944 में 'सिंह सेनापति' और 'जय यौधेय' प्रकाशित हुए।

हजारी प्रसाद द्विवेदी का पहला उपन्यास 'बाणभट्ट की आत्मकथा' 1946 में प्रकाशित हुआ था। इसका कथा संसार भले ही इतिहास पर आधारित है, इसमें इतिहास कम और कल्पना तथा आलोक श्रुति से प्राप्त प्रसंग अधिक हैं। इसका केंद्रीय विषय है उदात्त प्रेम। "बाणभट्ट और निपुणिका तथा भट्टिनी के प्रेम का चित्रण जिस उदात्त स्तर पर द्विवेदी जी ने किया है, वह हिंदी साहित्य में अकेला है।" (हिंदी उपन्यास का इतिहास, पृ.189)। इसमें सिर्फ प्रेम की संवेदना तक सीमित नहीं है, बल्कि राष्ट्रीय संकट का इतिहास बोध भी देखा जा सकता है।

1943 में गुरुदत्त का पहला उपन्यास 'पथिक' और उसके बाद 'उन्मुक्त प्रेम' (1944), 'स्वाधीनता के पथ पर' (1947), 'स्वराज्य-दान' (1947) प्रकाशित हुए। इनमें 1920-1947 की अवधि की राजनीति और सामाजिक परिस्थितियों का अंकन है। 'कमला' (1943) रामचंद्र तिवारी का उपन्यास है। इसमें उत्तर भारत के एक गाँव को केंद्र में रखकर निर्धन, साधनहीन, अशिक्षित तथा अभाव पीड़ित किसानों की जिंदगी का यथार्थ और अंतरंग चित्रण किया गया है। वृंदावन लाल वर्मा का उपन्यास 'झाँसी की रानी' 1946 में प्रकाशित हुआ था जो ब्रिटिश कालीन भारतीय इतिहास पर आधारित हिंदी का पहला उपन्यास है।

इस काल की महिला उपन्यासकारों में कंचनलता सब्बरवाल, वासंती रानी सेन, शीलो, प्रभावती भटनागर, आदि का नाम लिया जा सकता है। कंचनलता सब्बरवाल ने 'मूक प्रश्न' (1944) में यह निरूपित किया है कि स्त्री के लिए चारित्रिक सौंदर्य महत्वपूर्ण है। सेन रचित 'दिलारा' (1941) में हिंदू-मुस्लिम एकता विषयक समस्या का चित्रण है तो शीलो के उपन्यास

'ग्रेजुएट लड़की' (1942) में दहेज की समस्या का अंकन है। प्रभावती भटनागर ने 'पराजय' (1946) में परिवारों में कुरूप बहू की उपेक्षा और उसके शोषण का चित्रण किया है।

बोध प्रश्न

- 'संन्यासी' उपन्यास का उद्देश्य क्या है?
- 'जूनिया' उपन्यास की पृष्ठभूमि क्या है?
- 'एकसूत्र और अमिताभ' किस पर आधारित उपन्यास है?
- 'बाणभट्ट की आत्मकथा' का केंद्रीय विषय क्या है?
- ब्रिटिश कालीन भारतीय इतिहास पर आधारित हिंदी के पहला उपन्यास का नाम बताइए।

13.3.2 नवलेखन काल

1947 से हिंदी उपन्यास साहित्य में नया मोड देखने को मिला। 15 अगस्त, 1947 भारतीय इतिहास की ज्वलंत घटना है। इससे औपनिवेशिक शासन से मुक्ति, प्रजातंत्र का जन्म, सामंती शासन से मुक्ति का स्वप्न आदि अनेक बातें जुड़ी हुई हैं। आजादी के साथ-साथ भारत-पाक विभाजन की त्रासदी भी सामने आई। इन सारी घटनाओं का प्रभाव साहित्य पर भी पड़ा।

1947 से 1980 तक के काल खंड को नवलेखन काल कहा जाता है। चतुरसेन शास्त्री का ऐतिहासिक-सांस्कृतिक उपन्यास 'वैशाली की नगरवधू' (1949) सामने आया। इसकी भूमिका में चतुरसेन शास्त्री ने यह घोषणा की कि "यह सत्य है कि यह उपन्यास है। परंतु इससे अधिक सत्य यह है कि यह एक गंभीर रहस्यपूर्ण संकेत है, जो उस काले पर्दे के प्रति है, जिसकी ओट में आर्यों के धर्म, साहित्य, राजसत्ता और संस्कृति की पराजय और मिश्रित जातियों की प्रगतिशील संस्कृति सहस्राब्दियों से छिपी हुई है, जिसे संभवतः किसी इतिहासकार ने आँख उघाड़कर देखा नहीं है।" (विशाली की नगरवधू, पृ.5)। 'वयं रक्षामः' में राम-रावण कथा को केंद्र में रखकर आर्य, राक्षस, देव, दानव आदि संस्कृतियों के संघर्ष और समन्वय की कथा प्रस्तुत की गई है। इस उपन्यास की भूमिका में चतुरसेन शास्त्री ने लिखा है कि, "इस उपन्यास में प्राग्वेदकालीन नर, नाग, देव, दैत्य, दानव, आर्य, अनार्य आदि विविध नृवंशों के जीवन के वे विस्मृत पुरातन रेखाचित्र हैं।" (वयं रक्षामः, पृ.7)

छात्रो! 1947 तक तो वृंदावनलाल वर्मा हिंदी के प्रथम ऐतिहासिक उपन्यासकार के रूप में प्रतिष्ठित हो चुके थे। 1947 के बाद उनके प्रकाशित उपन्यासों में 'कचनार' (1947), 'मृगनयनी' (1950), 'टूटे काँटे' (1954), 'अहल्याबाई' (1955), 'भुवन विक्रम' (1957)। 'माधव जी सिंधिया' (1957) आदि उल्लेखनीय हैं। 'कचनार' में 18 वीं शताब्दी का वर्णन है। इसके संबंध में लेखक ने परिचय में ही लिखा है, "कचनार के लिखने में इतिहास और परंपरा दोनों का उपयोग किया है। ... उपन्यास में वर्णित सब घटनाएँ सच्ची हैं।" इसकी मुख्य कथा धामोनी के राजा दलीपसिंह और कचनार की प्रेम कथा है। दूसरी कथा कलावती और मानसिंह के प्रेम और विवाह की है। इनके अलावा महंत अचलपुरी और गुसाँई-समाज तथा सागर राज्य एवं पिंडारियों की शत्रुता की कथाएँ भी वर्णित हैं। 'मृगनयनी' की कथावस्तु 1486 ई. से 1516 ई. के

बीच हुए मानसिंह तोमर से संबंधित है, जो ग्वालियर के राजा थे। इस उपन्यास में मानसिंह, सिकंदर लोदी, ग्यासुद्दीन खिलजी, नसीरूद्दीन खिलजी, महमूद बघर्रा, राजसिंह, मृगनयनी आदि ऐतिहासिक पात्रों का चित्रण है। लेखक ने प्रसिद्ध संगीतकार बैजू बावरा को मानसिंह का दरबारी गायक बताया है जिसने मानसिंह की गूजरी रानी मृगनयनी के नाम पर 'गूजरी टोड़ी' और 'मंगल गूजरी' रागों का सृजन किया था। इतिहास में कहीं भी बैजू बावरा के जीवन की प्रामाणिकता सिद्ध नहीं होती। उन्होंने इतिहास और कल्पना का सामंजस्य स्थापित किया था।

बोध प्रश्न

- 'वैशाली की नगरवधू' के संबंध में लेखक ने क्या कहा है?
- हिंदी के प्रथम ऐतिहासिक उपन्यासकार कौन हैं?

इलाचंद्र जोशी को हिंदी में मनोवैज्ञानिक उपन्यास का पुरस्कर्ता माना जा सकता है। उनके उपन्यासों में कुंठाओं, मनोग्रंथियों, मानसिक विकारों, मनोरोगों के शिकार असामान्य पात्रों का चित्रण प्रमुखता से पाया जाता है। 'मुक्तिपथ', 'जिप्सी', 'जहाज का पंछी' 'ऋतुचक्र' आदि कुछ प्रमुख उपन्यास हैं। 'जहाज का पंछी' मध्यमवर्गीय नवयुवक के परिस्थिति-प्रताड़ित जीवन की कहानी है, जो कलकत्ते के विषमताजनित घेरे में फँसकर इधर-उधर भटकने को विवश हो जाता है। लेकिन उसकी बौद्धिक चेतना उसे रह-रह कर नित-नूतन पथ अपनाने को प्रेरित करती है।

'चित्रलेखा' (1934) के रचनाकार भगवती चरण वर्मा उपन्यासकार के रूप में एक निजी पहचान बना चुके थे। इस अवधि में उनके प्रकाशित उपन्यास हैं - 'टेढ़े मेढ़े रास्ते' (1946), 'आखिरी दाँव' (1950), 'भूले बिसरे चित्र' (1959), 'सबहिं नचावत राम गोसाईं' (1970), 'प्रश्न और मरीचिका' (1973)। 'टेढ़े मेढ़े रास्ते' सामाजिक उपन्यास है। इसमें किसानों का शोषण, जमींदारों का भ्रमित चरित्र, पूँजीपति मानसिकता आदि को देखा जा सकता है। 'भूले बिसरे चित्र' में बदलते जीवन मूल्यों को दिखाया गया है। 'प्रश्न और मरीचिका' में उपन्यासकार यह कहते हैं कि "यह मतदान करने वाली जनता बेदिमाग, अपढ़, भुलावे में भटकने वाले लोगों का समुदाय है।" गोपाल राय कहते हैं कि भगवती चरण वर्मा "नियतिवाद, मानवीय विवशता, समाजवाद, साम्यवाद, गांधीवाद, आतंकवाद आदि के संबंध में अपने पूर्वाग्रहों से कहीं भी मुक्त नहीं हो सका है।" (हिंदी उपन्यास का इतिहास, पृ.200)

बोध प्रश्न

- हिंदी में मनोवैज्ञानिक उपन्यास के पुरस्कर्ता के रूप में कौन प्रसिद्ध हैं?
- 'टेढ़े मेढ़े रास्ते' का विषय क्या है?

यशपाल ने 'झूठा सच' (वतन और देश-1958, देश का भविष्य-1960) में स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व और बाद की स्थितियों का अंकन किया है। इस काल में अज्ञेय के दो उपन्यास 'नदी के द्वीप' (1951) और 'अपने अपने अजनबी' (1961) प्रकाशित हुए। 'नदी के द्वीप' एक प्रेम कहानी है - रेखा, भुवन और गौरा की। इसमें अज्ञेय ने जीवन-दर्शन की ओर संकेत किया है। उनकी

मान्यता है कि दर्द में भी आस्था होता है। एक तरह से यह जीवन का आश्वासन होता है। इतना ही नहीं दर्द से मँज कर व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास होता है। 'अपने अपने अजनबी' में उन्होंने योके और सेल्मा नामक पात्रों के माध्यम से जीवन, मृत्यु, आस्था, वरण की स्वतंत्रता आदि से संबंधित प्रश्नों पर विचार किया है।

बोध प्रश्न

- 'अपने अपने अजनबी' में अज्ञेय ने किन-किन विषयों पर विचार किया है?

रांगेय राघव की औपन्यासिक रचनाशीलता का वास्तविकता रूप स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद सामने आया। उनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं - 'मुर्दों का टीला' (1948), 'प्रतिदान' (1950), 'चीवर' (1951), 'अँधेरे के जुगनू' (1953), 'पक्षी और आकाश' (1957), 'कब तक पुकारूँ' (1958), 'धरती मेरा घर' (1960) आदि। 'कब तक पुकारूँ' में करनट कबीलों के जीवन यथार्थ का अंकन है।

भैरवप्रसाद गुप्त के लेखन की शुरूआत स्वतंत्रता के पूर्व ही 'शोले' (1946) के प्रकाशन के साथ हुई थी। लेकिन वे 'गंगा मैया' (1952), 'सत्ती मैया का चौरा' (1959) आदि उपन्यासों से प्रसिद्ध हुए। इन उपन्यासों में वर्ग चेतना और साम्यवाद को देखा जा सकता है। किसानों और जमींदारों का आपसी संघर्ष तथा किसानों का विजय इन उपन्यासों का उद्देश्य है।

बोध प्रश्न

- रांगेय राघव के किस उपन्यास में करनट कबीलों के जीवन यथार्थ का चित्रण है?
- 'सत्ती मैया का चौरा' उपन्यास का क्या उद्देश्य है?

नागार्जुनप्रेमचंद की औपन्यासिक परंपरा को पुनर्जीवित करने वाले स्वतंत्र भारत के प्रथम उपन्यासकार हैं। 'रतिनाथ की चाची' (1948), 'बलचनमा' (1952), 'बाबा बटेसरनाथ' (1954), 'वरुण के बेटे' (1957), 'दुखमोचन' (1957), 'उग्रतारा' (1963), 'कुंभीपाक' आदि उनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं। 'रतिनाथ की चाची' में किसान संघर्ष का संकेत है तो 'बलचनमा', 'बाबा बटेसरनाथ' और 'वरुण के बेटे' में यह संघर्ष वास्तविक रूप में सामने आता है।

अमृतलाल नागर के प्रसिद्ध उपन्यास हैं 'बूँद और समुद्र' (1956), 'अमृत और विष' (1966), 'मानस का हंस' (1972), 'नाच्यो बहुत गोपाल' (1978), 'खंजन नयन' (1981), 'अग्निगर्भा' (1983) आदि। 'मानस का हंस' और 'खंजन नयन' तुलसी और सूर पर आधारित उपन्यास हैं। 'बूँद और समुद्र' को स्वयं नागर जी ने देश के मध्यवर्गीय नागरिक समाज का गुण-दोष भरा चित्र कहा है। 'अमृत और विष' में भारतीय गणतंत्र के प्रथम पंद्रह वर्षों का परिदृश्य है। 'नाच्यो बहुत गोपाल' में भंगी समाज का चित्रण है।

धर्मवीर भारती का 'गुनाहों का देवता' (1949) किशोर भावुकता से भरा उपन्यास है। इस दौर के उपन्यासकारों में देवेंद्र सत्यर्थी (दूधगाछ, 1958), राजेंद्र यादव (शह और मात,

1959), अमृत राय (नागफनी का देश, 1956), प्रभाकर माचवे (एकतारा, 1953), फणीश्वरनाथ रेणु (मैला आँचल, 1954) आदि प्रमुख हैं।

1973 में प्रकाशित उपन्यास 'तमस' (भीष्म साहनी) का मुख्य विषय है भारत विभाजन। इस उपन्यास में उपन्यासकार ने आजादी के कुछ समय पूर्व को कथा का आधार बनाया। इसमें प्रमुख रूप से सांप्रदायिक विभीषिका और उससे उत्पन्न परिस्थितियों को दिखाया है। इसमें उन्होंने स्पष्ट रूप से यह दर्शाया है कि हिंदू-मुसलमानों के बीच फूट डालने के लिए अंग्रेजों ने किस प्रकार षड्यंत्र किया था। इस उपन्यास में सामाजिक विसंगतियों और राजनैतिक चेतना को बखूबी देखा जा सकता है।

बोध प्रश्न

- अमृतलाल नागर के एक उपन्यास का नाम बताइए जिसमें भंगी समाज का चित्रण है।
- 'तमस' उपन्यास की मूल कथा क्या है?

13.3.3 समकालीन परिदृश्य

अध्ययन की सुविधा के लिए 1981 से लेकर 2000 की समयावधि को समकालीन परिदृश्य के अंतर्गत माना जा रहा है। 1981 में संजीव का पहला उपन्यास 'किसनगढ़ की अहेरी' प्रकाशित हुआ। यह अवध की सामंती अहेर वृत्ति आधारित है। 'सर्कस' (1984) सर्कस-कर्मियों के जीवन पर आधारित है। 'सावधान नीचे आग है' (1986) में झरिया क्षेत्र की कोयला खान की एक दुर्घटना को केंद्र में रखकर कोयला माफिया का चित्रण किया गया है। 'धार' (1990) में कोयला के अवैध खनन से जुड़ा कथा संसार है। 'पाँव तले की दूब' (2000) झारखंड की जनजातियों और उनके आंदोलन पर आधारित है। 'जंगल जहाँ शुरू होता है' (2000) नेपाल की सीमा से लेकर बिहार के पश्चिमी चंपारण जिले के मिनी चंबल के क्षेत्र के थारू जनजाति पर आधारित है।

चंद्रकांता के उपन्यास 'ऐलान गली जिंदा है' (1984) और 'यहाँ वितस्ता बहती है' (1992) कश्मीर की पृष्ठभूमि पर आधारित उपन्यास हैं। 'ऐलान गली जिंदा है' में श्रीनगर की ऐलान गली में कई पीढ़ियों के एक साथ जीते परिवेश को दर्द के साथ चित्रित किया गया है। जीविका के लिए युवा पीढ़ी इस गली से पलायन कर रही है, लेकिन यह गली अपनी सांस्कृतिक तथा राजनैतिक विशेषताओं के लिए जानी जाती है। बाहर जाने वाले भी इसे भूल नहीं पाते। 'यहाँ वितस्ता बहती है' कश्मीर के हिंदू समाज के जीवन का दस्तावेज है। 'अपने अपने कोणार्क' (1995) की कुनी पढ़ी-लिखी और स्वावलंबी होने के बावजूद पारिवारिक मर्यादा के रूढ़ मूल्यों के कारण 32 वर्ष तक एकाकीपन और अनिर्णय की मानसिक स्थिति में जीती है। कोणार्क की यात्रा में सिद्धार्थ के साहचर्य से उसके मन की गाँठें खुलती हैं और अंत में डॉ. अनिरुद्ध को अपने जीवन साथी के रूप में स्वीकार कर अपने जीवन को सार्थकता प्रदान करती है।

बोध प्रश्न

- संजीव का उपन्यास 'जंगल जहाँ शुरू होता है' किस पर आधारित है?
- 'यहाँ वितस्ता बहती है' की पृष्ठभूमि क्या है?

पंकज बिष्ट का उपन्यास 'लेकिन दरवाजा' (1982) दिल्ली के समकालीन लेखक समाज का दस्तावेज है। 'उस चिड़िया का नाम' (1989) में पहाड़ी जीवन का चित्रण है। 1983 में प्रकाशित रामदेव धुरंधर के 'छोटी मछली बड़ी मछली' तथा 'पूछो इस माटी से' मॉरीशस के परिवेश और जीवन यथार्थ से जुड़े हुए है। इन उपन्यासों में भारतीय गिरमिटिया मजदूरों की जीवन गाथा है।

नासिरा शर्मा का उपन्यास 'सात नदियाँ एक समुंदर' 1984 में प्रकाशित हुआ। यह आधुनिक ईरान की पृष्ठभूमि में अयातुल्ला खुमैनी की रक्तरंजित इस्लामी क्रांति पर आधारित उपन्यास है। दाम्पत्य जीवन का संतुलन तब बिगड़ता है जब स्त्री अपने पति की तुलना में अधिक या समान योग्य और आर्थिक दृष्टि से स्वतंत्र हो जाती है। 'शाल्मली' (1987) में इन परिस्थितियों पर प्रकाश डाला गया है। 'ठीकरे की मँगनी' (1989) की कथा मुस्लिम समाज से जुड़ी है। उपन्यास में एक स्थान पर लेखिका यह कहती हैं, "एक घर औरत का अपना भी तो हो सकता है, जो उसके बाद और शौहर के घर से अलग, उसकी मेहनत और पहचान का हो। सवाल रास्ता चुनने का और उस पर दृढ़तापूर्वक चलने का है।" मुस्लिम स्त्री को परंपरागत रूढ़ियों और घुटन भरा माहौल से निकालकर अपनी पहचान बनाने की प्रेरणा इस उपन्यास में है। शीर्षक मुस्लिम समाज के एक रिवाज से जुड़ा हुआ है जिसके अनुसार जन्म लेते ही किसी लड़की की मँगनी किसी लड़के के साथ कर दी जाती है। 'ज़िंदा मुहावरे' (1993) भारत विभाजन की त्रासदी पर आधारित उपन्यास है।

अब्दुल बिस्मिल्लाह का उपन्यास 'झीनी झीनी बीनी चदरिया' (1986) बनारस के बुनकर समाज का प्रामाणिक दस्तावेज है। 'मुखड़ा क्या देखे' (1996) में निम्नवर्गीय दलित मुस्लिम परिवार की कहानी है। कमल कुमार का उपन्यास 'हैमबरगर' (1996) पाश्चात्य परिवेश में भारतीय स्त्री के संघर्ष को उजागर करता है। प्रभा खेतान का 'आओ पेपे घर चलें' (1990) में अमरीकी स्त्री के जीवन के सच को प्रस्तुत करने वाला यह हिंदी का पहला उपन्यास है। 'तालाबंदी' (1991), 'छिन्नमस्ता' (1993), 'अपने अपने चहरे' (1994), 'पीली आँधी' (1996) आदि प्रभा खेतान के प्रसिद्ध उपन्यास हैं।

बोध प्रश्न

- रामदेव धुरंधर के किस उपन्यास में भारतीय गिरमिटिया मजदूरों की गाथा है?
- 'ज़िंदा मुहावरे' में किस त्रासदी का अंकन है?
- अब्दुल बिस्मिल्लाह का कौन सा उपन्यास बनारस के बुनकर समाज पर आधारित है?
- अमरीकी स्त्री के जीवन के सच को प्रस्तुत करने वाला हिंदी का पहला उपन्यास कौन सा है?

मैत्रेयी पुष्पा की पहचान 'इदन्नम्म' (1994) नामक उपन्यास से निर्मित हुई। इसमें बुंदेलखंडी जीवन को देख सकते हैं। 'चाक' (1997) और 'झूला नट' (1999) में जाट समाज का

यथार्थ अंकित है। भारत में आज भी कुछ जनजातियाँ पाई जाती हैं जो आजादी का अर्थ नहीं जानती। उनके पास न अपनी जमीन है, न ही घर बार। औपनिवेशिक शासन ने उन्हें जरायमपेशा जाति घोषित करके उन्हें सभ्य समाज से दूर और उपेक्षा का पात्र बना दिया। इसका अंकन 'अल्मा कबूतरी' (2000) में हुआ है। यह उपन्यास स्त्री विमर्श की दृष्टि से भी उल्लेखनीय है। इसी प्रकार चित्रा मुद्गल का उपन्यास 'आवाँ' (2000) और मृदुला गर्ग का 'कठगुलाब' को भी स्त्री विमर्श की दृष्टि से देखा जा सकता है।

गीतांजलि श्री का 'हमारा शहर उस बरस' (1988) में सांप्रदायिकता का चित्रण है। इनके उपन्यासों में 'माई', 'तिरोहित', 'खाली जगह' भी उल्लेखनीय हैं। 2018 में प्रकाशित उनके उपन्यास 'रेत समाधि' की कथा दिल्ली की गलियों से शुरू होती है और अनेक पड़ाव पार करते-करते पाकिस्तान पहुँचती है। यह उपन्यास मुख्य रूप से देश विभाजन की व्यथा-कथा है। इसके अंग्रेजी उपन्यास 'टॉम्ब ऑफ सैंड' को 2022 के अंतरराष्ट्रीय बुकर प्राइज़ प्राप्त हुआ है।

वीरेंद्र जैन का उपन्यास 'डूब' (1991) मध्य प्रदेश के पिछडे हुए अंचल की पीड़ा को व्यक्त करता है। 'पंचनामा' (1996) में उन्होंने आश्रमों के छद्म और उनमें पनपे भ्रष्टाचार को दिखाया गया है। कमलाकांत त्रिपाठी के उपन्यास 'पाही घर' (1991) 1857 की प्रसिद्ध ऐतिहासिक घटना 'सिपाही विद्रोह' पर आधारित है। स्त्री की पीड़ा और उसके प्रश्नों को गंभीरता से उठाता है विष्णु प्रभाकर का उपन्यास 'अर्द्धनारीश्वर' (1993)। वामपंथी राजनीति के अंतर्विरोध से जुड़ा हुआ उपन्यास है 'बीच में विनय' (स्वयं प्रकाश, 1994)। मारवाड़ी परिवार की पाँच पीढ़ियों की संघर्ष गाथा 'कलि-कथा वाया बाइपास' (अलका सरावगी, 1998) में चित्रित है। भगवानदास मोरवाल के 'काला पहाड़' (1999) में सांप्रदायिकता पर गहरी संवेदना से भरा हुआ विमर्श है।

बोध प्रश्न

- 'अल्मा कबूतरी' में किसका चित्रण है?
- स्वयं प्रकाश के किस उपन्यास में वामपंथी राजनीति के अंतर्विरोध का चित्रण है?
- 'काला पहाड़' में किसका चित्रण है?
- 2022 का अंतरराष्ट्रीय बुकर प्राइज़ किस उपन्यास को प्राप्त हुआ?

13.3.4 इक्कीसवीं शताब्दी

छात्रो! अब तक आपने प्रेमचंदोत्तर उपन्यासों में 1937 से लेकर 2000 तक प्रमुख उपन्यासों की जानकारी प्राप्त कर चुके हैं। आइए अब इक्कीसवीं शताब्दी के कुछ प्रमुख उपन्यासों की चर्चा करेंगे।

इक्कीसवीं सदी में साहित्य में विमर्श ने महत्वपूर्ण स्थान ग्रहण किया। आज तक जो समुदाय उपेक्षित थे, केंद्र से दूर थे, अधिकारों से वंचित थे वे सभी धीरे-धीरे केंद्र की ओर आने लगे और अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करने लगे। प्रमुख रूप से स्त्री, दलित, आदिवासी और अल्पसंख्यक अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष करने लगे। अब किन्नर, समलैंगिक, वृद्ध, किसान आदि भी अपने अधिकारों के लिए संघर्षरथ हैं। संवेदनशील साहित्यकारों ने इनकी पीड़ा,

असंतोष और आक्रोश को वाणी दी। अध्ययन की सुविधा के लिए स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, आदिवासी विमर्श, अल्पसंख्यक विमर्श, किन्नर विमर्श और वृद्धावस्था विमर्श को कसौटियों के रूप में अपनाया जा रहा है।

स्त्री विमर्श

समाज लिंग के आधार पर बँट चुका है। भारतीय समाज में स्त्री और पुरुष एक दूसरे के विरोधी नहीं है, बल्कि एक दूसरे के पूरक हैं। स्त्री-पुरुष के इस मूलभूत युग्म के लिए हमारे पास अर्द्धनारीश्वर का सुंदर प्रतीक है। लेकिन धीरे-धीरे संकीर्ण मानसिकता के कारण स्त्री शिक्षा और अन्य मूलभूत अधिकारों से वंचित हो गई। परिणामस्वरूप वह घर की चाहरदीवारी के अंदर कैद होकर रह गई। वह अपनी सहनशक्ति के लिए दंडित होती रही। आखिर वह कब तक अत्याचारों को सह सकती है? उसने आवाज उठाई। अपने अधिकारों के लिए संघर्ष किया। साहित्यकारों ने स्त्री की व्यथा-कथा, चेतना, संघर्ष आदि को उपन्यासों के माध्यम से अभिव्यक्त किया।

स्त्री विमर्श से अभिप्राय यह नहीं कि पुरुष का विरोध करें, बल्कि इसका यह अर्थ है स्त्री अपने अधिकारों को जान लें और अन्याय के विरुद्ध संघर्ष करें। उसके भी इस समाज में पुरुष के समान जीने का अधिकार है। जब 'मैं' को मारकर, 'हम' को जीवित करेंगे तब सभी तरह की समस्याओं का समाधान होगा। स्वयं को पहले 'स्व' से मुक्त करना ही होगा। अन्यथा अहं प्रमुख स्थान ले लेगा जिसके कारण तरह-तरह की समस्याओं का सामना करना पड़ेगा।

इक्कीसवीं सदी से पहले भी साहित्यकारों ने स्त्री की समस्याओं और व्यथा-कथा को लेकर अनेक उपन्यासों का सृजन किया है। स्त्री साहित्यकारों के साथ-साथ पुरुष साहित्यकारों ने भी स्त्री के प्रति संवेदना व्यक्त कर चुके हैं। स्त्री विमर्श की दृष्टि से कुछ इक्कीसवीं सदी में प्रकाशित कुछ प्रमुख उपन्यास इस प्रकार हैं - 'बाबल तेरा देश में' (भगवानदास मोरवाल, 2004), 'कही ईसुरी फाग' (मैत्रेय पुष्पा, 2004), 'शेफाली के फूल' (विद्यावती दुबे, 2006), 'लाल गुलाब' (मेहरुन्निसा परवेज, 2006), 'तिनका तिनके पास', 'दस द्वारे का पिंजरा' (अनामिका, 2008), 'मिलजुल मन' (मृदुला गर्ग, 2009), 'बात एक औरत की' (कृष्णा अग्निहोत्री, 2013) आदि।

बोध प्रश्न

- स्त्री विमर्श से क्या अभिप्राय है?

आदिवासी विमर्श

जल-जंगल-जमीन ये आदिवासी समुदायों की मूलभूत आवश्यकताएँ हैं। विकास के नाम पर इन आदिवासियों को अपने मूल निवास से विस्थापित किया जा रहा है। उनका शोषण किया जा रहा है। आदिवासियों की पीड़ा और आक्रोश को साहित्यकारों ने उपन्यासों के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। 1957 में रांगेय राघव का 'कब तक पुकारूँ' प्रकाशित हुआ था जो करनट जनजाति पर आधारित है। संजीव के लगभग सभी उपन्यास आदिवासी विमर्श की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं।

इक्कीसवीं सदी में प्रकाशित कुछ प्रमुख उपन्यास हैं - 'ग्लोबल गाँव का देवता' (रणेन्द्र), 'आछरी माछरी' (हरिसुमन बिष्ट), 'बाजत अनहद ढोल' (मधुकर सिंह), 'आदिभूमि' (प्रतिभा राय), 'काला पादरी' (तेजिन्दर), 'पठार पर कोहरा' (राकेशकुमार सिंह), 'रेत' (भगवानदास मोरवाल), 'धूणी तपे तीर' (हरिराम मीणा), 'अरण्य में सूरज' (श्रीमती अजित गुप्ता), 'मरंग गोड़ा नीलकंठ हुआ' (महुआ माजी) आदि।

बोध प्रश्न

- आदिवासी विमर्श की दृष्टि से कुछ उपन्यासों का नाम बताइए।

दलित विमर्श

दलित अर्थात जिसका दलन हुआ हो। सदियों से दमित, पीड़ित और उपेक्षित वर्ग। इस वर्ग ने भी अपने अधिकारों के लिए लड़ना शुरू किया। इस चेतन के पीछे शिक्षा का महत्वपूर्ण स्थान है। दलित साहित्य में लालित्य के स्थान पर दालित्य को देखा जा सकता है। जगदीश चंद्र, मोहनदास नैमिशराय, ओमप्रकाश वाल्मीकि, रूपसिंह चंदेल, शिवमूर्ति, तुलसीराम, जयप्रकाश कर्दम, कौशल्या बैसंत्री, सुशीला ठाकभौरे आदि प्रमुख दलित साहित्यकार हैं। दलित विमर्श की दृष्टि से 'नरक कुंड में बास' (जगदीश चंद्र माथुर), 'मुक्ति पर्व' (मोहनदास नैमिशराय), 'सूअरदान' (रूपनारायण सोनकर), 'छप्पर' (जयप्रकाश कर्दम) आदि उल्लेखनीय हैं।

बोध प्रश्न

- कुछ दलित उपन्यासों के नाम बताइए।

अल्पसंख्यक विमर्श

अल्पसंख्यक अर्थात जनसंख्या की दृष्टि से कम। सामान्य रूप से अल्पसंख्यक विमर्श कहते ही मुस्लिम समुदाय पर केंद्रित साहित्य को देखा जाता है। लेकिन अल्पसंख्यक के अंतर्गत सिर्फ और सिर्फ मुस्लिम समुदाय ही नहीं, बल्कि जैन, बौद्ध, सिख, ईसाई आदि भी समाहित हैं। अल्पसंख्यक विमर्श के अंतर्गत मुस्लिम समुदाय की अस्मिता से जुड़े प्रश्नों को विशेष रूप से उभारने का अवसर मिला है। मुस्लिम समुदाय के अलगाव, पराएपन और पहचान से जुड़े प्रश्नों को बीसवीं शताब्दी में राही मासूम रज़ा (आधा गाँव, 1966), बदीउज्जमा (छाको की वापसी, 1975), अब्दुल बिस्मिल्लाह (मुखड़ा क्या देखे, 1996) , असगर वजाहत (सात आसमान, 1996) आदि ने उठाया है। इक्कीसवीं सदी में शानी (काला जल, 2007), नासिरा शर्मा (ठीकरे की मंगनी, 2008), अनवर सुहैल (पहचान, 2009 और सलीमा, 2014) आदि के उपन्यास अल्पसंख्यक विमर्श की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं।

बोध प्रश्न

- 'छाको की वापसी किसकी रचना है?

वृद्धावस्था विमर्श

कोई भी यह नहीं कह सकते कि नवजात शिशु कब अपनी शैशवावस्था छोड़कर युवावस्था में पहुँचता है और कब वृद्धावस्था में। इस अवस्था से कोई बच नहीं सकते। लेकिन मनुष्य वृद्धावस्था से डरने लगता है। वह जल्दी इसे अपना नहीं सकता। इस अवस्था में पहुँचते ही मनुष्य शारीरिक रूप से कमजोर तो हो ही जाता है, साथ ही मानसिक रूप से भी कमजोर हो जाता है। पीढ़ी अंतराल के कारण आज वृद्धों की उपेक्षा की जा रही है। इसका प्रमाण है कुकुरमुत्तों की तरह उग रहे वृद्धाश्रम। वृद्धों की समस्याओं को केंद्र में रखकर अनेक उपन्यास रचे जा चुके हैं। दौड़ (2000, ममता कालिया), अंतिम अरण्य (2000, निर्मल वर्मा), 'समय सरगम' (2001, कृष्णा सोबती), रेहन पर रग्घू (2008, काशीनाथ सिंह), जीने की राह (2016, विजय शंकर राही), 'गिलिगडु' (2019, चित्रा मुद्गल) आदि इस दृष्टि से उल्लेखनीय उपन्यास हैं।

बोध प्रश्न

- वृद्धावस्था विमर्श पर केंद्रित कृष्णा सोबती के उपन्यास का नाम बताइए।
- 'गिलिगडु' किसकी रचना है?

किन्नर विमर्श

स्त्री, दलित, अल्पसंख्यक और वृद्धों की बात तो ठीक है, लेकिन जब किन्नरों की बात आती है तो सभ्य समाज भी भौंहें सिकोड़ने लगता है। मानसिक या शारीरिक रूप से विकलांगों को पूरा समाज अपनाता है। इनके लिए विशेष प्रावधान भी है। पर बात जब तृतीय लिंगी अथवा किन्नरों की आती है तो इन्हें न घर-परिवार में स्थान प्राप्त है और न ही समाज में। ये हमारे बीचोंबीच रहते हैं, लेकिन इनका कोई अस्तित्व नहीं। समाज में उपस्थित होकर भी अनुपस्थिति का दंश झेल रहे हैं। शादी-ब्याह या शिशु के जन्म के अवसर पर ये लोग आशीर्वाद देने पहुँच ही जाते हैं। ऐसे अवसरों पर लोग कुछ नहीं कहते, उनके आशीर्वाद पाकर खुश हो जाते हैं लेकिन उन लोगों से मैत्री का भाव रखना नहीं चाहते। वास्तव में यह आनुवंशिक (जेनेटिक) विकलांगता है। इसमें इनका क्या दोष है? अतः यह हाशियाकृत समुदाय संवैधानिक रूप से अपने अधिकारों को पाने के लिए संघर्ष शुरू किया।

साहित्य में भी किन्नरों समाज को आधार बनाकर उपन्यास रचने लगे। रिश्तों के लिए किन्नरों की तड़प, उनकी जीवन शैली, उनकी समस्याएँ, उनकी पीड़ा, आक्रोश, संघर्ष और जिजीविषा को साहित्यकारों ने विषय वस्तु बनाया। किन्नर विमर्श की दृष्टि से 'यमदीप' (नीरजा माधव), 'गुलाम मंडी' (निर्मला भुराडिया), 'तीसरी ताली' (प्रदीप सौरभ), 'किन्नर कथा', 'मैं पायल' (महेंद्र भीष्म), 'जिंदगी 50-50' (भगवंत अनमोल), 'मैं भी औरत हूँ' (अनसूया त्यागी), अस्तित्व की तलाश में सिमरन' और 'हाँ मैं किन्नर हूँ : कांता बुआ' (मोनिका देवी), 'पोस्ट बॉक्स नं. 203 नाला सोपारा' (चित्रा मुद्गल) आदि उल्लेखनीय हैं। 'नाला सोपारा' पत्रात्मक शैली में लिखा गया उपन्यास है। यह भी ध्यान देने की बात है कि निराला ने अपने उपन्यास 'कुल्ली

भाट' (1939) में समलैंगिक विमर्श के बीज बो दिए थे। इस उपन्यास को हिंदी में समलैंगिक विमर्श की पहली आहट सुनने-सुनाने वाला उपन्यास कहा जा सकता है।

छात्रो! ध्यान देने की बात है कि प्रेमचंदोत्तर युग के उपन्यासों की भाषा में विविधता को देखा जा सकता है। उपन्यासकार कथा के अनुरूप शब्दों, वाक्यों, मुहावरों, प्रतीकों, बिंबों, भाषिक चिह्नों का प्रयोग कर रहे हैं। असंतोष, आक्रोश और संघर्ष को अभिव्यक्त करने के लिए भी नई भाषिक उक्तियों का प्रयोग किया जा रहा है। इसके परिणाम स्वरूप सुगठित एवं सुनियोजित ढाँचा खड़ा हो रहा है।

बोध प्रश्न

- हिंदी में समलैंगिक विमर्श की पहली आहट सुनने-सुनाने वाले उपन्यास का नाम बताइए।
- पत्रात्मक शैली में लिखा गया उपन्यास कौन सा है?

13.4 पाठ सार

प्रिय छात्रो! अब तक आपने प्रेमचंदोत्तर हिंदी उपन्यासों का अध्ययन कर रहे थे। इस अध्ययन के बाद आप समझ ही चुके होंगे कि प्रेमचंद के बाद हिंदी उपन्यासों के कथ्य और शिल्प में अनेक परिवर्तन हुए। उपन्यास-कला की दृष्टि से यह काल अत्यंत समृद्ध है। इस युग में मनोवैज्ञानिक, ऐतिहासिक, आंचलिक, साम्यवादी, प्रयोगशील, आधुनिक भाव-बोध से युक्त उपन्यासों के साथ-साथ स्त्री, दलित, आदिवासी, अल्पसंख्यक, किन्नर और वृद्धावस्था विमर्श के उपन्यास भी सामने आए।

13.5 पाठ की उपलब्धियाँ

इस इकाई से निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त हुए हैं -

1. प्रेमचंदोत्तर युग में एक ऐसी पीढ़ी के उपन्यासकार सक्रिय रहे जिनका संस्कार प्रेमचंद के युग 6में ही बना लेकिन बाद में इन लोगों ने अपनी नई राह बना ली। एक और पीढ़ी उन उपन्यासकारों की है जो देश की आजादी के बाद इस क्षेत्र में आए और इन लोगों ने नई संभावनाओं की ओर संकेत किया।
2. नवलेखन काल में साहित्य पर औपनिवेशिक शासन से मुक्ति, प्रजातंत्र का जन्म, सामंती शासन से मुक्ति का स्वप्न, भारत-पाक विभाजन आदि घटनाओं का भी प्रभाव पड़ा। इस काल के उपन्यासों में इतिहास और कल्पना का समावेश होने लगा।
3. धीरे-धीरे परिवेश प्रधान उपन्यासों का सृजन होने लगा। सामाजिक विसंगतियों एवं विद्रूपताओं को साहित्यकार सामने लाने लगे।
4. इक्कीसवीं सदी में विमर्श आधारित उपन्यास सामने आए।
5. इक्कीसवीं सदी के उपन्यासों में असंतोष, आक्रोश और संघर्ष को अभिव्यक्त करने के लिए भी नई भाषिक उक्तियों का प्रयोग किया जा रहा है।

13.6 शब्द संपदा

1. आत्मदान	=	आत्मत्याग, दूसरों के हित के लिए अपना स्वार्थ त्यागना
2. उपनिवेश	=	एक देश के लोगों की दूसरे देश में आबादी
3. गिरमिटिया	=	किसी उपनिवेश में गया हुआ शर्तबंद हिंदुस्तानी मजदूर
4. संश्लिष्ट	=	मिला हुआ, मिश्रित
5. साम्यवाद	=	मार्क्स द्वारा स्थापित एक सिद्धांत जो वर्गहीन समाज की स्थापना पर बाल देता है।
6. हेतुवाद	=	तर्कशास्त्र

13.7 परीक्षार्थ प्रश्न

खंड (अ)

दीर्घ श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 500 शब्दों में दीजिए।

1. प्रयोग-प्रगति काल के हिंदी उपन्यासों पर संक्षिप्त प्रकाश डालिए।
2. नवलेखन काल के उपन्यास साहित्य की चर्चा कीजिए।
3. समकालीन परिदृश्य से आप क्या समझते हैं? इस काल के प्रमुख उपन्यासों की चर्चा करते हुए समझाइए।
4. इक्कीसवीं सदी की प्रवृत्तियों की चर्चा करते हुए कुछ प्रमुख उपन्यासों पर प्रकाश डालिए।

खंड (ब)

लघु श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 200 शब्दों में दीजिए।

1. मनोवैज्ञानिक उपन्यास के रूप में जैनेंद्र के उपन्यास 'त्यागपत्र' की चर्चा कीजिए।
2. स्त्री विमर्श से क्या अभिप्राय है? प्रमुख स्त्री विमर्श केंद्रित उपन्यासों की चर्चा कीजिए।
3. दलित एवं आदिवासी विमर्श के उपन्यासकारों और उनके प्रमुख उपन्यासों पर प्रकाश डालिए।
4. किन्नर विमर्श पर चर्चा कीजिए।

खंड (स)

I. सही विकल्प चुनिए -

1. इसमें कौन-सा पात्र 'त्यागपत्र' उपन्यास में नहीं है? ( )
   (अ) मृणाल (आ) जस्टिस दयाल (इ) प्रमोद (ई) निर्मला
2. 'झूठा सच' किसका उपन्यास है? ( )
   (अ) अज्ञेय (आ) भगवतीचरण वर्मा (इ) यशपाल (ई) प्रेमचंद

3. करनट कबीलों के जीवन यथार्थ को किस उपन्यास में देखा जा सकता है? ( )
(अ) कब तक पुकारूँ (आ) नदी के द्वीप (इ) चित्रलेखा (ई) कचनार

4. इसमें एक कमालाकांत त्रिपाठी का उपन्यास है जो सपाही विद्रोह पर केंद्रित है। ( )
(अ) डूब (आ) ठीकरे की मंगनी (इ) पाही घर (ई) आवाँ

5. पत्रात्मक शैली में लिखा गया उपन्यास कौन सा है? ( )
(अ) किन्नर कथा (आ) नाला सोपारा (इ) तीसरी ताली (ई) मैं पायल

II. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए -

1. ब्रिटिश कालीन भारतीय इतिहास पर आधारित हिंदी का पहला उपन्यास ..... है।
2. हिंदी के प्रथम ऐतिहासिक उपन्यासकार ..... हैं।
3. अमृतलाल नगर के ..... उपन्यास में भंगी समाज का चित्रण है।
4. अब्दुल बिस्मिल्लाह का ..... उपन्यास बनारस के बुनकर समाज का प्रामाणिक दस्तावेज है।
5. चित्रा मुद्गल के उपन्यास 'गिलिगडु' की केंद्रीय समस्या ..... है।
6. गीतांजली श्री के ..... उपन्यास को अंतरराष्ट्रीय बुकर प्राइज़ प्राप्त हुआ है।

III. सुमेल कीजिए -

1. ज़िंदा मुहावरा	(अ) भारतीय गिरमिटिया मजदूर
2. तमस	(आ) किन्नर विमर्श
3. यमदीप	(इ) भारत विभाजन
4. समय सरगम	(ई) दलित विमर्श
5. छप्पर	(उ) वृद्धावस्था विमर्श

13.8 पठनीय पुस्तकें

1. 21 वीं शती का हिंदी उपन्यास : पुष्पपाल सिंह
2. बीसवीं शताब्दी का हिंदी साहित्य : विजयमोहन सिंह
3. समकालीन हिंदी साहित्य -विविध परिदृश्य : रामस्वरूप चतुर्वेदी
4. हिंदी उपन्यास - एक अंतर्यात्रा : रामदरश मिश्र
5. हिंदी उपन्यास का इतिहास : गोपाल राय

इकाई 14 : श्रीलाल शुक्ल : एक परिचय

रूपरेखा

14.1 प्रस्तावना
14.2 उद्देश्य
14.3 मूल पाठ : श्रीलाल शुक्ल : एक परिचय
14.3.1 जीवन परिचय
14.3.2 रचना यात्रा
14.3.3 प्रमुख रचनाओं का परिचय
14.3.4 श्रीलाल शुक्ल की वैचारिकता
14.4 पाठ सार
14.5 पाठ की उपलब्धियाँ
14.6 शब्द संपदा
14.7 परीक्षार्थ प्रश्न
14.8 पठनीय पुस्तकें

14.1 प्रस्तावना

प्रिय छात्रो! हिंदी साहित्य में श्रीलाल शुक्ल व्यंग्य लेखक के रूप में प्रसिद्ध हैं। उन्होंने अपने जीवन के अनुभवों को ही साहित्य के माध्यम से अभिव्यक्त किया था। सामान्य रूप से 'राग दरबारी' और श्रीलाल शुक्ल को पर्याय के रूप में जाना जाता है। इसका यह अर्थ नहीं कि उन्होंने सिर 'राग दरबारी' ही लिखा है। उन्होंने अनेक उपन्यासों के साथ-साथ कहानियाँ, निबंध, व्यंग्य, आलोचना और बाल साहित्य का अभी सृजन किया है। आप इस इकाई में श्रीलाल शुक्ल के व्यक्तित्व और कृतित्व का सामान्य परिचय प्राप्त करेंगे।

14.2 उद्देश्य

प्रिय छात्रो! इस इकाई के अध्ययन से आप -

- श्रीलाल शुक्ल के व्यक्तित्व से परिचित हो सकेंगे।
- श्रीलाल शुक्ल की रचना यात्रा के बारे में जान सकेंगे।
- श्रीलाल शुक्ल के उपन्यास लेखन की विशेषताओं से परिचित सकेंगे।
- श्रीलाल शुक्ल की विचारधारा से अवगत हो सकेंगे।

14.3 मूल पाठ : श्रीलाल शुक्ल : एक परिचय

प्रिय छात्रो! हिंदी साहित्य में श्रीलाल शुक्ल अपने व्यंग्यात्मक लेखन के लिए प्रसिद्ध हैं। उन्होंने स्वातंत्र्योत्तर भारतीय समाज के यथार्थ को उद्घाटित करने के लिए साहित्य को माध्यम

बनाया। उनके साहित्य का स्रोत समाज और मनुष्य ही है। उनके लेखन और जीवन दोनों ही विलक्षण है। आइए, उनके व्यक्तित्व और कृतित्व के बारे में अध्ययन करेंगे।

14.3.1 जीवन परिचय

श्रीलाल शुक्ल का जन्म लखनऊ के मोहनलाल गंज कस्बे के निकट अतरौली में 31 दिसंबर, 1925 को हुआ था। इनके पिता पं. ब्रजकिशोर शुक्ल हिंदी, उर्दू और संस्कृत के ज्ञाता थे। उनके संबंध में स्वयं श्रीलाल शुक्ल ने कहा कि उनके पिता को निर्धनता, सदाचरण, साहित्य तथा संगीत का संस्कार विरासत में प्राप्त हुआ था। श्रीलाल शुक्ल ने माता-पिता से सदाचरण, साहित्य, संगीत और उदात्त जीवन मूल्यों को विरासत में प्राप्त किया था। शास्त्रीय संगीत सुनना के वे शौकीन थे। दो भाइयों और दो बहनों के बीच उनका बाल्यकाल बीता।

श्रीलाल शुक्ल की प्रारंभिक शिक्षा लखनऊ के मोहनलाल गंज में हुई। हाईस्कूल की शिक्षा लखनऊ के कान्यकुब्ज वोकेशनल हाईस्कूल में हुई। कान्यकुब्ज कॉलेज से इंटरमीडिएट करने के बाद 1947 में इलाहाबाद विश्वविद्यालय से स्नातक की उपाधि अर्जित की। 1949 में राज्य सिविल सेवा से नौकरी शुरू की। 1973 में भारतीय प्रशासनिक सेवा के अधिकारी बने। 1983 में सेवानिवृत्त हुए। प्रशासनिक सेवा के साथ-साथ वे साहित्यिक सेवा भी करते रहें।

प्रो. रजनीश अवस्थी से बात करते समय श्रीलाल शुक्ल ने अपने जन्म और प्रारंभिक शिक्षा के संबंध कहा - "लखनऊ से करीब 25 की.मी. दूरी पर मेरा गाँव है। वर्ष 1925 के अंतिम दिन पैदा हुआ। प्रारंभिक शिक्षा प्राइमरी स्कूल में हुई, मिडिल स्कूल तक शिक्षा गाँव में हुई। लखनऊ और कानपुर से हाईस्कूल तथा इंटर पास किया तथा इलाहाबाद विश्वविद्यालय से बी.ए.। पारिवारिक कठिनाइयों के करण एम.ए. नहीं किया। इस बीच पिताजी का देहांत हो गया। मैं इलाहाबाद छोड़कर लखनऊ आ गया। लखनऊ विश्वविद्यालय से एम.ए. तथा एल.एल.बी. का दोहरा कोर्स शुरू किया। छह-सात माह बाद दोनों कोर्स छोड़ दिए और एक वर्ष के भीतर उत्तर प्रदेश सिविल सर्विस में आ गया।" (मेरे साक्षात्कार : श्रीलाल शुक्ल, पृ. 9)

श्रीलाल शुक्ल के व्यक्तित्व में सरलता, सहजता और उदारता को भलीभाँति देखा जा सकता है। उनमें ग्रामीण और शहरी जीवन दृष्टियों को एक साथ देख सकते हैं। उनके पहनावा, रहन-सहन, खान-पान आदि में देहात और नगर का सह-अस्तित्व दिखाई देगा। वे धोती-कुर्ते में भी दिखाई देते थे और सूट-बूट-टाई में भी। रवींद्र वर्मा यह मानते थे कि एक नौकरशाह और लेखक के द्वंद्व का नाम श्रीलाल शुक्ल है। स्वयं श्रीलाल शुक्ल यह मानते थे कि लेखन के बिना उनका कोई व्यक्तित्व ही नहीं है।

श्रीलाल शुक्ल के व्यक्तिव के संबंध में प्रेम जनमेजय का कथन उल्लेखनीय है - 'वे बहुत सजग हैं और 'हम्बग' से चिढ़ के करण वे लाग लपेट में विश्वास नहीं करते। वे बातचीत में बहुत जल्दी अपनी आत्मीयता को सक्रिय कर देते हैं।'

श्रीलाल शुक्ल का विवाह गिरिजा देवी से 1948 में हुआ था। रेखा, मधूलिका, विनीता और आशुतोष उनकी संतान हैं। शुक्ल जी का निधन 28 अक्तूबर, 2011 को हुआ था।

बोध प्रश्न

- श्रीलाल शुक्ल का पारिवारिक परिवेश कैसा था?
- श्रीलाल शुक्ल को किसका शौक था?

14.3.2 रचना यात्रा

छात्रो! श्रीलाल शुक्ल सरकारी नौकरी के साथ-साथ साहित्य से भी जुड़े रहें। बचपन से ही उन्हें साहित्यिक वातावरण प्राप्त हुआ था। इस संबंध में उनका यह कथन उल्लेखनीय हैं - "परिवार आर्थिक दृष्टि से गरीब था, पर परिवार में साहित्यिक वातावरण था। मेरे पिताजी के चचेरे भाई पं. चंद्रमौली सुकुल अपने समय के हिंदी के अच्छे लेखकों में थे। उन्होंने कई पुस्तकें लिखी थीं। उनके निजी पुस्तकालय में सभी साहित्यिक पत्रिकाएँ आती थीं। प्रसाद और प्रेमचंद की पुस्तकें भी थीं। इनके बीच मेरे बाल्यावस्था बीती और साहित्यिक संस्कार पनपे। इसी आधार पर छात्र जीवन में कविताएँ लिखना शुरू किया और कवि-सम्मेलनों में भाग लिया।" (मेरे साक्षात्कार : श्रीलाल शुक्ल, पृ.9)। वस्तुतः यहीं से उनके भीतर के साहित्यकार जन्म हुआ था।

श्रीलाल शुक्ल ने सीमा मिश्रा से बातचीत के दौरान अपने प्रारंभिक साहित्यिक जीवन के संबंध में उजागर करते हुए कहा - "मेरा प्रारंभिक जीवन सचेत रूप से 1936-37 से शुरू होता है। एक ओर यह साहित्यिक विधाओं, शैलियों, विषय-वस्तुओं में भारी परिवर्तन का युग था, दूसरी ओर आजादी के आंदोलन तथा दूसरे कारणों से स्थानीय स्तर पर पारंपरिक साहित्य बड़ी मात्रा में पनप रहा था। मेरा आरंभिक लेखन बहुत कुछ उसी की नकल थी, जो बाद में जैसे-जैसे मुझमें साहित्य बोध का विकास होता गया, छूट गया। जिनसे मैं प्रभावित था, उनमें किसी का नाम लेना ही हो तो निराला का उल्लेख किया जा सकता है।" श्रीलाल शुक्ल निराला से काफी प्रभावित थे। वे निराला को अपने आदर्श मानते थे।

श्रीलाल शुक्ल का नियमित लेखन तो 1956 में शुरू हुआ था। 1956-58 के बीच तो 'ज्ञानोदय' (मासिक) में उनकी व्यंग्यपरक रचनाएँ प्रकाशित होने लगी थीं। 'धर्मयुग' में भी उनकी कहानियाँ और व्यंग्य रचनाएँ छपती थीं। वस्तुतः सरकारी नौकरी में प्रवेश करने के बाद से उनके लेखन को धार मिली। नौकरी और लेखन कार्य के बीच सामंजस्य स्थापित करने के संबंध वे स्वयं कहते हैं कि "नौकरी से मुझे स्पष्ट हुआ कि जीवनयापन की दृष्टि से यह सुविधाजनक अवश्य है, किंतु इससे किसी प्रकार का आंतरिक संतोष मिलेगा; ऐसा नहीं लगता है। मैं 'ब्यूरोक्रेसी' के दलदल में पूरी तरह से धंस न जाऊँ, इसलिए व्यक्तित्व के पक्ष को पूरी तरह से अलग रखा। 1954 के बाद से लेखन के प्रति आकृष्ट हुआ था। मुझे लगता था कि लेखन के बिना मेरा व्यक्तित्व नहीं रह जाएगा।" (मेरे साक्षात्कार : श्रीलाल शुक्ल, पृ.10)

श्रीलाल शुक्ल ने ममता कालिया से बातचीत के दौरान लेखन प्रक्रिया के बारे में स्पष्ट करते हुए कहा कि वे लिखते समय कुछ स्लिप अवश्य बना लेते हैं। "पर पहले से नोट्स कतई नहीं। ऐसा करना, मुझे लगता है, लेखक को यांत्रिक बनाता है।" (मेरे साक्षात्कार, पृ.20)

श्रीलाल शुक्ल के संबंध में प्रेम जनमेजय कहते हैं कि उन्होंने (श्रीलाल शुक्ल) ने कभी स्वयं को नहीं दोहराया है। कहने का आशय है कि 'राग दरबारी' की सफलता से चिपक कर वे नहीं बैठे। उनकी हर कृति में एक नया विषय रहता है। वे नारेबाजी से दूर थे। उन्होंने यांत्रिक लेखन नहीं किया। उनका लेखन एक चुनौती प्रस्तुत करता है।

उपन्यासकार, कहानीकार, आलोचक, निबंधकार तथा व्यंग्यकार के रूप में श्रीलाल शुक्ल का योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण है। 'सूनी घाट का सूरज' (1957), 'अज्ञातवास' (1962), 'राग दरबारी' (1968), 'आदमी का ज़हर' (1972), 'सीमाएँ टूटती हैं' (1973), 'मकान' (1976), 'पहला पड़ाव' (1987), 'विश्रामपुर का संत' (1998), 'बब्बरसिंह और उसके साथी' (1999), 'राग विराग' (2001) आदि प्रसिद्ध उपन्यास हैं।

'यह घर मेरी नहीं' (1979), 'सुरक्षा और अन्य कहानियाँ' (1991), 'इस उम्र में' (2003), 'दस प्रतिनिधि कहानियाँ' (2003) प्रमुख कहानी संग्रह हैं।

श्रीलाल शुक्ल की प्रसिद्ध व्यंग्य रचनाएँ हैं - 'अंगद का पाँव' (1958), 'यहाँ से वहाँ' (1970), 'मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएँ' (1979), 'उमरावनगर में कुछ दिन' (1986), 'कुछ ज़मीन पर कुछ हवा में' (1990), 'आओ बैठ लें कुछ देर' (1995), 'अगली शताब्दी का शहर' (1996), 'जहालत के पचास साल' (2003) और 'खबरों की जुगाली' (2005)।

'अज्ञेय : कुछ रंग और कुछ राग' (1999) उनकी आलोचना कृति है। 'भगवतीचरण वर्मा' (1989) और 'अमृतलाल नागर' (1994) उनके विनिबंध हैं। उन्होंने 'हिंदी हास्य-व्यंग्य संकलन' (2000) का संपादन में किया। 'मेरे साक्षात्कार' (2002) और 'कुछ साहित्यिक चर्चा भी' (2008) में प्रकाशित हो चुके हैं।

श्रीलाल शुक्ल अनेक पुरस्कारों से सम्मानित हो चुके हैं - साहित्य अकादमी पुरस्कार (1969), साहित्य परिषद पुरस्कार (1978), साहित्य भूषण सम्मान (1988), गोयल साहित्य पुरस्कार (1991), लोहिया सम्मान (1994), शरद जोशी सम्मान (1996), व्यास सम्मान (1999), यश भरती सम्मान (2005), पद्मभूषण (2008), भारतीय ज्ञानपीठ (2009)।

बोध प्रश्न

- श्रीलाल शुक्ल की बाल्यावस्था कैसे बीती थी?
- श्रीलाल शुक्ल का नियमित लेखन कब से शुरू हुआ था?
- श्रीलाल शुक्ल के अनुसार लेखक को कौन सी चीज यांत्रिक बनाती है?

14.3.3 प्रमुख रचनाओं का परिचय

साहित्यकर अपनी अनुभूति और अनुभवों को शब्दबद्ध करता है। अतः उसकी प्रतिभा, समझ और संवेदना महत्वपूर्ण है। श्रीलाल शुक्ल की कृतियों में विषय वैविध्य दिखाई देता है। डॉ. कमलकांत त्रिपाठी कहते हैं कि वे एकरेखीय कभी नहीं रहें - न जीवन में, न लेखन में। कहने का आशय है कि वे अपनी अगली कृति में अपने पिछली कृति का फ्रेमवर्क तोड़ते हुए दिखाई देते

हैं। वे अपनी रचनाओं के माध्यम से वर्तमान व्यवस्था की विसंगतियों पर प्रश्न चिह्न लगाते हैं। रघुवीर सहाय के अनुसार श्रीलाल शुक्ल का व्यक्तित्व विकृति की सृष्टि नहीं, विकृति की खोज करता है। आइए, श्रीलाल शुक्ल की कुछ प्रमुख रचनाओं का संक्षिप्त परिचय प्राप्त करेंगे।

उपन्यास

सूनी घाटी का सूरज (1957)

यह श्रीलाल शुक्ल का प्रथम उपन्यास है। नायक रामदास के माध्यम से ग्रामीण परिवेश में व्याप्त विसंगतियों और समस्याओं को उजागर किया है। यह संस्मरणात्मक रूप में लिखा गया उपन्यास है। कहानी रामदास के इर्द-गिर्द घूमती है। वह बचपन से ही अनेक समस्याएँ झेल चुका है। वह पेट पालने के लिए दूसरों के जानवर चराता है। अपनी दरिद्रता से बाहर निकालने के लिए पढ़ाई शुरू करता है। विपरीत स्थितियों के बावजूद प्रथम आता है। शोध छात्र के रूप में भी शोषण का शिकार होता है। प्राध्यापक की नियुक्ति से लगातार वंचित किया जाता है। अंत में वह स्वेच्छा से रु 135/- मासिक वेतन पर विंध्य की झुलसी धूसर पहाड़ियों में जर्जर प्रांत में अध्यापक बनने जाता है। उसका लक्ष्य था - "गाँव में जाना, दलितों की शक्ति बनना। अशिक्षितों को विद्या देना। उनकी निराशा, उनकी मूर्च्छा को समाप्त करके उन्हें नई चेतना देना।" (पृ.132)। "यहाँ आकार ख्याति और उन्नति की सभी आकांक्षाओं का गला घोंटकर अपने को जीवन्मृत बनाने के लिए तुम ही क्यों चुने गए हो?" (वही)। मन में उठाने वाले इस आत्मकेंद्रित भाव को वह दबा कर वह अपने आप से कहता है - "यहाँ मैं न आऊँगा तो और कौन आएगा? किसी और को यहाँ आने की गरज ही क्या है?" (वही)। यहीं है संभावना जहाँ सूनी घाटी का सूरज उग सकता है। वस्तुतः युग के आकर्षण, अतीत की प्रताड़ना और वर्तमान की निराशा से त्रस्त रामदास ही सूनी घाटी का सूरज है। उसकी आशा, आकांक्षा एवं अभिलाषा सूनी घाटी के समान स्तब्ध हैं। इस उपन्यास में उन्होंने स्वतंत्रता के बाद भारतीय गाँवों में व्याप्त गरीबी, ठाकुरों की अहंकारवादी प्रवृत्ति आदि पर प्रकाश डाला है।

बोध प्रश्न

- रामदास के मन में क्या प्रश्न उठता है?

अज्ञातवास (1962)

इस उपन्यास में दलित अस्मिता के प्रश्न को उठाया गया है बिना कोई नारेबाजी के। इस उपन्यास में उन्होंने कुलीन समाज के खोखलेपन, भावनात्मक हिंसा और पतन की कथा को उजागर किया है। यह उपन्यास भी 'सूनी घाटी की सूरज' की तरह मनुष्य की अंतः प्रवृत्तियों और यथार्थ के कारणों को उजागर करता है। इस उपन्यास का क पात्र कहता है - "आप हमारे बारे में कुछ भी नहीं जानतीं। यह घसीटे बनमानुषों की तरह झोंपड़ी में पड़ा रहता है। दमा में हाँफता है। जानती है आप? ये मंगरू, लालू, लोटन इनके घर दो-दो दिन के बाद चूल्हा चलता है। आप यह भी नहीं जानती। सिर्फ आपको ये गीत अच्छे लगते हैं। आप हमारा रोना नहीं सुन

सकतीं। गाना ही क्यों सुनना चाहती है?" (पृ.59)। हाशिये पर रह रहे व्यक्ति की मानसिक पीड़ा इन शब्दों में मुखरित है।

इस उपन्यास का कथानायक राजनीकांत सिंचाई विभाग का सुपरिंटेंडिंग इंजीनियर है। इस उपन्यास की प्रस्तावना ने स्वयं श्रीलाल शुक्ल ने इसकी कथा को सांकेतिक रूप में स्पष्ट किया है। यथा - "इस उपन्यास में रजनीकांत गाँव का होकर भी वहाँ की आंतरिकता से अपरिचित रहे। कच्ची झोंपड़ियाँ और पक्के बंगले, तुलसी और क्रोटन - इनके अन्यत्र की तुच्छता में ही वे उलझे रहे। इनसे ऊपर उठकर जीवन के बृहत्तर परिवेश में वे अपने आपको नहीं पहचान सके।" (पृ.3)। उपन्यासकार ने आभिजात्य वर्ग के खोखले आदर्श, सरकारी वर्ग की अनैतिक कार्यप्रणाली, शहरी जीवन की विसंगति एवं ग्रामीण जीवन की विद्रूप स्थिति को बखूबी अंकित किया है। इसमें यह भी दिखाया गया है कि अशिक्षा के करण ग्रामीण जनता कानूनी दाव-पेंच समझ नहीं सकती।

बोध प्रश्न

- इस उपन्यास के माध्यम से श्रीलाल शुक्ल क्या कहना चाहते हैं?

राग दरबारी (1968)

हिंदी साहित्य में 'राग दरबारी' उपन्यास श्रीलाल शुक्ल का पर्याय बन चुका है। इसमें उन्होंने स्वतंत्रता के बाद के भारत के ग्रामीण जीवन में व्याप्त मूल्यहीनता और राजनीति को व्यंग्य के माध्यम से उजागर किया है। कथा वस्तु शिवपालगंज गाँव के इर्द-गिर्द घूमता है। यह शिवपालगंज वस्तुतः एक प्रतीक है। यह आजादी के बाद विकसित हिंदुस्तान में कहीं भी मिल सकता है। इस में चित्रित दरबार वैद्य जी का दरबार है। वैद्य जी उस दरबार का सर्वेसर्वा है। उनकी आज्ञा के बिना एक पत्ता भी नहीं हिल सकता। शिवपालगंज गाँव की तमाम राजनीति के पीछे वैद्य जी ही उपस्थित हैं। इस उपन्यास के माध्यम से हम यह जान सकते हैं कि भारतीय जनतंत्र खोखला बनता जा रहा है। इस संबंध श्रीलाल शुक्ल का वक्तव्य द्रष्टव्य है - "राग दरबारी का संबंध एक बड़े नगर से कुछ दूर बसे हुए गाँव की जिंदगी से है, जो आजादी के बाद की प्रगति आउर विकास के नारों के बावजूद निहित स्वार्थों और अनेक अवांछनीय तत्वों के आघातों के सामने घिसट रही है। यह उसी जिंदगी का दस्तावेज है।" (पृ.13)।

इस उपन्यास में संपूर्ण देश की प्रशासन व्यवस्था, कानून व्यवस्था, शिक्षा व्यवस्था और अर्थ व्यवस्था की पूरी तस्वीर को देखा जा सकता है। इस उपन्यास के लिए श्रीलाल शुक्ल 1969 के साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित किया जा चुके हैं। इस उपन्यास के संबंध ममता कालिया को श्रीलाल शुक्ल ने इस प्रकार कहा - "सन '62 से सन '67 तक मैंने यह उपन्यास लिखा। इसके कई अंश मैंने सात-सात बार लिखे। लेकिन सबसे ज्यादा रिवाइज किए गए 'मकान' और 'सीमाएँ टूटती हैं'।" (मेरे साक्षात्कार, पृ.17)

'राग दरबारी' की रचना प्रक्रिया को स्पष्ट करते हुए श्रीलाल शुक्ल ने कहा - "किताब लिखना दिमाग के लिए कठोर और शरीर के लिए कष्टप्रद कार्य है। इससे तंबाकू की लत पड़

जाती है। काफीन और डेक्सेड्रीन का जरूरत से ज्यादा सहारा लेना पड़ता है। बवासीर, बदहजमी, दुश्चिंता और नामर्दी पैदा होती है। फिर 'राग दरबारी' इसने मुझे छह साल बीमारी की हालत में रखा। उन गंवार चरित्रों के साथ दिन-रात रहते हुए मेरे जबान खराब हो गई। भद्र महिलाएँ खाने की मेज पर कभी-कभी भौंहें उठाकर देखने लगीं, मैं परिवार से, परिवार मुझसे कतराने लगा।" (सं. बिशन टंडन, व्यास सम्मान, पृ. 305)

'राग दरबारी' में श्रीलाल शुक्ल ने "नेहरू युग के राजनैतिक मोहभंग, व्यक्तिगत कुंठा, संत्रास और हताशा से उपजे तत्कालीन सामाजिक-राजनीतिक विद्रूपताओं और कुरूपताओं को व्यंग्य विद्रूप की शैली में प्रस्तुत किया है।" (सं बिशन टंडन, व्यास सम्मान, पृ. 309)। इस उपन्यास के माध्यम से श्रीलाल शुक्ल ने यह रामदास के माध्यम से प्रश्न उठाया है कि इस समाज में हमेशा गरीब ही क्यों शोषण का शिकार होता रहता है?

बोध प्रश्न

- शिवपालगंज की तमाम राजनीति के पीछे कौन हैं?
- 'राग दरबारी' की रचना प्रक्रिया के संबंध में श्रीलाल शुक्ल ने क्या कहा?

आदमी का ज़हर (1972)

यह एक रहस्यपूर्ण अपराध कथा है। इसमें कोई फार्मूला नहीं है। इसे जासूसी उपन्यास कह सकते हैं। शुरूआत ही रोमांच के साथ होता है। इस उपन्यास में दिखाया गया है कि एक पति ईर्ष्या के करण हत्या जैसी भयंकर अपराध को अंजाम देने के बारे में सोचता है। वह ऐसा करने के लिए गोली चला भी देता है। गोली का शिकार होकर आदमी मर जाता है लेकिन उसकी मृत्यु का करण ज़हर निकलता है। यहाँ से कथा में एक ट्विस्ट देखा जा सकता है। कथा के साथ-साथ पात्रों को संदेह के कटघरे में खड़ा किया जाता है।

हरिश्चंद्र एक इलेक्ट्रॉनिक सामान के शोरूम का मालिक था। रूबी उनकी पत्नी थी। सब लोग यही कहते थे कि हरिश्चंद्र बहुत किस्मत वाला है जिन्हें रूबी जैसे सुंदर पत्नी मिली। लेकिन हरिश्चंद्र अपने को किस्मत वाला नहीं समझता। उसे अपनी पत्नी पर शक था। एक दिन उसे अजित सिंह के साथ होटल के कमरे में देखकर वह गुस्से में उस व्यक्ति पर गोली चला देता है। अजित सिंह वहीं के वहीं मर जाता है और हरिश्चंद्र को गिरफ़्तार किया जाता है। यहाँ तक तो कहानी बहुत ही सपाट चलती है। लेकिन इसके बाद कहानी में एक नया मोड आता है। पोस्टमार्टम रिपोर्ट से यह स्पष्ट होता है कि अजित सिंह की मृत्यु गोली लगने से नहीं, बल्कि ज़हर से होती है तो कथा पलट जाती है। पुलिस रूबी और अजित सिंह के मित्र को हिरासत में लेती है।

कथा में नाटकीयता का समावेश होता है। अंत तक यह पता ही नहीं चलता कि 'जनक्रांति' के पत्रकार अजित सिंह को किसने ज़हर दिया। छानबीन के दौरान पुलिस इस रहस्य से पर्दा उठाती है कि शांतिप्रकाश जैसे सफेदपोश समाज सेवी अजीत सिंह को अपने रास्ते का काँटा समझकर उसे समाप्त करने के लिए षड्यंत्र रचता है।

बोध प्रश्न

- अजित सिंह की मृत्यु का करण क्या था?

सीमाएँ टूटती हैं (1973)

यह एक साहित्यिक अपराध कथा है। दुर्गादास दिल्ली का रहने वाला था। रेडियो और ग्रामफोन का दुकान चलाता है। उसके दो पुत्र और एक पुत्री है - राजनाथ, तारकनाथ और चाँद। व्यवसाय के सिलसिले में दुर्गादास लखनऊ जाता है। वह जिस होटल में ठहरता है वहाँ एक हत्या होती है। हत्या के आरोप में दुर्गादास को गिरफ़्तार कर लिया जाता है। दोषी सिद्ध होने से उसे फाँसी की सजा हो जाती है। इस उपन्यास में प्रेम, धर्म, अपराध, मनोविज्ञान, सहज मानवीय प्रवृत्तियों को देखा जा सकता है। यह उपन्यास समाज में व्याप्त अनेक सीमाओं को तोड़ते हुए आगे जाता है। उपन्यासकार ने यह दर्शाने के प्रयास किया है कि विरोध व विद्रोह का जन्म असंतोष से ही होता है।

बोध प्रश्न

- विद्रोह का जन्म कैसे होता है?

मकान (1976)

इस उपन्यास में संगीत की पृष्ठभूमि को देखा जा सकता है। इसमें एक कलाकार की आशा और आकांक्षा को देखा जा सकता है। यह उपन्यास डायरी शैली में है। इस उपन्यास का नायक है प्रसिद्ध सितारवादक और नगर निगम के असिस्टेंट नारायण बेनर्जी। अनेक प्रयासों के बाद उसे मनाक एलॉट होता है, लेकिन उस मकान में जाने से पहले ही नारायण हत्या शिकार होता है। श्रीलाल शुक्ल ने नारायण बेनर्जी की कहानी के माध्यम से समाज में व्याप्त भ्रष्टाचार, नौकरशाही, नेताओं का अनैतिक व्यवहार, कालाबाजारी, रिश्वतखोरी, गंडागर्दी आदि का यथार्थ चित्रण किया है।

श्रीलाल शुक्ल ने नारायण के मुँह से एक मध्यवर्गीय नौकरपेशी व्यक्ति की मजबूरी को बखूबी उजागर किया है - "शीशे में दिखते हुए प्रतिबिंब की साधारणता और जीवन के असाधारण सपनों के बीच फैले हुए रीतेपन ने मुझे अचानक सब तरफ से रीता बना दिया। मैं पाँच वर्षों से एक नया कोट बनवाना चाह रहा हूँ, पर बनवा नहीं पा रहा हूँ - इस असमर्थता के अनुभव ने हजारों असमर्थताओं के मुर्दों को जिलाकर मुझे किसी प्रेतलोक में पहुँचा दिया।" (पृ.145)।

इस उपन्यास के बारे में श्रीलाल शुक्ल ने ममता कालिया से यूँ कहा था - "1970 में जब मैं लखनऊ आया, मेरे पास मकान नहीं था। जनवरी सन इकहत्तर में 'मकान' की शुरूआत मैंने कार्लटन होटल के लाउंज में, दोपहर में होटल की स्टेशनरी पर की। पहले-पहले यह एक सीधा-सदा टू-डायमेंशनल उपन्यास था। लेटर ऑन इट बिकेम ए रनअवे नॉवेल। फिर इसकी रगड़ाई शुरू हुई। 1976 में यह खत्म हुआ।" (पृ.17)।

बोध प्रश्न

- 'मकान' उपन्यास की शैली क्या है?

पहला पड़ाव (1987)

इस उपन्यास का संबंध बिलासपुर से है। इसमें वहाँ के मजदूरों, ठेकेदारों, शिक्षित बेरोजगारों का चित्रण है। आजादी के बाद समाज में व्याप्त भ्रष्टतंत्र और अवसरवादिता पर प्रहार किया गया है। जाति भेद, वर्ग भेद, ग्रामीण और शहरी जीवन का अंतर को भी दिखाया गया है। इस उपन्यास में भ्रष्ट व्यवस्था के खिलाफ आक्रोश के साथ-साथ कई बुनियादी सवाल समाज और सत्ता के बीच उभर आते हैं।

छत्तीसगढ़ के मजदूरों के बारे में एक पात्र के मुँह से श्रीलाल शुक्ल ने यह स्पष्ट किया है कि इंसानियत भी कोई चीज होती है। जिन मजदूर लड़कियों के लिए सब बकवास करते हैं उनकी हालत के बारे में सोचते ही नहीं। छत्तीसगढ़ में इनके पास कुछ नहीं है। "छोटी-मोटी जोत हुई भी तो साल में मोटे-झोटे अन्न या धान की एक फटीचर फसल हो जाती।" (पृ.63)। मजदूरों के दलाल उन्हें एडवांस देकर काम करने के लिए लाते हैं। उन्हें भरपूर लालच दिया जाता है। पर इतनी दूर आकार भी क्या पाते हैं? कुछ भी तो नहीं। "आधी-तिहाई मजदूरी, सुवरबाड़े-जैसी झोंपड़ियाँ, बेइज्जती, बीमारी। ये कानून में बंधुआ न होते हुए भी ये सबसे कड़ी जकड़ में बंधुआ मजदूर हैं। न इनके लिए कोई फैक्ट्री एक्ट है, न लेबारवाला कानून। होगा कोई मिनिमम वेजज एक्ट, पर सरकार उसे न जाने कहाँ छिपाकर बैठी है।" (वही)

बोध प्रश्न

- मजदूरों की क्या स्थिति थी?

बिस्रामपुर का संत (1998)

यह उपन्यास विनोबा भावे के भूदान आंदोलन पर केंद्रित है। इस उपन्यास का मुख्य केंद्रीय पात्र है कुँवर जयंतीप्रसाद सिंह। श्रीलाल शुक्ल ने एक ओर भूदान आंदोलन के इतिहास का चित्रण किया है तो दूसरी ओर सर्वोदय, गांधीवाद और भूदान आंदोलन का सत्यान्वेषण किया है। जनता की सोच पर व्यंग्य कसते हुए श्रीलाल शुक्ल विवेक नामक एक पात्र के मुँह से कलवाया है कि "देशवासियों का स्वभाव है कि आदर्श की पुरानी गाथाएँ सुनते-सुनते वे प्रतीक को तथ्य मानने लगते हैं और आदर्श आचरण के प्रतीकात्मक कर्मकांड से वास्तविक ऐतिहासिक परिणामों की उम्मीद करने लगते हैं।" (पृ.45)।

भूदान यज्ञ के संबंध में उनकी टिप्पणी देखिए - "पंद्रह-बीस साल में यह आंदोलन कुछ व्यक्तिगत 'सक्सेस स्टोरीज़' का, सफल उपलब्धियों का संकलन मात्र होकर रह जाएगा।" (पृ.45)। भूमिहीनों को भूमि दिलाने के उद्देश्य से विनोबा भावे ने भूदान आंदोलन शुरू किया था। इस उपन्यास के कुँवर साहब ने भी कुछ भूमि दान में देता है। उसके पीछे भी उनका व्यक्तिगत स्वार्थ छुपा हुआ था। वे अपने नाम को ऊँचा करना चाहते थे।

बोध प्रश्न

- भूदान आंदोलन क्या है?

राग विराग (2001)

इस उपन्यास में श्रीलाल शुक्ल ने यह दर्शाया है कि जातिगत भेदभाव समाज और व्यक्तियों को प्रभावित करता है। बदलते समाज, बदलते मूल्य और न बदल सकने वाली सामाजिक बुराइयों, अंतरराष्ट्रीय स्तर पर मेडिकल रिसर्च के क्षेत्र में चल रहे भ्रष्टाचार की तरफ इशारे किया गया है। इस उपन्यास की नायिका सुकन्या मेडिकल विद्यार्थी है। शंकर उसके सीनियर है।

इस उपन्यास में श्रीलाल शुक्ल ने गाँवों का तरवीर सामने रखने का प्रयास किया है। मेडिकल क्षेत्र में व्याप्त अराजकता का पर्दाफाश किया है। गाँवों में नाम के लिए प्राइमरी हेल्थ सेंटर होता है। लेकिन डॉक्टर उपलब्ध नहीं रहते। "वह तो शहर में रहता है, महीने में एक बार तनख्वाह बटोरने आता है। कस्बे में एक दूसरा डॉक्टर है। लंबा फीस लेता है, खूब महँगी दवाइयाँ लिखता है और उन्हें अपनी ही दुकान से खरीदने के लिए कहता है।" (पृ.15)।

सुकन्या शंकर से प्रेम करती है लेकिन खुलकर कह नहीं पाती, क्योंकि दोनों के बीच जाति का दीवार खड़ा था। शंकर को विदेश में शोध करने के लिए फेलोशिप मिलता है, तो वह विदेश चला जाता है और सुकन्या उसी अस्पताल में नौकरी करने लगती है। वर्षों बाद दोनों की मुलाकात एक संगोष्ठी में होती है, फिर भी चाहकर भी सुकन्या उस जातिगत दीवार को लाँघ नहीं सकती। शंकर भी उसे तोड़ने की कोशिश नहीं करता। यह उपन्यास सामाजिक जीवन की अनेक जटिलताओं से टकराते हुए जाति, वर्ग, संस्कृति, बाज़ारवाद आदी के अनेक विसंगतियों को उजागर करता है।

बोध प्रश्न

- इस उपन्यास में किन-किन विषयों पर श्रीलाल शुक्ल प्रहार करते हैं?

व्यंग्य संग्रह

अंगद का पाँव (1958)

यह श्रीलाल शुक्ल का प्रथम व्यंग्य संग्रह है। इस संकलन में बीस व्यंग्य रचनाएँ सम्मिलित हैं। इन रचनाओं में खोखली परंपराओं पर जबर्दस्त चोट है। इसमें साहित्य, संगीत, कला, साक्षात पशु, शोध, यात्रा, संस्मरण, यथार्थ, आदर्श, कथाएँ, इतिहास और पुराण शीर्षकों के अंतर्गत 20 व्यंग्य रचनाओं को समाहित किया गया है। 'शीर्षकों का शीर्षासन' में उन्होंने हिंदी पुस्तकों के नामकरण के बारे में चुटकी ली है, क्योंकि पुस्तक के नाम को पढ़कर कभी-कभी भ्रामक स्थितियाँ पैदा हो जाती हैं। इस पर श्रीलाल शुक्ल का व्यंग्य द्रष्टव्य है - "शीर्षक देने के लिए लेखक पहले आसन संभालता था : शीर्षक उसे स्वयं सूझ जाता था। अब उसी काम के लिए उसे शीर्षासन करना होता है।" (पृ.26)।

यहाँ से वहाँ (1970)

इस संग्रह में कुछ स्केच और कहानियाँ भी सम्मिलित हैं। इन रचनाओं में भारतीय समाज में व्याप्त विषमताओं का चित्रण है। इन रचनाओं में विभिन्न शैलियों को देखा जा सकता है। ये रचनाएँ भारतीय समाज की विसंगतियों, कुंठाओं का विद्रूपात्मक चित्र प्रस्तुत करती हैं। इस संग्रह की रचनाओं का मूल स्वर व्यंग्य है।

बोध प्रश्न

- 'यहाँ से वहाँ' संग्रह की रचनाओं का मूल स्वर क्या है?

उमरावनगर में कुछ दिन (1987)

व्यंग्य कहानियों का संकलन है। इसमें कुल तीन कहानियाँ है - उमरावनगर में कुछ दिन, कुंतीदेवी का झोला और मम्मीजी का गधा। 'उमरावनगर में कुछ दिन' में प्रयुक्त उमरावनगर भी प्रतीक है। यह एक ऐसा गाँव है जो भारत में कहीं भी दिखाई देगा। इस गाँव में विकास नाम मात्र के लिए भी नहीं पहुँचा। लेकिन विकास के नाम पर तेजी से भ्रष्टाचार पहुँचा गया था। इस कहानी के कुछ शीर्षक हैं जो प्रतीकात्मक है। जैसे - बकरी, मुर्गी और फटी कमीजें; इकबाल मियाँ; मित्र ने कहा; खैनी तंबाकू और कंप्यूटर-ट्रेनिंग; सब आवाजों के ऊपर की आवाज आदि। इन छोटे-छूटे प्रसंगों के माध्यम से श्रीलाल शुक्ल व्यंग्य कसते हैं। देश की दुर्दशा को उन्होंने इन शब्दों में व्यक्त किया है - "तुम कहते हो कि देश को नेताओं ने चौपट किया है। सरासर गलत। सारा देश तो बाबुओं के हाथ में है। पूरा बाबू-राज है। बाबू जैसा चाहता है, वैसा ही होता है।" (पृ.9)।

उमरावनगर में विकास कागजों पर तो पहुँच ही चुका था। क्योंकि वहाँ उस गाँव में कंप्यूटर ट्रेनिंग सेंटर भी खुलता है। "पिछले बीस-पाचीस साल में उमरावनगर नामक इस छोटे-से जंगली गाँव का विकास आपने-आप हो चुका है।" (पृ.14)। नाम के लिए दवाखाना है। पर वहाँ "दवाखाने में ऊँघता बुड्ढा, हजारों मक्खियाँ।" (पृ.7)।

बोध प्रश्न

- देश की दुर्दशा के बारे श्रीलाल शुक्ल क्या कहते हैं?

कुछ ज़मीन पर कुछ हवा में (1990)

इसमें तीन प्रकार की रचनाएँ सम्मिलित हैं - पत्र-पत्रिकाओं में छपा हुआ स्तंभ लेखन, कुछ पुरानी अन्य रचनाएँ तथा रेडियो-वार्ताएँ। इस संकलन के बारे में स्पष्ट करते हुए श्रीलाल शुक्ल ने कहा है कि पत्र-पत्रिकाओं में और कहीं अन्यत्र प्रकाशित रचनाओं में से उन्हीं रचनाओं को चुनकर इस संकलन में सम्मिलित किया गया है जो किसी भी समय में प्रासंगिक हो सकती

हैं। अतः "यह तो हुआ वह 'कुछ' जो जमीन पर है। ... आकाशवाणी में प्रसारित होने के कारण ये वार्ताएँ अभी तक 'हवा में' रही हैं : अब दोनों जगह रहेंगी।" (प्रस्तावना, पृ.5)।

इस संकलन में सम्मिलित लेखों में विषय वैविध्य को देखा जा सकता है। पंचायती राज-पद्धति पर टिप्पणी करते हुए श्रीलाल शुक्ल कहते हैं - "सातवें दशक तक आते-आते पंचायती राज-पद्धति के सुधार के नाम पर पंचायती राज को एक ऐसे जानवर का दर्जा दे दिया गया, जिसे जरूरत पड़ने पर जिंदा अजायबघर में भी रखा जा सकता था और मुर्दा अजायबघर में भी।" (पृ.115)

श्रीलाल शुक्ल सामान्य आदमी के प्रति हमेशा बेचैन रहते थे। उनकी रचनाओं में इस बेचैनी को देखा जा सकता है। वे इस बात से चिंतित रहते थे कि आम आदमी गायब होता जा रहा है और उसके स्थान पर 'कोई और' मुखौटा पहनकर फायदा उठाया रहा है। "आम आदमी अपनी बारी का इंतजार करता हुआ लगातार कई दिन, महीने, बरस क्यू में खड़ा रहा है और क्यू में सबसे आगे कोई न कोई खास आदमी आम आदमी का चेहरा लगाकर किसी न किसी तरकीब से पहुँचता रहा है।" (पृ.180)। श्रीलाल शुक्ल इस बात पर बाल देते हैं कि यदि आम आदमी के लिए कुछ करना ही चाहते हों तो खास आदमी के मुँह पर लगे हुए आम आदमी के मुखौटे को उतार फेंकना है तथा फ़रेब के इस माहौल को ठीक करना है।

बोध प्रश्न

- 'कुछ जमीन पर कुछ हवा में' का आशय क्या है?
- आम आदमी के बारे में श्रीलाल शुक्ल का क्या विचार है?

आओ बैठ लें कुछ देर (1995)

इसमें श्रीलाल शुक्ल की टिप्पणियाँ सम्मिलित हैं। संग्रह के बारे में स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा है, "मैं ये टिप्पणियाँ 'नवभारत टाइम्स' के मुख्य संपादक के आत्मीयतापूर्ण दबाव में लिखता रहा होऊँ, उस समय मेरे लिए यही एकमात्र लेखन होने के करण इन्हें मैंने पूरी एकनिष्ठाता के साथ लिखा, मेरे रचनात्मक प्रवृत्ति इनके अखबारी चरित्र में कुछ और जोड़ने के लिए बराबर आग्रहशील रही।" (पृ.5)।

पंडित विद्यानिवास मिश्र को समर्पित इस पुस्तक में आम आदमी की चिंता मुखरित है। राजनीति से लेकर देश की आर्थिक स्थिति तक का चित्रण है। जहाँ 'शहर में कर्फ्यू' की बात है वहीं 'होली के बाद' की चर्चा है। 'भ्रष्टाचार और शिष्टाचार का घालमेल' है तो 'निराला के बहाने कुछ साहित्यिक चर्चा' है। '1992 और भारत' है तो 'त्रेता से भी पहले' की बातें हैं। हिंदी दिवस और शिक्षक दिवस के नाम पर व्याप्त पाखंड पर बेबाक टिप्पणी है तो सिनेमा, नोबेल पुरस्कार, भारतीय क्रिकेट, विज्ञापन, समाचार पत्रों की दशा, लोकसंगीत, भारतीय नेता, शिक्षा क्षेत्र आदि अनेक विषयों पर निष्पक्ष राय है।

आलोचना

अज्ञेय : कुछ रंग और कुछ राग (1999)

इस आलोचना कृति में श्रीलाल शुक्ल ने प्रमुख रूप से अज्ञेय के कथाकार और व्यंग्यकार के रूप को उभारा है। श्रीलाल शुक्ल के अनुसार अज्ञेय 'लोक-जीवन के कथाकार' हैं।

14.3.4 श्रीलाल शुक्ल की वैचारिकता

किसी भी साहित्यकार की रचनाधार्मिता को समझने के लिए या फिर उनके द्वारा सृजित साहित्य को समझने के लिए उनकी वैचारिकता को समझना आवश्यक है। अब तक आपने श्रीलाल के व्यक्तित्व और कृतित्व के बारे में जानकारी प्राप्त की है। आइए, अब उनकी वैचारिकता को समझने की कोशिश करेंगे।

व्यंग्य लेखन को निंदात्मक और आक्रामक मानते हुए श्रीलाल शुक्ल यह कहते हैं कि, "व्यंग्य लेखन गाली-गलौज भर नहीं है, बल्कि वह सुशिक्षित मस्तिष्क की देन है।" (सं. बिशन टंडन, व्यास सम्मान, पृ.307)। व्यंग्य लेखन की विशेषताओं पर तथा व्यंग्य लेखक की योग्यताओं पर भी उन्होंने प्रकाश डाला है। उनके अनुसार "जहाँ (व्यंग्य लेखन में) पुराने साहित्य और इतिहास तथा सामान्य ज्ञान के क्षेत्र से ली गई संदर्भ-बहुलता सूक्ष्म संकेतों को विशेष धार देती है। भाषा-प्रयोगों की उच्छलता, विडंबना और पैरोडी का प्रयोग, लोकमानस में व्याप्त कथाओं, गीतों और रीति-रिवाजों के इशारे इन सबको लेकर एक समर्थ लेखक ऐसी कलाकृति का निर्माण करता है जो चोट करती है - और चोट के दायरे से दूर रहने वालों का मनोरंजन भी। ऐसा लेखन आदर्शों के ह्रास पर मानसिक तिलमिलाहट की ही नहीं, अच्छी बौद्धिक तैयारी की भी अपेक्षा करता है।" (वही)। इससे यह स्पष्ट है कि व्यंग्य लेखक गंभीर लेखन है जिसके लिए बौद्धिकता की आवश्यकता होती है। एक व्यंग्यकार बनने के लिए इतिहास, धर्म, संस्कृति, दर्शन, राजनीति, समाज-व्यवस्था, आर्थिक तंत्र आदि की गहरी समझ होनी चाहिए।

लेखक की प्रतिबद्ध के संबंध में श्रीलाल शुक्ल के विचार बहुत स्पष्ट है। लेखक को अपने समय और परिवेश को ध्यान में रखकर लिखना होगा। यदि वह इनसे अछूता रहेगा तो उसके लेखन की सार्थकता पर प्रश्न चिह्न लगना स्वाभाविक है। इस संबंध में श्रीलाल शुक्ल कहते हैं कि "आज के भारतीय परिवेश में जो लेखक लिख रहा है, वह यदि यहाँ की सामाजिक विसंगतियों, वर्ग-संघर्षों, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक परिस्थितियों में अलग-अलग या अछूता रहता है, तो लेखन की सार्थकता पर प्रश्न चिह्न लगना स्वाभाविक है।" (मेरे साक्षात्कार, पृ.11)

श्रीलाल शुक्ल बार-बार इस बात से चिंतित हो जाते थे कि आज के लेखक अपने समाज के प्रति न्याय नहीं कर रहे हैं। जहाँ निजी स्वार्थ अपना स्थान बना लेता है, वहाँ किसी और चीज के लिए स्थान नहीं होगा। साहित्यकार हो या अध्यापक, नेता हो या पत्रकार - जब सभी अपने निजी स्वार्थ को त्यागकर समाज के बारे में सोचेंगे और कार्य करेंगे तो विकास निश्चित है।

श्रीलाल कहते हैं कि "संपन्नों और विपन्नताओं के बीच की खाई बढ़ रही है और आम आदमी हर तरह प्रताड़ित और पीड़ित है। इस परिवेश को भूलकर जो आज तथाकथित शाश्वत भावों की बात करते हैं। मैं समझता हूँ कि वे लेखक अपने समाज के प्रति न्याय नहीं कर रहे हैं। कहीं न कहीं उनकी संवेदना में कुछ खोट है।" (मेरे साक्षात्कार, पृ.12)

सृजनात्मक लेखन के बारे में भी श्रीलाल शुक्ल के विचार स्पष्ट हैं। वे सृजनात्मक लेखन में वे किसी भी बंधन को नहीं मानते। वे कहते हैं कि "सृजनात्मक लेखन एक शुद्ध स्वच्छंदता की स्थिति होती है। इसमें राजनीतिक प्रतिबद्धता का बंधन मुझे स्वीकार नहीं। मेरे निकट लेखन ही ऐसा एक क्षेत्र है जहाँ आप अपनी स्वतंत्रता ढूँढ़ सकते हैं, जहाँ न आप अपने बॉस से डरते हैं, न बीवी से।" (मेरे साक्षात्कार, पृ.19)

बोध प्रश्न

- लेखक की प्रतिबद्धता के संबंध में श्रीलाल शुक्ल क्या कहते हैं?
- सृजनात्मक लेखन से आपका क्या आशय है?

हिंदी साहित्य में श्रीलाल शुक्ल का स्थान

हिंदी साहित्य में व्यंग्यकार के रूप श्रीलाल शुक्ल ने अपनी एक निजी पहचान बनाई। श्रीलाल शुक्ल और 'राग दरबारी' एक-दूसरे के पर्याय बन गए। जहाँ कहीं श्रीलाल शुक्ल का उल्लेख होता है वहाँ 'राग दरबारी' के उल्लेख के बिना बात पूरी नहीं होती। यह कम लोग ही जानते हैं कि श्रीलाल शुक्ल कुछ हास्य-व्यंग्यात्मक कविताएँ भी लिखी हैं। वे विनोदी स्वभाव के व्यक्ति थे। वे जितना दूसरों पर हँस सकते हैं, उतना ही अपने आप पर।

श्रीलाल शुक्ल जिज्ञासु लेखक थे। हर चीज को विस्तार से जानने के लिए तत्पर रहते थे। किसी भी विषय अथवा घटना के जड़ तक पहुँचकर उसका पड़ताल करते थे। श्रीलाल शुक्ल के संबंध में गोविंद मिश्र का यह कथन उल्लेखनीय है - "जिन्होंने श्रीलाल जी के साथ छोटी बैठकें की हैं, उन्हें मस्ती में गपियाते देखा है... सुनाते चले जाएँगे एक के बाद दूसरा किस्सा, किस्से से फूटते दूसरा किस्सा...।" (सं बिशन टंडन, व्यास सम्मान, पृ. 305)।

श्रीलाल शुक्ल की रचना यात्रा की शुरूआत व्यंग्य लेखन से हुई। बहुत ही जल्दी वे हिंदी के श्रेष्ठ व्यंग्य लेखक के रूप में प्रतिष्ठित हो चुके थे। 'राग दरबारी' उपन्यास के कारण उन्हें अपार ख्याति मिली। एक तरह से 'राग दरबारी' श्रीलाल शुक्ल का 'ट्रेडमार्क' बन गया। इसके बाद व्यंग्य उपन्यासकार की श्रेणी में उनका नाम शामिल हो गया था। उन्होंने एक के बाद एक उपन्यास और व्यंग्य रचनाओं से हिंदी साहित्य को समृद्ध किया था।

इसमें कोई संदेह नहीं कि श्रीलाल शुक्ल की रचनाएँ अपने समय और समाज से उपजी हैं। उन्होंने मानव जीवन को हर पक्ष पर अपनी दृष्टि से विचार किया।

बोध प्रश्न

- श्रीलाल शुक्ल का 'ट्रेडमार्क' क्या है?

14.4 पाठ सार

प्रिय छात्रो! इस इकाई के अध्ययन से आप श्रीलाल शुक्ल के व्यक्तित्व और कृतित्व से परिचित हो ही चुके हैं। श्रीलाल शुक्ल की दृष्टि व्यावहारिक है। यह उनकी रचनाओं में भी द्रष्टव्य है। लखनऊ के छोटे से गाँव अतरौली में जन्मे श्रीलाल शुक्ल प्रशासन अधिकारी के रूप में महती भूमिका निभाई। माता-पिता से संस्कार प्राप्त किए। वे यह मानते थे कि ईमानदारी से कर्तव्य का पालन करने वाले व्यक्ति सबसे ऊँचा है। वे किसी तरह के भेदभाव को नहीं मानते थे। उनकी दृष्टि में सब समान हैं। वे आम आदमी के पक्षधर थे। उनकी चिंता आम आदमी की चिंता है। सरकारी सेवा के साथ-साथ साहित्यिक सेवा भी करते रहे। उनके लिए अपना परिवेश, अपना समाज और अपने लोग महत्वपूर्ण हैं।

आजादी से पहले जन्मे श्रीलाल शुक्ल उन तमाम परिस्थितियों से परिचित थे जिनके करण देश की जनता को गुलामी की जिंदगी जीनी पड़ी। वे आजादी का मूल्य जानते थे। आजादी के बाद समाज में व्याप्त भ्रष्ट तंत्र, विसंगतियों, विद्रूपताओं एवं मूल्यहीनता को देखकर विचलित हो जाते थे। इसीलिए व्यंग्य को साधन बनाकर उन्होंने उन तमाम भ्रष्ट आचारणकारियों पर प्रहार किया। वे बिंबों, प्रतीकों और रूपकों का प्रयोग करके अपनी बात को अभिव्यक्त करते थे। दम तोड़ती मानवीय संवेदनाओं में श्रीलाल शुक्ल पुनः जीवन भरने चाहते थे। उनकी हर रचना का स्थायी भाव व्यंग्य है। श्रीलाल शुक्ल की दुनिया एक ओर गाँव के धूल-धक्कड़, ईंट-पत्थर, कूडे-कर्कट, भोली-भाली जनता, पंचों का षड्यंत्र है, वहीं दूसरी ओर शहर की राजनीति, भ्रष्ट तंत्र, अव्यवस्थित शासन तंत्र, मनुष्य का छद्म वेश, मूल्यहीनता भी विद्यमान है। वे तमाम परिस्थितियों का आकलन करते हैं और अपने साहित्य के माध्यम से पड़ताल करते हैं।

14.5 पाठ की उपलब्धियाँ

इस इकाई के अध्ययन से निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त हुए हैं -

1. श्रीलाल शुक्ल दम तोड़ते मानवीय मूल्यों के प्रति चिंतित साहित्यकार के रूप में जाने जाते हैं।
2. श्रीलाल शुक्ल ने आजाद भारत में व्याप्त भ्रष्ट तंत्र, विसंगतियों, विद्रूपताओं एवं मूल्यहीनता को अभिव्यक्त करने के लिए व्यंग्य को साधन बनाया।
3. श्रीलाल शुक्ल की रचनाओं का स्थायी भाव व्यंग्य है।
4. श्रीलाल शुक्ल ने व्यंग्य उत्पन्न करने के लिए कथा सूत्र के अलावा बिंब, प्रतीक और रूपक भी ऐसे चुने हैं जो व्यंग्यात्मक हैं।

14.6 शब्द संपदा

1. पड़ताल = छान-बीन, निरीक्षण
2. प्रतीक = वह गोचर या दृश्य वस्तु जो किसी अगोचर या अदृश्य वस्तु के बहुत कुछ

अनुरूप होने के करण उसके गुण, रूप आदि का परिचय कराने के लिए उसका प्रतिनिधित्व करती हो

3. यथार्थ = उचित, सत्य
4. रूपक = किसी रूप की प्रतिकृति या मूर्ति, चिह्न
5. विद्रूपता = कुरूपता, विचित्रता
6. विसंगति = असंगति, समकालीन जीवन की वह स्थिति जहाँ प्रत्येक मूल्य का उलटा रूप दिखाई पड़ता है
7. व्यंग्य = गूढ़ार्थ
8. संवेदना = अनुभूति

14.7 परीक्षार्थ प्रश्न

खंड (अ)

दीर्घ श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 500 शब्दों में दीजिए।

1. श्रीलाल शुक्ल के व्यक्तित्व के बारे में प्रकाश डालिए।
2. श्रीलाल शुक्ल की रचना यात्रा की चर्चा कीजिए।
3. श्रीलाल शुक्ल के प्रमुख उपन्यासों का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
4. श्रीलाल शुक्ल के विचारों पर प्रकाश डालिए।

खंड (ब)

लघु श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 200 शब्दों में दीजिए।

1. श्रीलाल शुक्ल के जीवन पर प्रकाश डालिए।
2. श्रीलाल शुक्ल की व्यंग्यपरक रचनाओं पर प्रकाश डालिए।
3. हिंदी साहित्य में श्रीलाल शुक्ल के स्थान एवं महत्व के बारे में चर्चा कीजिए।

खंड (स)

I. सही विकल्प चुनिए -

1. इसमें से एक श्रीलाल शुक्ल का जासूसी उपन्यास है। ( )
   (अ) राग दरबारी (आ) मकान (इ) आदमी का ज़हर (ई) बिस्रामपुर का संत
2. कौन सा उपन्यास श्रीलाल शुक्ल का नहीं है। ( )
   (अ) राग दरबारी (आ) मकान (इ) तितली (ई) आदमी का ज़हर
3. श्रीलाल शुक्ल का ..... उपन्यास विनोबा भावे के भूदान आंदोलन पर केंद्रित है। ( )
   (अ) राग दरबारी (आ) मकान (इ) आदमी का ज़हर (ई) बिस्रामपुर का संत

II. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए -

1. श्रीलाल शुक्ल के साहित्य का स्रोत ..... और ..... है।
2. श्रीलाल शुक्ल वर्तमान व्यवस्था की ..... पर प्रश्न चिह्न लगाते हैं।
3. श्रीलाल शुक्ल का व्यक्तित्व ..... की खोज करता है।
4. 'राग दरबारी' में चित्रित दरबार ..... का है।
5. श्रीलाल शुक्ल का ..... उपन्यास डायरी शैली में है।

III. सुमेल कीजिए -

1. अज्ञेय : कुछ रंग और कुछ राग	(अ) भ्रष्टाचार का अड्डा
2. राग दरबारी	(आ) भूदान आंदोलन
3. बिस्रामपुर का संत	(इ) श्रीलाल शुक्ल का 'ट्रेडमार्क'
4. शिवपालगंज	(ई) आलोचना

14.8 पठनीय पुस्तकें

1. श्रीलाल शुक्ल संचयिता : प्र.सं. नामवर सिंह
2. श्रीलाल शुक्ल की दुनिया : सं. अखिलेश
3. व्यंग्य यात्रा (त्रैमासिकी) - श्रीलाल शुक्ल पर केंद्रित : सं. प्रेम जनमेजय. वर्ष 5, अंक 17. अक्तूबर-दिसंबर 2008
4. मेरे साक्षात्कार : श्रीलाल शुक्ल

इकाई 15 : 'राग दरबारी' : कथानक

रूपरेखा

15.1 प्रस्तावना
15.2 उद्देश्य
15.3 मूल पाठ : 'राग दरबारी' : कथानक
15.3.1 'राग दरबारी' : कथावस्तु का विकास
15.3.2 'राग दरबारी' : उपन्यास का विश्लेषण
15.4 पाठ सार
15.5 पाठ की उपलब्धियाँ
15.6 शब्द संपदा
15.7 परीक्षार्थ प्रश्न
15.8 पठनीय पुस्तकें

15.1 प्रस्तावना

प्रिय छात्रो! 'राग दरबारी' हिंदी साहित्य के मूर्धन्य व्यंग्यकार श्रीलाल शुक्ल की प्रसिद्ध व्यंग्य रचना है। इस कृति में उन्होंने शिवपालगंज को केंद्र में रखकर वहाँ की भाषा, शैली, मिथक, परंपरा एवं मुहावरों को लेकर जीवंत व्यंग्य साहित्य रचा है। उन्होंने इस उपन्यास में भारतीय राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक आदि सभी क्षेत्रों के ढुलमुल व्यवस्था पर सटीक कटाक्ष किया है। सरकारी कर्मचारी होकर भी व्यवस्था पर सीधा चोट करना आसान कार्य नहीं है। 'राग दरबारी' एक कालातीत रचना है, क्योंकि सत्तर के दशक की यह रचना आज भी प्रासंगिक है। भ्रष्टाचार, अनैतिकता, जातिगत, धर्मगत अव्यवस्था का ऐसा चित्रण शायद ही अन्यत्र हुआ हो। 'राग दरबारी' में भारतीय स्वातंत्र्योत्तर ग्रामीण जीवन के मूल्यों के पतन को बड़ी रोचकतापूर्ण ढंग से चित्रित किया गया है।

देश को आज़ादी मिलने के बाद प्रत्येक भारतीयों के मन-मस्तिष्क में सुंदर भारत के भविष्य का स्वप्न जब आज़ादी के 20 वर्षों के पश्चात् भी स्वप्न रह जाता है, तो ऐसी स्थिति में कई बार लोगों के मन में ये बात उठती थी कि इससे तो अच्छा भारत स्वतंत्रता से पहले ही था। यदि आम जन में ऐसी बात उठ सकती है, तो एक संवेदनशील लेखक के मन में भी निश्चय ही बड़ी उथल-पुथल हुई होगी। देश की आजादी प्राप्त हो चुकी। साथ ही जनता का मोहभंग भी हुआ। इसके कारण को 'राग दरबारी' के लेखक ने पचास साल पहले ही चित्रित कर दिया है। 'राग दरबारी' मात्र एक उपन्यास ही नहीं भारतीय भ्रष्टाचार का दर्पण भी है। यदि पाठकों की दृष्टि में उपन्यास में गंदगी जरूरत से ज्यादा है तो समझना चाहिए कि लेखक अपने उद्देश्य को पाठक तक पहुँचाने में सफल हो गया है। हिंदी साहित्य में व्यंग्य विधा के विशेष उद्देश्य को लेकर लिखने वाले लेखकों में श्रीलाल शुक्ल का महत्वपूर्ण स्थान है। वे एक सहज, सचेत, विनोदप्रिय,

अनुशासनप्रिय, मननशील प्रवृत्ति के व्यक्ति थे। अपनी स्पष्टवादिता के लिए वे सदा जाने जाते रहे।

15.2 उद्देश्य

प्रिय छात्रो! इस पाठ के अध्ययन के बाद आप -

- 'राग दरबारी' के कथानक को विस्तार से जान पाएँगे।
- 'राग दरबारी' की प्रासंगिकता से अवगत हो सकेंगे।
- 'राग दरबारी' उपन्यास में निहित व्यंग्य को समझ सकेंगे।
- 'राग दरबारी' में निहित लेखक की वैचारिकता से परिचित हो सकेंगे।

15.3 मूल पाठ : 'राग दरबारी' : कथानक

प्रिय छात्रो! इस इकाई में आप 'राग दरबारी' उपन्यास के कथानक का अध्ययन करेंगे। 'राग दरबारी' के कथानक को औपन्यासिक तत्वों के आधार पर समझने की कोशिश करेंगे। एक लेखक अपने आस-पास के परिवेश को ही अपनी कृतियों का आधार बनाता है। श्रीलाल शुक्ल ने अपनी कलम से पूर्वांचल क्षेत्र के शिवपालगंज को इस तरह रूपायित किया है कि पाठक वहाँ भौतिक रूप से न पहुँचकर भी शिवपालगंज के पात्रों से बोलने-बतियाने लगता है। वस्तुतः शिवपालगंज एक काल्पनिक कस्बानुमा गाँव है। एक प्रतीक है। इसे सिर्फ पूर्वांचल में ही नहीं बल्कि संपूर्ण भारत में कहीं भी पाया जा सकता है।

इस उपन्यास के कथानक की जीवंतता में शिवपालगंज की देशज शैली, भाषा तथा वहाँ के दैनिक मुहावरों का महत्वपूर्ण योगदान है। सृष्टि के आरंभ से ही मानव अपने जीवन स्तर के विकास के लिए विविध व्यवस्थाओं को बनाते हुए, उन्हें अपने जीवन में उतरता रहा है। यह उपन्यास कई परतों में व्यवस्था की विडंबना को उधेड़ते हुए चित्रित हुआ है, लेकिन अपने शीर्षक के कारण राजनीतिक यथार्थ के अनावरण का केंद्र माना जाने लगा।

बोध प्रश्न

- चुनावी भारत की सरगर्मियों को बताने के लिए श्रीलाल शुक्ल ने किसे केंद्र में रखा है?
- शिवपालगंज कैसा गाँव है?

उपन्यास के आरंभ में श्रीलाल शुक्ल ने शिक्षा क्षेत्र में व्याप्त अव्यवस्था को इन शब्दों में चित्रित किया है - 'वर्तमान शिक्षा पद्धति रास्ते में पड़ी कुतिया है, जिसे कोई भी लात मार सकता है।' हमारे देश की शिक्षा व्यवस्था में राजनीतिक हस्तक्षेप का जो रूप दिखता है, उससे तो यही प्रतीत होता है कि शिक्षा व्यवस्था की विफलता राजनेताओं के भ्रष्टतंत्र की प्राथमिक शाला है। 'रुप्पन बाबू स्थानीय नेता थे। उनका व्यक्तित्व इस आरोप को काट देता था कि, इंडिया में नेता होने के लिए पहले धूप में बाल सफेद करने पड़ते हैं। ...उनके नेतागिरी का

प्रारंभिक और अंतिम क्षेत्र वहाँ का कॉलेज था, जहाँ उनका इशारा पाकर सैकड़ों विद्यार्थी तिल का ताड़ बना सकते थे और जरूरत पड़े तो उस पर चढ़ भी सकते थे।'

लेखक ने जहाँ भी मौका मिला है विडंबनाओं पर चोट की है। रंगनाथ ट्रक ड्राईवर से कहता है - 'ड्राईवर साहब, तुम्हारा गियर तो बिलकुल अपने देश की हुकूमत जैसा है।' वैद्यजी इस उपन्यास के मुख्य पात्र है। लेखक कहते हैं - 'वैद्यजी थे, हैं और रहेंगे।' वैद्यजी अपने सेवक सनीचर को मुखिया बना कर अपने बाहुबल का मनमाना प्रयोग करते हुए लोकतंत्र का मजाक उड़ाते हैं। वस्तुतः इस उपन्यास में चित्रित दरबार वैद्यजी का ही दरबार है। वही सर्वेसर्वा हैं। उनकी आज्ञा के बिना एक भी पत्ता इधर से उधर नहीं हो सकता। उस गाँव में फैली अराजकता का केंद्र भी वैद्यजी ही हैं।

बोध प्रश्न

- शिक्षा व्यवस्था के संबंध में श्रीलाल शुक्ल की क्या टिप्पणी है?
- 'राग दरबारी' में चित्रित दरबार किसका है?

15.3.1 'राग दरबारी' : कथावस्तु का विकास

श्रीलाल शुक्ल ने बहुत सारे पात्रों के माध्यम से कथानक को आगे बढ़ाया है। इस उपन्यास के हर पात्र ऐसे एक-दूसरे से जुड़ते चले जाते हैं। उन्हें देख कर प्रतीत होता है कि मानो सारे पात्र हमारे सामने आकर हमें भी अपने साथ लिए जा रहे हों। उपन्यास के हर पात्र अपने साथ एक अलग कहानी का विन्यास करता हुआ प्रतीत होता है। छंगामल इंटर कॉलेज को केंद्र में रखकर लेखक चुनावी भारत की सरगर्मियों को बताने के साथ ही कोआपरेटिव यूनियन के गबन को बड़ी सत्यता के साथ प्रस्तुत करते हैं। शिवपालगंज के ग्राम सभा चुनाव में भी लेखक ने एक साथ कई कहानियों को लिया है, जैसे शिवपालगंज के ग्राम सभा चुनाव से रामनगर, महिपालपुर और नेवादा की चुनावी कहानियों को जोड़कर भारत के चुनावी दावपेंच को जीवंत कर दिया है। उपन्यास के हर पात्र को लेखक ने महत्वपूर्ण बनाया है।

'राग दरबारी' में श्रीलाल शुक्ल ने अपनी बेजोड़ भाषा के माध्यम से ग्रामीण त्रासदियों तथा बिडंबनाओं को मुखरता प्रदान की है। मिथक, परंपराओं को ग्रामीण जनों में बड़े गहरे तक उन्होंने रूपायित की है। इस उपन्यास के पात्र हमें आज भी अपने आस-पास मिल जाएँगे। देश की आज़ादी के बाद जो सपने देश के विकास के लिए आम भारतीयों ने देखे थे, वे सब तार-तार होते जा रहे थे। इस तरह हताशा तथा निराशा भरे वातावरण में समाज की विसंगतियों को विनोदशील रूप में उन्होंने राग दरबारी में प्रस्तुत किया है।

इस उपन्यास में ग्रामीण जीवन को श्रीलाल शुक्ल ने अपने अनुभव के धरातल पर चित्रित किया है। समाज को समाज में रमकर भी जब एक लेखक तटस्थ भाव से उसी समाज की बखिया उधेड़ता है, तो यह बड़ा जोखिम भरा काम होता है। श्रीलाल शुक्ल जितने ही सरल हैं, उतनी ही सादगी से समाज के उलझे हुए विषयों को अपनी रचनाओं में प्रस्तुत करते हैं। ऐसा

नहीं है कि उन्होंने समाज का एकांगी चित्रण किया है, उसमें नगरीय झलकियाँ भी देखी जा सकती हैं।

'राग दरबारी' में लेखक का नैतिक मूल्यों के प्रति जुड़ाव बखूबी चित्रित हुआ है। इस उपन्यास में उन्होंने यथार्थ का अनुभूतिपरक प्रकटीकरण किया है। मानव के विविध जीवन स्तरों को पैनेपन के साथ इस उपन्यास में दिखाया गया है। इस उपन्यास में उत्तर प्रदेश के पूर्वांचल क्षेत्र के गाँव शिवपालगंज के लोगों की जिंदगी के बारे में विस्तारपूर्वक बताया गया है। स्वतंत्रता के बाद 'गरीबी हटाओ' जैसे नारों के बावजूद गाँव वालों के क्षुद्र स्वार्थ के कारण गाँव को विकास के नाम पर घिसटता पाते हैं। इस गाँव की पंचायत, सहकारी संस्था, कॉलेज प्रबंध समिति आदि के मुखिया वैद्य जी के हाथों की कठपुतली हैं।

हमारे देश में प्रजातंत्र और लोकहित के नाम वैद्य जी जैसे राजनीतिक संस्कृति के व्यक्ति समाज और राजनीति के दीमक बने रहते हैं। वैद्य जी गाँव के स्थानीय कॉलेज के आधिकारिक प्रबंधक हैं। वैद्य जी अकेले गाँव में भ्रष्टाचार नहीं करते हैं, बल्कि गाँव के कई लोग इस भ्रष्टाचार में सम्मिलित रहते थे। उनके छोटे बेटे रुप्पन बाबू कई सालों से लगातार दसवीं कक्षा में फेल होकर भी छात्र नेता बने हुए थे। रुप्पन बाबू गाँव की राजनीति में सदैव सक्रिय भागीदारी निभाते हैं। वैद्य जी के बड़े सुपुत्र बद्री अग्रवाल अपने पिता के दावपेंचों से सदा दूर रहकर अपना शरीर बनाते हुए पहलवानी करते हैं तथा अपनी जीवनचर्या देखते हैं। रंगनाथ वैद्यजी के भतीजे हैं, जिन्होंने इतिहास विषय से एमए करने के बाद पाँच-छह महीने के लिए छुट्टी बिताने के लिए शिवपालगंज आते हैं। छोटा पहलवान गाँव की राजनीति का सक्रिय भागीदारी निभाते हैं, जो वैद्यजी द्वारा बुलाए गए बैठकों में सदा उपस्थित रहते हैं।

प्रिंसिपल साहिब छंगामल विद्यालय इंटर कॉलेज के प्राचार्य हैं, जो कॉलेज कर्मचारियों के अन्य सदस्यों के साथ षड्यंत्र के केंद्र होते हैं। उपन्यास में जोगनाथ एक नशेडी, गुंडा है, जो अपनी अनूठी भाषा से इस उपन्यास के कलेवर को विनोदप्रिय बनाता है। 'राग दरबारी' में मंगलदास अर्थात सनीचर वैद्यजी का नौकर है, जिसे राजनीतिक-रणनीतिक हथकंडे के रूप में वैद्यजी कठपुतली ग्रामप्रधान बनाते हैं। उपन्यास में भ्रष्ट व्यवस्था का शिकार लंगड़ है, जो आम आदमी का प्रतिनिधित्व करता है। सरकारी स्कूलों की दयनीय स्थिति तो जगजाहिर है। मास्टर मोतीराम जैसे शिक्षक कक्षा में पढ़ाते कम हैं किंतु अपनी आटे की चक्की में अधिक समय लगाते हैं। लेखक उपन्यास के माध्यम से बताते हैं कि वे अपने निजी व्यवसाय के लिए तो समय निकालते हैं किंतु छात्रों के लिए नहीं।

उपन्यास का यह अंश लेखक की सूक्ष्म दृष्टि का सटीक परिचय देता है - 'आज मानव समाज अपने पतन के लिए खुद जिम्मेदार है। आज वह खुलकर हँस नहीं सकता। हँसने के लिए भी 'लाफिंग क्लब' का सहारा लेना पड़ता है। शुद्ध हवा के लिए ऑक्सीजन पार्लर जाना पड़ता है। बंद बोतल का पानी पीना पड़ता है। इंस्टेंट फ़ूड खाना पड़ता है।'

बोध प्रश्न

- सरकारी स्कूलों की स्थिति के बारे में इस उपन्यास में क्या कहा गया है?
- इस उपन्यास में भ्रष्ट व्यवस्था का शिकार कौन होता है?
- वर्तमान समाज के संबंध में लेखक की क्या टिप्पणी है?

'राग दरबारी' का कथानक रंगनाथ से आरंभ होता है। वह इतिहास विषय से एमए करने के बाद डॉक्टर की सलाह पर स्वास्थ्य लाभ के लिए शिवपालगंज गाँव में अपने मामा वैद्य जी के पास जाता है। उसे जब एमए करने के बाद भी नौकरी नहीं मिलती, तो वह शोध करने लगता है। यद्यपि उच्च शिक्षित होने पर भी अपने शोध कार्य को घास खोदने के बराबर का कार्य मानता है। गाँव में वह हमेशा अपने वैचारिक संघर्ष से जूझता रहता है। रंगनाथ अपने जीवन की समस्याओं का सामना करने में असमर्थ होता है। उसके पास सैद्धांतिक ज्ञान तो है, किंतु व्यावहारिक ज्ञान का नितांत अभाव है। जब गाँव के मेले में भगवान की विशेष मूर्ति को सिपाही कहता है, तो गाँव वालों के बीच उपहास का पात्र बन जाता है। गाँव में घटित अनैतिक कार्यों का वह कोई विरोध नहीं करता, बल्कि तटस्थता का निर्वाह करता है। जब कॉलेज के प्राचार्य द्वारा गाँव के कॉलेज में खन्ना मास्टर के स्थान पर नौकरी का अवसर दिया जाता है, तो उसे रंगनाथ अपने सिद्धांतों के विरुद्ध मानकर अस्वीकार करता है। जिस पर प्रिंसिपल उसे गधा तक कह देता है। गाँव के बदबूदार साजिशों को देख कर रंगनाथ का दम घुटने लगता है। आधुनिक शिक्षा के प्रतिनिधि रंगनाथ शिक्षित होते हुए भी अनपढ़ या कम शिक्षित व्यक्ति के समक्ष विवश और लाचार बना रहता है।

बोध प्रश्न

- रंगनाथ गाँव में क्यों आया था?
- शिक्षित होने के बावजूद रंगनाथ गाँववालों के समक्ष विवश क्यों हो जाता है?
- गाँव में रंगनाथ का दम क्यों घुटने लगता है?

इस उपन्यास में वैद्य जी आधुनिक राजनीति के पैंतरेबाजी में दक्ष हैं। आज़ाद भारत में स्वार्थपूर्ण राजनीति के वे प्रतीक हैं। वैद्य होते हुए भी उनमें मानवीयता का सर्वथा अभाव है। उनका पुत्र रुप्पन अपने पिता के खिलाफ सारे अनैतिक हथकंडे अपनाते हुए राजनीति में कदम रखता है।

लेखक ने राजनीतिक पैंतरेबाजी को अपने लेखन कौशल से जीवंत कर दिया है। रामधीन भीखम खेड़वी के द्वारा अपने चचेरे भाई को ग्रामप्रधान बनाने के बाद वैद्य जी सनीचर को ग्रामप्रधान बनाने का निश्चय करते हैं। भारतीय राजनीति में ऐसे दृश्य बहुत ही सामान्य हैं। लोकतंत्र का मखौल उड़ाने में हमारे देश के मतदाता ही जुड़े रहते हैं। श्रीलाल शुक्ल कहते हैं, लोकतंत्र जागरूक, सभ्य देश में सफल होता है, जबकि भारत में लोकतंत्र सबको अपने जेब में रखा तुरुप का पत्ता प्रतीत होता है, जिसे जब चाहे निजी स्वार्थ के लिए प्रयोग कर सकता है। सनीचर जैसे लोग भी लोकतंत्र में मुखिया की भूमिका के लिए स्वयं को योग्य बनाने से पीछे

नहीं हटते। शहर जाकर सनीचर एक नया गुण सीख लेता है। उपन्यास में सनीचर का वैद्य जी से कहा गया यह वाक्य इस संदर्भ में उल्लेखनीय है - 'गुरु जी हुआ यह है कि अब इस गाँव में कोआपरेटिव फारम खुलेगा। ...पच्छिम की तरफ वाले ऊसर फारम लहकेगा। ऊसर होने से कोई हरज नहीं। कागज़-पत्तर वाला काम बालक वाले संभालेंगे। कागज़-पत्तर के मामले में वे तहसील-थाने वालों के भी बाप हैं। कहो तो आसमान में कोपरेटिव बना दे। यहाँ तो धरती की बात है।' एक सरकारी नौकर होते हुए भी लेखक की बेबाकी देख कर पाठक दाँतों तले उंगली दबा लेते हैं। ऐसी व्यवस्था में पढ़ा-लिखा रंगनाथ भी निरुपाय रह जाता है। उपन्यास के इस अंश में रंगनाथ की मनोदशा का अवलोकन किया जा सकता है। 'सनीचर की विजय के दिन उसने बहुत कुछ सोच डाला और उस दौरान उसे प्रदेश की राजधानियों में न जाने कितने वैद्य जी और मंत्रियों, मुख्यमंत्रियों की कतार में न जाने कितने सनीचर घुसे हुए दिख पड़े।'

बोध प्रश्न

- भारतीय लोकतंत्र के संबंध में श्रीलाल शुक्ल क्या कहते हैं?

इस उपन्यास में श्रीलाल शुक्ल द्वारा आजादी के बाद के भारत का सजीव चित्र प्रस्तुति किया गया है। लेखक ने प्रशासन में रहकर भी दरबारी अर्थात शासकीय भ्रष्टाचार का अनावरण किया है। शिक्षा जगत के कोरे आदर्शवाद को घिसटते हुए दिखाया है। भीखमखेडी कलकत्ता में अफीम बेचने का कार्य करता है, वहाँ उसे जेल की सजा होती है। जेल से छूटने के बाद शिवपालगंज आकर खेती की आड़ में गाँव वालों को अफीम की आदत डालता है। सनिचर वैद्य जी का नौकर और चापलूस व्यक्ति है, जिसे वैद्यजी ग्रामप्रधान बनवाकर अपने भ्रष्टाचार की नदी बहाते रहते हैं। ईमानदार लंगड़, जो आम आदमी का प्रतीक है, उसे अपने आदर्शवाद के कारण कुछ भी नहीं प्राप्त होता। प्रिंसिपल अपनी नौकरी बचाने के लिए छात्रों के भविष्य की भी परवाह नहीं करता। उपन्यास का यह वाक्य इस संदर्भ में सटीक बन पड़ा है - 'अपने देश का क़ानून बहुत पक्का है, जैसा आदमी वैसी अदालत!'

उपन्यास में पात्र अपने हित को देशहित से अधिक महत्वपूर्ण मानते हैं। कॉलेज के छात्रप्रिय व्यक्ति खन्ना को प्राचार्य षड्यंत्रों में फँसाकर कॉलेज से बाहर निकाल देते हैं। न्यायालय के भ्रष्टाचार को पंडित राधेलाल के माध्यम से चित्रित किया गया है, जो किसी भी मामले में चश्मदीद गवाह बनकर झूठ को सच सिद्ध करने में कुशल है। इस प्रकार पूरे उपन्यास में झूठ, भ्रष्टाचार, कालाबाजारी, नशाखोरी, सरकारी उपक्रमों को ध्वस्त करने में कुशल साधारण ग्रामीणों के माध्यम से चित्रित किया है। लेखक ने उपन्यास में भारत के विकास को कलुषित करने वाले लोगों का यथार्थ चित्रण किया है। उपन्यास रंगनाथ के गाँव आने से लेकर आरंभ होता है। रंगनाथ गाँव के भ्रष्टाचारी स्वरूप से बौखलाया हुआ गाँव छोड़कर भागने में ही अपनी भलाई समझता है। गाँव के त्रासद वातावरण से त्रस्त होकर पलायन करने के रोचक किंतु सत्य चित्र प्रस्तुत करता है।

बोध प्रश्न

- भीखमखेड़ी कौन है?
- रंगनाथ गाँव से वापस क्यों चला गया?
- श्रीलाल शुक्ल ने इस उपन्यास में भारत का कैसा चित्र प्रस्तुत किया है?

रिपोर्ताज शैली में लिखा गया यह उपन्यास ग्रामीण भाषा के प्रयोग के कारण दरबारी तत्र व भ्रष्टतंत्र का जीवंत चित्रण प्रतीत होता है। लेखक ने हिंदी पट्टी के गाँवों की कुरूपता की बड़ी गंभीरतापूर्वक उजागर किया है। लेकिन इसमें संदेह नहीं कि ऐसा गाँव भारत में हर क्षेत्र मैं मौजूद है। यह उपन्यास भारतीय भौतिकता तथा आध्यात्मिकता के सामंजस्य का जीवंत उदाहरण प्रस्तुत करता है। लेखक ने व्यंग्य के साथ विनोद का रोचक मिश्रण किया है। शिक्षा व्यवस्था में व्याप्त सड़ांध को श्रीलाल शुक्ल ने वैद्य जी के माध्यम से व्यक्त किया है - 'और सच पूछो तो मुझे यूनिवर्सिटी में लेक्चरार न होने का कोई गम नहीं है। वहाँ तो और भी नरक है, पूरा कुम्भीपाक। दिन-रात चापलूसी। कोई सरकारी बोर्ड दस रुपल्ली की ग्रांट देता है और फिर कान पकड़कर जैसी चाहे वैसी थीसिस लिखा लेता है। जिसे देखो, कोई-न-कोई रिसर्च-प्रोजेक्ट हथियाए हैं। कहते हैं रिसर्च कर रहे हैं, पर रिसर्च भी क्या, जिसका खाते हैं उसी का गाते हैं। और कहलाते क्या हैं। देखो, देखो कौन-सा शब्द है - हाँ-हाँ, याद आया - बुद्धिजीवी। तो हालत यह है कि हैं तो बुद्धिजीवी, पर विलायत का एक चक्कर लगाने के लिए यह साबित करना पड़ जाए कि हम अपने बाप की औलाद नहीं हैं, तो साबित कर देंगे। चौराहे पर दस जूते मार लो, पर एक बार अमरिका भेज दो- ये हैं बुद्धिजीवी।'

श्रीलाल शुक्ल ने कथानक को बुनते समय अपनी दृष्टि को नितांत यथार्थवादी बनाया है। उनकी अनुभूतिपरक दृष्टि कथानक को कालजयी बनाती है। लेखक ने कथानक के माध्यम से परिवर्तन लाने की कोशिश नहीं की है। लेखक ने किसी पात्र को क्रांतिकारी चरित्र में नहीं ढाला है बल्कि जीवंत समाज को ही प्रस्तुत किया है। लेखक की वर्णनात्मकता पात्रों को पाठकों के अधिक नजदीक ले आती है।

बोध प्रश्न

- राग दरबारी उपन्यास किस शैली में लिखा गया है?
- शिक्षा व्यवस्था में व्याप्त भ्रष्टाचार के बारे में वैद्य जी क्या टिप्पणी करते हैं?

15.3.2 'राग दरबारी' : उपन्यास का विश्लेषण

श्रीलाल शुक्ल ने बड़े रोचक शैली में 'राग दरबारी' उपन्यास का आरंभ करते हुए प्रशासनिक भ्रष्टाचार की कलई खोली है। उदाहरण के लिए- 'मध्यकाल का कोई सिंहासन रहा होगा, जो अब घिसकर कुर्सी बन गया था। दरोगा जी उस पर बैठे भी और लेटे भी थे।' इस उपन्यास की सामयिकता तथा प्रासंगिकता ने पाठकों को सदैव आकर्षित किया। उपन्यास का विविध विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम में शामिल होना तथा इसका नाटकीय मंचन नए युग का

राग छेड़ने में सक्षम है। एक साथ यह उपन्यास दो प्रकार की अनुभूतियों से जुड़ा हुआ है, एक ओर इसकी प्रासंगिकता लेखकीय पारंगतता को बताता है तो दूसरी ओर यह देश की दुरावस्था में बदलाव न आने का संकेत भी देता है। उपन्यास को जब साहित्यिक मानदंडों पर कसने का प्रयत्न किया जाता है तो अधिक कुछ हाथ नहीं लगता, लेकिन साहित्य को समाज के दर्पण के रूप में पड़ताल किया जाता है तो यह अत्यंत महत्वपूर्ण रचना सिद्ध होती है। उपन्यास को पढ़ते समय ऊपर से हँसी छूटने लगती है, लेकिन मन व्याकुल हो उठता है। उपन्यास के तीन केंद्र राजनीति के तिकड़म प्रतीत होते हैं, जहाँ चुनाव जीतने के लिए अपने-अपने आदमी फिट करने की होड़ लगी हुई है। लेखक इन संस्थाओं को लोकतंत्र की नर्सरी के रूप में चित्रित करते हैं। शिवपालगंज उत्तर प्रदेश का कस्बाई गाँव होकर भी भ्रष्टाचार करने के ऐसे अड्डे के रूप में चित्रित हुआ है जो किसी कोण से कस्बा नहीं प्रतीत होता है। इस एक गाँव के माध्यम से लेखक ने भारतीय संस्कृति की जड़ता होने पर चिंता व्यक्त की है। भारत के पिछड़ेपन के कारणों को भी 'राग दरबारी' उपन्यास में खोजा जा सकता है। भारत हजारों वर्षों तक विदेशी आक्रमणकारियों का दास अपनी कमजोरियों के कारण बना। वह भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के लंबे संघर्ष के बाद भी दूर न हो सका। भारतीय जड़वादी सोच के कारण कई प्रकार की विसंगतियाँ घर किए हुए हैं। भ्रष्टाचार, मूल्यहीनता, आडंबर, लालफीताशाही तथा नेतृत्वकर्ताओं का पतनशील व्यक्तित्व भारतीय लोकतंत्र की नींव को कमजोर करती रहती हैं।

श्रीलाल शुक्ल ने प्रगतिशीलता के मुखौटे को अपनी आँखों से उतरते देखा था। इस उपन्यास से यह पता चलता है कि उदारवादी दौर में भी भारतीय परिवेश में बहुत अधिक बदलाव नहीं आ पाया है। लेखक के रचनाकाल को मोहभंग माना जाय तो, वर्तमान काल भी उस स्थिति में अधिक परिवर्तन नहीं ला सका है। लेखक ने घोर यथार्थ को रिपोर्ट की शैली में लिखकर उपन्यास के माध्यम से उसे सर्वकालिक बना दिया है। विश्वगुरु के स्थान पर जो देश पूर्व में स्थापित रहा हो, उसे मानवता का यदि पाठ पढ़ाने की आवश्यकता पड़ जाय, तो यह चिंतनीय विषय होता है। स्वातंत्रोत्तर भारत के सामाजिक बेचारेपन को राजनीतिक मूल्यहीनता ने जर्जर बना डाला था। इसका चित्रण उपन्यास में बड़ी बारीकी से किया गया है। लेखक ने भारतीय समाज में व्याप्त रूढ़ियों, आडंबरों, भ्रष्टाचारों तथा राजनीति के चापलूसों की कलई उधेड़ने के लिए स्थानीय बोली-भाषा एवं मुहावरों का प्रयोग किया है। वैद्य जी जैसा शब्द-चयनकर्ता पात्र उपन्यास की नोक को और अधिक पैनापन प्रदान करता है। लोकतंत्र के नाम पर भ्रष्टतंत्र का जो संजाल स्वतंत्रता के बाद चारों ओर पसरा था, उससे सर्वसाधारण जनता का मनोबल ध्वस्त हो रहा था। लोकतंत्र में भाई-भातीजाबाद को बताने के लिए वैद्यजी के छोटे सुपुत्र रुप्पन बाबू को चुना है, दसवीं कक्षा में कई बार फेल होकर भी गाँव की सक्रिय राजनीति के सफलतम लोगों में उसकी प्रतिष्ठा होती है। वैद्य जी के बड़े सुपुत्र बद्री अग्रवाल एक तटस्थ पात्र की भूमिका निभाते हैं, उन्हें मात्र अपने शरीर-निर्माण की चिंता रहती है। यद्यपि पाठक के मन में ये बात आ सकती है कि इस उपन्यास का जागरूक और शिक्षित पात्र रंगनाथ व्यवस्था के कुचक्र से आहत तो होता है, लेकिन उसे दूर करने का किंचित भी प्रयत्न नहीं करता।

रंगनाथ को लेखक ने बुद्धिजीवियों का प्रतिनिधि बना कर प्रस्तुत किया है। गाँव के छंगामल इंटर कॉलेज के छात्रनेता रुप्पन वैद्य जी के पुत्र हैं, जिन्हें पढ़ाई छोड़ कर हर तरह के दुष्कृत्य में शामिल देखा जा सकता है। रुप्पन को लेखक ने विद्रोही युवक के रूप में उपन्यास में चित्रित किया है। यहाँ तक कि कॉलेज के प्राचार्य से लेकर थानेदार तक उसकी हाँ में हाँ मिलाया करते थे। उपन्यासकार ने रुप्पन के संदर्भ में लिखा है -'उनकी इतनी इज्जत थी कि पूँजीवाद के प्रतीक दुकानदार उनके हाथ सामान बेचते नहीं, अर्पित करते थे और शोषण के प्रतीक इक्केवाले उन्हें शहर तक पहुँचा कर किराया नहीं, आशीर्वाद माँगते थे।' लेखक ने इस देश की युवा पीढ़ी इस तरह के राजनीतिक वातावरण में गहरे लिप्त दिखाया है और पाठकों को सोचने पर विवश कर दिया है। लेखक की दूरदृष्टि अपूर्व है। 'राग दरबारी' के समय के भारत और वर्तमान भारत के परिवेश में अधिक अंतर नहीं दीखता। उच्च शिक्षित रंगनाथ अव्यवस्था के समक्ष तटस्थता की नीति का पालन करता है। छोटा पहलवान चापलूस राजनीति का प्रतीक बनकर सामने आता है, वैद्य जी की लगभग सभी बैठकों में वह सक्रिय सहभागिता निभाता है।

शिक्षा व्यवस्था ज्ञान के प्रकाश का केंद्र होता है। किंतु इस उपन्यास में इसी ज्ञान के केंद्र में अज्ञान, अनाचार का बोलबाला दिखाया गया है। ईमानदार शिक्षकों को खन्ना साहब की तरह मुँह की खानी पड़ती है। रंगनाथ खन्ना मास्टर के प्रति सहानुभूति रखते हुए भी प्राचार्य के विरुद्ध खड़ा नहीं पाता। उसे व्यवस्था के कुचक्रियों द्वारा व्यवस्था से बाहर निकाल दिया जाता है। जोगनाथ जैसे नशेड़ी और गुंडे को लेखक ने असामाजिक तत्व के रूप में प्रस्तुत किया है। सनिचर, जिसका वास्तविक नाम मंगलदास है, वह राजनीति का मोहरा मात्र है। सनिचर उपन्यास में प्रधान बनाया जाता है, किंतु भारतीय ग्रामीण तंत्र में ऐसे ही मोहरों के माध्यम से षड्यंत्रकारी अपने कुत्सित उद्देश्य को पूरा करते हैं। इस उपन्यास में लंगड़ जैसा पात्र तमाम भ्रष्टतंत्र का शिकार होकर आम आदमी की विवशता, असहायता को प्रस्तुत करता है।

बोध प्रश्न

- वैद्य जी किस वर्ग का प्रतिनिधि पात्र है?
- भारतीय लोकतंत्र की नींव किस प्रकार कमजोर होता जा रहा है?
- लंगड़ किस वर्ग का प्रतीक है?

श्रीलाल शुक्ल ने स्वातंत्र्योत्तर भारत की मूल्यविहीन संस्कृति को ठेठ गँवई शैली में चित्रित किया है। उपन्यास में सुरुचि और संस्कार को ढूँढने वालों को निराशा ही हाथ लगेगी। इक्कीसवीं सदी में 'राग दरबारी' पाठकों को अनूठे अनुभव से परिचित भी कराता है। उपन्यास में बद्री पहलवान और छोटे पहलवान पात्रों के माध्यम से लेखक ने पिता-पुत्र संबंधों के पतन को बड़ी बारीकी से चित्रित किया है। बद्री पहलवान वैद्यजी का बड़ा बेटा छोटे पहलवान का गुरु है। उसके अखाड़े में चोर, डाकू तथा व्यभिचारियों को प्रशिक्षण तथा संरक्षण मिलता है। वे दुनिया में इसी ताकत को सबसे ऊँचा स्थान देते हैं। छोटे पहलवान के घर में पिता-पुत्र के बीच हाथापाई, गाली-गलौज की परंपरा पीढ़ीयों से चली आ रही थी। जब सनीचर उससे कहता है,

'आखिर कुसहर ने तुम्हें पैदा किया है।' यह सुनकर वह जवाब देता है - 'कोई हमने स्टाम्प लगाकर दरख्वास्त दी थी कि हमें पैदा करो। चले साले कहीं के पैदा करने वाले।' ऐसे वाक्य उपन्यास को यथार्थ के धरातल पर उतारते हैं। लेखक कहीं भी सामने नहीं आते बस परदे के पीछे से कथानक को विदूषक बन कर विस्तार देते रहते हैं। जब कथा में कहीं ढीलापन आता है तो लेखक आकर झिंझोड़ कर जगा जाते हैं। कथानक की यही पकड़ पाठकों को सम्मोहित करते हुए बांध लेती है।

बोध प्रश्न

- श्रीलाल शुक्ल ने इस उपन्यास के माध्यम से क्या उजागर करने का प्रयास किया है?

15.4 पाठ सार

श्रीलाल शुक्ल ने 'राग दरबारी' उपन्यास आज भी प्रासंगिक है। उन्होंने अपने आस-पास से पात्र उठाकर समाज को राह दिखाने का प्रयत्न किया है। यही उनके साहित्य की सबसे बड़ी प्रासंगिकता को सिद्ध करती है। 'राग दरबारी' को भारतीय समाज की बीमारी की शल्यक्रिया कहें तो कोई अत्युक्ति न होगी। भारतीय विकास की गाड़ी किसी बैलगाड़ी सी अटकी पड़ी है, जिसे लेखक ने उपन्यास के माध्यम से व्यक्त किया है। यह उपन्यास यदि समाज के अँधेरे को मिटाने में सक्षम नहीं है तो कम से कम टॉर्च जलाकर राह ढूँढ़ने में सहायता तो अवश्य कर रही है।

श्रीलाल शुक्ल ने ग्राम्य जीवन की जो झाँकी 'राग दरबारी' में प्रस्तुत की है, वह निश्चय ही अद्यतन पीढ़ी के उस भ्रम को तोड़ने में सफल हुई है, जो गाँव के लोगों की सादगी का ढिंढोरा पीटते रहते हैं। मैथिलीशरण गुप्त के ग्राम्य जीवन की काल्पनिक छवि को यथार्थ के धरातल पर 'राग दरबारी' में चित्रित किया गया है। गाँवों की छवि को राजनीति में महिमा मंडित किया जाता रहता है। हमारे गाँवों में वैद्य जी जैसे भ्रष्ट राजनीति के सूत्रधार उपस्थित है। वह पूरे गाँव के विकास को ग्रहण लगा देता है। पंडित राधेश्याम जैसे लोग अदालत और कानून को अपनी उँगलियों के इशारे पर नचाने वाले होते हैं। हमारे देश की शिक्षा व्यवस्था की बदहाली को यह उपन्यास बड़ी जीवंतता के साथ प्रस्तुत करता है। भारत के गाँव का विकास यदि सात दशक बीतने के बाद भी नहीं हुआ है, तो कारण शिवपालगंज जैसे गाँव की खेती नशेड़ियों के हाथ में होना है।

उपन्यास में जब भू-वैज्ञानिक गाँव के लोगों को कृषि के नए तकनीक के बारे में बताने आते हैं, तो नशेड़ियों के द्वारा मूर्ख बना कर उन्हें गाँव से वापस भेज दिया जाता है। अन्नदाता के स्थान को अफीमची व्यक्तियों द्वारा घेर लिया जाता है, जो सरकारी विज्ञापन के 'अधिक अन्न उपजाओ' की कलई भी खोलता है। 'राग दरबारी' के माध्यम से ही हमें पता चलता है कि शिक्षा भी भारतीयों की आँखे खोलने में क्यों असमर्थ है। जब शिक्षण संस्थानों में इतिहास विषय को पढ़ाने वाले मास्टर खन्ना से अंग्रेजी पढ़ाने का काम लिया जाता है, शिक्षक को पढ़ाने से अधिक

अपने आर्थिक स्रोत बढ़ाने की चिंता रहती है, तो ऐसे में शिक्षा की स्थिति क्या होगी! उपन्यास में यह दिखाया गया है कि भ्रष्टतंत्र के समक्ष समर्पण करने वाले ही व्यवस्था में टिक पाते हैं। आज भी हमारे व्यवस्था में यह सब यथावत चल रहा है। यही कारण है कि 'राग दरबारी' आज भी प्रासंगिक है।

भारत की विशिष्ट सांस्कृतिक संरचना के प्रति अधिकांश विश्व समुदाय उत्सुक रहता है। हजारों साल तक भारत पर अलग-अलग विदेशी आक्रमणकारियों ने राज किया। जब आधुनिक भारत को आजादी मिली तो भारतीय सजग जनता अपने सुनहरे स्वप्न पूरे होने की आशा में प्रसन्न थी। स्वतंत्रता के तीस वर्षों के बाद भी जब एक के बाद एक सपने टूटने लगे तो प्रबुद्ध जगत क्षुब्ध हो उठा। भारत के पूर्वांचल उत्तर प्रदेश के कस्बानुमा गाँव शिवपालगंज की कहानी के माध्यम से लेखक श्रीलाल शुक्ल ने सरकारी तंत्र की विफलता का मूल कारण आम जनता के भ्रष्ट आचरण को माना है। सरकार के प्रगति एवं विकास को डंके की चोट पर अंगूठा दिखाते हुए वैद्य जी जैसे खल-पात्र हर जगह उपस्थित हैं। भारत ग्राम्य संस्कृति प्रधान देश है, इसलिए गाँव का विकास ही भारत का विकास है। शिवपालगंज में पंचायत, कॉलेज प्रबंध समिति और कोआपरेटिव सोसाइटी आदि पर एकमात्र अधिपत्य वैद्यजी का है, जिसे वे शतरंज का खेल मानकर प्रजातंत्र और लोकतंत्र का उपहास उड़ाते हैं।

रंगनाथ अपने मामा के घर शिवपालगंज अपने स्वास्थ्य कारणों से आता है। सामाजिक विज्ञान विषय से एमए करने के बाद भी उसका सामाजिक एवं व्यावहारिक ज्ञान शून्य होता है। वह गाँव के नैतिक पतन, भ्रष्टाचार से घबराकर छह माह बाद वापस शहर की ओर पलायन कर जाता है। ग्रामीण संस्कृति प्रधान भारत के मानचित्र पर राजनीति के कोढ़ को भी लेखक ने विनोदपूर्ण शैली में प्रस्तुत किया है, जो इस कृति को आज भी प्रासंगिक बनाए हुए है। यही 'राग दरबारी' उपन्यास की सार्थकता है।

विसंगतियों को जीवन के हर मोड़ पर पाकर भी लेखक उसे दूर करने के यत्न में कदापि नहीं लगता है, अपितु उन विसंगतियों के साथ सहजतापूर्वक पात्रों को भी बहा कर पाठकों के विवेक पर सब छोड़ देते हैं। लेखक को पाठकों पर अत्यधिक विश्वास है, क्योंकि वे जानते हैं कि सुधी पाठक हर स्तर की विसंगति से दो-चार हाथ करते हुए देश को ऐसे सड़ांध से बाहर निकालने में एक न एक दिन अवश्य सफल होंगे। इस उपन्यास के माध्यम से श्रीलाल शुक्ल की लेखकीय परिपक्वता, साफगोई तथा व्यंग्य-विनोद के सामंजस्य का भी पता चलता है।

15.5 पाठ की उपलब्धियाँ

इस इकाई के अध्ययन से निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त हुए हैं -

1. 'राग दरबारी' का कथानक एक गाँव के व्यंग्यात्मक घटनाक्रम के सहारे आजादी के बाद के भारतीय समाज की कमजोरियों को उभारने में समर्थ है।

2. लेखक ने इस उपन्यास में यह दर्शाया है कि भारत के विकास की गाड़ी के पहिए भ्रष्टाचार की दलदल में धँसे हुए हैं।
3. शिक्षा जगत में व्याप्त तुच्छ राजनीति का पर्दाफाश करने में 'राग दरबारी' खूब सफल रहा है।
4. नई पीढ़ी की हताशा और पराजय बोध को प्रकट करने के कारण इस उपन्यास का कथानक घोर यथार्थवादी प्रतीत होता है।

15.6 शब्द संपदा

1. अन्यतम = सर्वश्रेष्ठ
2. उपहास = दिल्लगी
3. कलुषित = अपवित्र
4. कोढ़ = निकम्मा व्यक्ति
5. क्षुद्र = नीच, अधम
6. क्षुब्ध = परेशान
7. जर्जर = कमजोर
8. तटस्थ = उदासीनता
9. दक्ष = कुशल
10. विडंबनाओं = कष्टकर स्थितियाँ
11. मानद = मान प्रतिष्ठा देने वाला
12. व्यंग्य = ताना
13. षड्यंत्र = साजिश
14. हथकंडे = धूर्तता

15.7 परीक्षार्थ प्रश्न

खंड (अ)

दीर्घ श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 500 शब्दों में दीजिए।

1. 'राग दरबारी' का भारतीय परिवेश में क्या स्थान है? स्पष्ट कीजिए।
2. 'राग दरबारी' के कथानक को अपने शब्दों में लिखिए।
3. 'राग दरबारी' के पात्रों पर प्रकाश डालिए।
4. देश के विकास के अवरोधक तत्वों को उपन्यास के आधार पर बताइए।

खंड (ब)

लघु श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 200 शब्दों में दीजिए।

1. 'राग दरबारी' के वैद्य जी की चारित्रिक विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।
2. रंगनाथ के चारित्रिक विशेषताओं का परिचय दीजिए।
3. 'राग दरबारी' के माध्यम से श्रीलाल शुक्ल भारतीय समाज पर किस प्रकार व्यंग्य किया है? स्पष्ट कीजिए।
4. राग दरबारी' की प्रासंगिकता का उल्लेख कीजिए।
5. 'राग दरबारी में लेखक का नैतिक मूल्यों के प्रति जुड़ाव बखूबी चित्रित हुआ है।' इस उक्ति को निरूपित कीजिए।

खंड (स)

I. सही विकल्प चुनिए -

1. 'राग दरबारी' में किस स्थान का चित्रण हुआ है? ( )
   (अ) शिवपालजंग (आ) शिवपालगंज (इ) वैद्यपालगंज (ई) वैद्यपालजंग
2. 'राग दरबारी' का रचनाकाल क्या है? ( )
   (अ) 1968 (आ) 1963 (इ) 1947 (इ) 1965
3. 'राग दरबारी' उपन्यास में चित्रित दरबार किसका है? ( )
   (अ) रुप्पन (आ) वैद्य जी (इ) रंगनाथ (ई) बद्री

II. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए -

1. रंगनाथ में ..... ज्ञान से शून्य ।
2. शिवपालगंज एक ..... गाँव है।
3. 'राग दरबारी' में चित्रित देश की शिक्षा व्यवस्था में ..... का हस्तक्षेप है।

III. सुमेल कीजिए -

1. देश की हुकूमत	(अ) रास्ते में पड़ी कुतिया
2. शिक्षा पद्धति	(आ) समाज की दीमक
3. वैद्य जी	(इ) कठपुतली ग्रामप्रधान
4. बद्री	(ई) ट्रक का गियर
5. सनीचर	(उ) पहलवान

15.8 पठनीय पुस्तकें

1. राग दरबारी : श्रीलाल शुक्ल
2. राग दरबारी - आलोचना की फांस : सं. रेखा अवस्थी
3. हिंदी उपन्यास का इतिहास : गोपाल राय
4. राजनितिक समाजशास्त्र की रूपरेखा : सं. अशोक के घोष

इकाई : 16 'राग दरबारी' : एक व्यंग्यात्मक उपन्यास

रूपरेखा

16.1 प्रस्तावना
16.2 उद्देश्य
16.3 मूल पाठ : 'राग दरबारी' : एक व्यंग्यात्मक उपन्यास
16.3.1 व्यंग्य : अर्थ और परिभाषा
16.3.2 हिंदी उपन्यास में विशुद्ध व्यंग्य
16.3.2.1 'राग दरबारी' में प्रयुक्त राजनीतिक व्यंग्य
16.3.2.2 'राग दरबारी' में प्रयुक्त सामाजिक-धार्मिक व्यंग्य
16.3.2.3 'राग दरबारी' में प्रयुक्त शिक्षा जगत पर व्यंग्य
16.3.3 व्यंग्य में विकृति की पहचान और दृष्टि परिवर्तन
16.4 पाठ सार
16.5 पाठ की उपलब्धियाँ
16.6 शब्द संपदा
16.7 परीक्षार्थ प्रश्न
16.8 पठनीय पुस्तकें

16.1 प्रस्तावना

प्रिय छात्रो! मानव के सभी आविष्कारों में बोली और भाषा के आविष्कार को सर्वोत्तम स्थान दिया जाता है। हमारे आपस में विचार-विनिमय के कई रूप होते हैं। जब हम कोई बात श्रोता तक सीधे पहुँचाना चाहते हैं, तो अभिधात्मक शब्दों का प्रयोग करते हैं। वही अपनी बात श्रोता तक पहुँचाने के लिए किसी उदाहरण आदि का सहारा लेते हैं तो ऐसे समय में लक्षणा शब्द शक्ति का प्रयोग करते हैं। शब्दों का वह रूप जब हम श्रोता तक पहुँचाने के लिए चुनते हैं और वे श्रोता तक पहुँच कर विपरीत अर्थ को ध्वनित करने लगते हैं, तो ऐसे शब्द रूप को व्यंजना शब्द रूप कहते हैं। श्रीलाल शुक्ल ने 'राग दरबारी' उपन्यास के लिए ऐसे ही शब्दों का चयन किया है। हिंदी साहित्य में व्यंग्य को लेकर गंभीरतापूर्वक रचना करने वाले रचनाकारों में हरिशंकर परसाई के समानांतर श्रीलाल शुक्ल की कलम की धार है। इसी धार को प्रस्तुत पाठ में विवेचित किया जाएगा।

16.2 उद्देश्य

प्रिय छात्रो! इस इकाई के अध्ययन के बाद आप -

- 'व्यंग्य' के अर्थ तथा परिभाषा से अवगत हो सकेंगे।
- हिंदी उपन्यास में विशुद्ध व्यंग्य की परंपरा से परिचित हो सकेंगे।

- व्यंग्य के प्रति साहित्यिक दृष्टि परिवर्तन को समझ सकेंगे।
- 'राग दरबारी' में प्रयुक्त सामाजिक व्यंग्य की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- 'राग दरबारी' में प्रयुक्त राजनैतिक व्यंग्य की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- 'राग दरबारी' में प्रयुक्त शिक्षा जगत व्यंग्य की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

16.3 मूल पाठ : 'राग दरबारी' : एक व्यंग्यात्मक उपन्यास

हिंदी साहित्य में व्यंग्य विधा का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। 'राग दरबारी' श्रीलाल शुक्ल की सबसे अधिक प्रसिद्ध व्यंग्य रचना है। इस कृति के बहुआयामी धरातल को देखते हुए साहित्य अकादमी द्वारा इसे पुरस्कृत किया गया है। व्यंग्य को लेकर श्रीलाल शुक्ल ने भारतीय कस्बाई जीवन की मूल्यहीनता का पर्दाफाश किया है। इस उपन्यास की रचनात्मक यात्रा सन् 1964 से शुरू होकर सन् 1967 तक रही। सन् 1968 में इसका प्रकाशन हुआ तथा सन् 1969 में इस कृति पर श्रीलाल शुक्ल को साहित्य अकादमी पुरस्कार दिया गया। इसकी पाठकीय स्वीकार्यता को देखते हुए सन् 1986 में इसे धारावाहिक के रूप में दूरदर्शन पर प्रसारित किया जाने लगा, जिसको लाखों दर्शकों ने सराहा।

इस उपन्यास में श्रीलाल शुक्ल ने अपने युग को प्रस्तुत किया है। अनेक बलिदानों के बाद प्राप्त आज़ादी की ऐसी हालत देख कर उनका मन-मस्तिष्क व्यथित तथा क्षुब्ध हो उठता है। अपने मन-मस्तिष्क को संतुलित करने हेतु उन्होंने शिवपालगंज जैसे एक काल्पनिक कस्बे के माध्यम से ग्रामीण स्थिति को ईमानदारी से प्रस्तुत करने की कोशिश की है।

आज़ादी के आकाश को भ्रष्टाचार के बादल से ढकने वाले तंत्र को सबके सामने प्रस्तुत करना आवश्यक ही नहीं, अपरिहार्य भी था। जहाँ समस्त विश्व प्रगति की सीढ़ियाँ चढ़ता जा रहा था, वहीं भारतवासी शासन द्वारा मिलने वाली समस्त सुविधाओं को धता बता रहे थे। जिस स्वतंत्रता के सपनों के लिए स्वतंत्रता सेनानियों ने अपने प्राणों की भी परवाह न की, उसे इस तरह तार-तार करने में देशवासी लगे हुए थे। जिन ग्रामीणों को अनपढ़, निश्छल, भोलेपन, सीधेपन, सरलता के लिए जाना जाता था, उन्हें ही जब लेखक कानून, न्याय, शिक्षा आदि व्यवस्था को मटियामेट करते देखते हैं, तो इसे सबके सामने लाना उन्होंने अपना कर्तव्य समझा। भारतमाता ग्रामवासिनी कहकर साहित्यकारों ने अपनी स्याही सुखा डाली और जब उन्हीं ग्रामीणों को देश के विकास के लिए लागू होने वाले योजनाओं को तोड़ते देखते हैं, तो पाठक भी इससे इनकार नहीं कर पाते हैं कि भारत की ग्राम्य संस्कृति विकृत होती जा रही है।

श्रीलाल शुक्ल ने अपने उपन्यास को प्रस्तुत करने के लिए उत्तर प्रदेश के शिवपालगंज की पंचायत, वहाँ के जूनियर कॉलेज तथा कोआपरेटिव सोसाइटी को चुना है। यहाँ शिक्षा, न्याय, प्रशासन और राजनीति सभी एक से बढ़कर एक भ्रष्टाचार के गढ़ बने हुए हैं। प्रशासन के द्वारा गाँवों के विकास के लिए 'गरीबी हटाओ', 'साक्षरता अभियान' जैसे सभी योजनाओं को शिवपालगंज के ग्रामीण अपने निजी स्वार्थ के लिए विफल करने में लगे हुए हैं। गाँव के लोग आधुनिक विकास से कोसों दूर हैं। वैद्य जी जैसे पात्र की मुट्ठी में समस्त विकास की चाबी ऐसे

बंद है कि उसे कोई निकाल ही नहीं सकता। वैद्य जी ने कॉलेज प्रबंध समिति, कोआपरेटिव सोसाइटी, ग्राम पंचायत आदि के तार खूब कसकर पकड़े हुए हैं। उनकी राजनीतिक पैंतरेबाजी में धीरे-धीरे गाँव के सारे भ्रष्ट व्यक्ति चुम्बक की तरह खींचे चले जाते हैं। वैद्यजी स्थानीय कॉलेज प्रबंधक हैं, किंतु राजनीतिक षड्यंत्रों के सूत्रधार हैं। वैद्यजी का छोटा पुत्र रुप्पन दसवीं कक्षा में कई बार फेल होकर राजनीति के क्षेत्र में अपने पिता के समान सर्वोच्च शिखर पर पहुँच चुका है। हमारे राजनीतिक रसूख वालों के लिए शिक्षा की कोई अनिवार्यता नहीं है, इस बात को लेखक ने रुप्पन के द्वारा बताने की कोशिश की है। रुप्पन शिक्षा के क्षेत्र में विफल होकर भी छात्र नेता बनकर शिक्षितों को नचाता है। रुप्पन की ग्रामीण क्षेत्र में राजनीतिक समझदारी के लिए गाँव वाले उसका सम्मान करते हैं। उपन्यास में तटस्थ पात्र की भूमिका में वैद्य जी के बड़े सुपुत्र बद्री अग्रवाल दिखाई देते हैं। लेखक बद्री जैसे तटस्थ पात्र के द्वारा यह बताने की चेष्टा करते हैं कि आत्मकेंद्रित व्यक्ति से समाज के विकास अथवा पतन पर कोई असर नहीं पड़ता है।

श्रीलाल शुक्ल अपने व्यंग्य को सशक्त अभिव्यक्ति देने के लिए रंगनाथ जैसे शिक्षित पात्र को चुनते हैं। हमारी शैक्षिक व्यर्थता का दिग्दर्शन रंगनाथ को देखकर हो जाता है। रंगनाथ शिक्षित होकर भी गाँव वालों के मध्य निरीह, विवश, कुंठित तथा असहाय बन जाता है। रंगनाथ के चरित्र को देखकर पाठक आधुनिक शिक्षा व्यवस्था की व्यर्थता को समझ सकते हैं। रंगनाथ गाँव के सांस्कृतिक समारोह में ईश्वर की विशेष मूर्ति को सिपाही कहता है, तो गाँव वालों के समक्ष वह उपहास का पात्र बन जाता है। सामाजिक विज्ञान विषय से एमए करने के बाद भी वह सामाजिक, व्यावहारिक और सांस्कृतिक ज्ञान से एकदम शून्य ही है। रंगनाथ शिक्षित बेरोजगार है। उसे नौकरी नहीं मिलती। इसलिए शोध कार्य करने लग जाता है, जिसे वह स्वयं घास खोदने के बराबर मानता है। शिवपालगंज के कुत्सित भ्रष्टाचार से वह कुंठित होकर वापस शहर की ओर भाग जाता है।

श्रीलाल शुक्ल ने प्रिंसिपल के चरित्र के रूप में उस व्यक्ति को दर्शाया है जो कॉलेज के कुछ कर्मचारियों से मिलकर षड्यंत्र करता रहता है। शिक्षण संस्थानों के स्तर को गिराने में ऐसे ही लोग उत्तरदायी होते हैं। लेखक ने प्राचार्य के माध्यम से हमारी शैक्षिक विफलता को दर्शाया है।

लेखक ने ग्रामीण राजनीति में छोटा पहलवान जैसे पात्र को भी स्थान दिया है। ऐसे लोगों के माध्यम से ही तो राजनेता आम जनता को भय के शिकंजे में रख सकते हैं। राजनीति और गुंडागर्दी का गठबंधन ऐसे लोगों के कारण ही तो संभव होता है। वैद्य जी की सभी राजनीतिक बैठकों में उसकी अनिवार्य सहभागिता होती है। राजनीति में भय का पाखंड न हो तो जनता को भला कैसे अपने पक्ष में किया जा सकता है।

राजनीति बिना गुंडों के आगे बढ़े, ये संभव ही नहीं है। जोगनाथ नशेड़ी और गंजेड़ी है। श्रीलाल शुक्ल ने गाँव की कृषि व्यवस्था की डोर भी उसके हाथों देकर कथानक को यथार्थ के धरातल पर ला खड़ा किया है। ऐसे नशेड़ियों के सुझाव के आगे वैज्ञानिकों एवं कृषि विशेषज्ञों के सुझाव भी व्यर्थ प्रतीत होते हैं। राजनीति में चमचों का महत्वपूर्ण स्थान रहता है। इस उपन्यास

में यह भूमिका सनिचर निभाता है। इन दीमकों के कारण ही भारतीय लोकतंत्र आज तक सही गति नहीं पकड़ सकी है। मंगलदास उर्फ सनीचर वैद्य जी के कारण ग्रामप्रधान बन जाता है। किंतु वह वैद्य जी का पिछलग्गू ही है। परदे के पीछे से वैद्य जी ही चलाते हैं। डोर उनके हाथों में है। आज भी इस स्थिति को देखा जा सकता है। ग्रामप्रधान के रूप में जो उम्मीदवार चुने जाते हैं, वे अपने पद के अधिकार और कर्तव्यों से प्रायः अनभिज्ञ ही होते हैं। लेखक को एक ऐसा भी पात्र गढ़ना था, जो आम जनता की बेचारगी को व्यक्त कर सके। इसके लिए उन्होंने लंगड़ को गढ़ा।

इस प्रकार श्रीलाल शुक्ल ने स्वातंत्र्योत्तर भारत की निरीह जनता के जीवन की कडुवाहट को 'राग दरबारी' उपन्यास में व्यंग्य के माध्यम से प्रस्तुत किया है। जिस स्वराज के लिए इतने बलिदान हमारे स्वतंत्रता सेनानियों ने दिए, उसे इस तरह भ्रष्ट होते हुए देखकर भारतमाता भी कराह उठेगी। इस उपन्यास के प्रकाशन के इतने साल बीतने के बाद भी बिलकुल ताज़ा है, क्योंकि लेखक के समय की समस्या अभी तक भी सुलझी नहीं है। वह तो और भी विकराल रूप धारण करके सामने आ रही है। छात्रो! 'राग दरबारी' में चित्रित व्यंग्य पर विस्तार से चर्चा करने के पूर्व हिंदी उपन्यास साहित्य में व्यंग्य की परंपरा के बारे में भी संक्षिप्त रूप से जानने का प्रयास करेंगे। पहले व्यंग्य शब्द पर विचार कर लेते हैं।

बोध प्रश्न

- स्वातंत्र्योत्तर भारत में विकास की क्या स्थिति थी?
- लंगड़ को ग्राम प्रधान क्यों बनाया जाता है?
- रंगनाथ किस वर्ग का प्रतिनिधि है?
- 'राग दरबारी' आज भी प्रासंगिक क्यों है?

16.3.1 व्यंग्य : अर्थ और परिभाषा

व्यंग्य शब्द संस्कृत के 'अञ्ज' धातु में 'वि' उपसर्ग एवं 'ण्यत' प्रत्यय लगाने से बना है। इसका शाब्दिक अर्थ ताना कसना है, जबकि साहित्यिक क्षेत्र में इसका अर्थ विसंगतियों, विडंबनाओं पर साहित्यकार की विनोदपूर्ण प्रस्तुति से लगाया जाता है। अव्यवस्था पर सीधी चोट करने से जो असर नहीं होता वह व्यंग्यात्मक शैली से अवश्य होता है। सीधी शैली को अपनाने के बजाय साहित्यकार व्यंजना शैली को अधिक प्राथमिकता देते हैं। समाज की अव्यवस्थाओं को देखकर जब साहित्यकार का मन-मस्तिष्क व्यथित हो जाता है, तो वह इन सारी अव्यवस्थाओं पर प्रहार व्यंग्य के माध्यम से करता है। भारतीय और पाश्चात्य विद्वानों द्वारा प्रस्तुत कुछ परिभाषाओं को देखेंगे-

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने व्यंग्य को इस प्रकार से परिभाषित किया है - "व्यंग्य वह है, जहाँ अधरोष्ठों में हँस रहा हो और सुनने वाला तिलमिला उठा हो और फिर भी कहने वाले को जवाब देना अपने को और भी उपहासास्पद बनाना हो जाता है।"

हिंदी के प्रसिद्ध व्यंग्यकार हरिशंकर परसाई के शब्दों में - "व्यंग्य जीवन से साक्षात्कार करता है, जीवन की आलोचना करता है, विसंगतियों, मिथ्याचारों और पाखंडों का पर्दाफाश करता है।'

डॉ. प्रभाकर माचवे के शब्दों में - "मेरे लिए व्यंग्य कोई पोज या लटका का बौद्धिक व्यायाम नहीं, पर एक आवश्यक अस्त्र है। सफाई करने के लिए किसी को तो हाथ गंदे करने ही होंगे, किसी-न-किसी की तो बुराई अपने सर लेनी ही होगी।"

श्रीलाल शुक्ल कहते हैं - "मैंने व्यंग्य को आधुनिक जीवन और आधुनिक लेखन के एक अभिन्न अस्त्र और एक अनिवार्य शर्त के रूप में पाया है।"

इनसाइक्लोपीडिया ऑफ ब्रिटानिका में व्यंग्य की परिभाषा इन शब्दों में दी गई है - 'व्यंग्य अपने साहित्यिक रूप में, हास्यास्पद और बेढंगी स्थितियों से उत्पन्न विनोद और अरुचि को सही-सही अभिव्यक्ति देने वाला साहित्य रूप है, बशर्ते कि उसमें हास्य स्पष्ट रूप से दृश्यमान हो और वह कथन साहित्यिकता से परिपूर्ण हो।'

ऑक्ससफोर्ड इंग्लिश डिक्शनरी में व्यंग्य की परिभाषा इस रूप में है - 'व्यंग्य वह रचना है, जिसमें प्रचलित दोषों अथवा मूर्खताओं का कभी-कभी कुछ अतिरंजना के साथ मजाक उड़ाया जाता है।'

पाश्चात्य विद्वान मेरिडिथ के शब्दों में - 'व्यंग्यकार नैतिकता का ठेकेदार होता है। बहुधा वह समाज की गंदगी की सफाई करने वाला होता है, उसका कार्य सामाजिक विकृतियों की गंदगी को साफ करना होता है।'

स्विफ्ट के शब्दों में - 'व्यंग्य एक ऐसा दर्पण है जिसमें झाँकने में अपनी छाया के अलावा और सभी का प्रतिबिंब दिखाई पड़ता है।'

बोध प्रश्न

- व्यंग्य किसे कहते हैं?
- व्यंग्य को दर्पण किसने कहा है?
- व्यंग्यकार को नैतिकता का ठेकेदार किसने कहा है?

16.3.2 हिंदी उपन्यास में विशुद्ध व्यंग्य

हिंदी उपन्यासों में समाज में व्याप्त विसंगतियों एवं विद्रूपताओं को लेकर कई विशुद्ध व्यंग्य उपन्यास रचे गए। स्वातंत्र्योत्तर भारत के साहित्यकारों ने सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक तथा आर्थिक आदि क्षेत्रों की अव्यवस्था को उजागर करने के लिए व्यंग्य विधा को अपनाया। कहानी, काव्य, नाटक , निबंध तथा उपन्यास आदि सभी क्षेत्रों में व्यंग्य का प्रयोग किया जा रहा था। स्वतंत्रता के बाद राजनीतिक, प्रशासनिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों के पतन को देखकर सहृदय साहित्यकार विचलित होने लगे। भ्रष्टाचार को लालफीताशाही में

लिपटा हुआ देख कर वह असंतोष एवं आक्रोश से भरने लगा। अपने आक्रोश व्यक्त करने के लिए व्यंग्य का सहारा लेने लगा।

छात्रो! उपन्यासों में व्यंग्य दो तरह से सामने आया है। एक वे उपन्यास जो व्यंग्य को केंद्र में रखकर लिखे गए और दूसरे वे जिनमें व्यंग्य की कुछ झलकियाँ ही देखने को मिलती हैं। स्वतंत्रता पूर्व के उपन्यासों में व्यंग्य का गौण रूप चित्रित हुआ है, जबकि स्वातंत्र्योत्तर उपन्यासों में व्यंग्य का भरपूर प्रयोग देखा जा सकता है। 'हुजूर' (रांगेय राघव, 1952), 'सनसनाते सपने' (राधाकृष्ण, 1954), 'कढ़ी में कोयला' (पांडेय बेचन शर्मा उग्र), 'रानी नागफनी की कहानी' (1961), 'तट की खोज' (हरिशंकर परसाई), में 'कथा सूर्य की नई यात्रा' (हिमांशु श्रीवास्तव, 1962), 'चाँदी का जूता' (विन्ध्याचल प्रसाद गुप्त), 'राग दरबारी' (श्रीलाल शुक्ल, 1968), 'एक उलूक कथा' (डॉ. श्यामसुंदर घोष, 1970), 'एक चूहे की मौत' (बदीउज्जमा, 1971), 'जंगलतंत्रम' (डॉ. श्रवणकुमार गोस्वामी), 'एक मंत्री स्वर्गलोक में' (डॉ. शंकर पुन्ताम्बेकर), 'काली किताब' (आबिद सुरति), 'आश्रितों का विद्रोह' (डॉ. नरेंद्र कोहली, 1973), 'बिके हुए लोग' (डॉ. सरोजिनी प्रीतम), 'नरकयात्रा', 'बारामासी', 'मरीचिका', 'अलग', 'हम न मरब' (डॉ. ज्ञान चतुर्वेदी) आदि उपन्यास विशुद्ध व्यंग्य के लिए प्रसिद्ध हैं।

बोध प्रश्न

- कुछ व्यंग्य उपन्यासों के नाम लिखिए।

श्रीलाल शुक्ल द्वारा लिखा गया उपन्यास 'राग दरबारी' पूरी तरह व्यंग्यात्मक है। इसे पाठक कहीं से भी पढ़ कर छोड़ें, उन्हें उपन्यास-रस के साथ ही व्यंग्य-रस भी प्राप्त होगा। इस उपन्यास में कोई कथा-क्रम नहीं है। आगे क्या होगा जैसी उत्सुकता इस उपन्यास में नहीं है। छोटी-छोटी कथाओं के माध्यम से लेखक ने कथा को आगे बढ़ाया। रंगनाथ सूत्रधार की भूमिका में उपन्यास को गति प्रदान करता है। वह उच्च शिक्षित व्यक्ति होने के बावजूद व्यवहारिक स्तर पर शून्य है। वह एमए पूरा करता है। नौकरी न मिलने पर शोध करने विश्वविद्यालय में दाखिल होता है। परंतु न ही शिक्षा के महत्व को समझता है और न ही ग्रंथालय के महत्व को। वह उसे 'घास खोदना' कहता है। अंत में रंगनाथ पलायन में ही अपनी भलाई समझता है।

शिवपालगंज में घटने वाली घटनाएँ उपन्यास को घटना प्रधान उपन्यास की सीमारेखा में रख देती हैं। इस उपन्यास में पात्र घटनाओं के आगे-पीछे घूमते हैं। समस्त कथानक वैद्य जी, प्रिंसिपल, खन्ना मास्टर आदि की गुटबाजियों के इर्द-गिर्द घूमता रहता है। छंगामल इंटर कॉलेज के प्रिंसिपल को विश्वविद्यालय के वाईस चांसलर से अधिक महत्वपूर्ण पद प्रिंसिपल का लगता था, क्योंकि अकेले वैद्यजी का तलवा चाटने के बाद वे सभी पर रौब जमा सकते थे। वाईस चांसलर को विश्वविद्यालय के छात्र भी गालियाँ देकर चले जाते हैं, तो उनके खिलाफ वे कुछ भी नहीं कर पाते। श्रीलाल शुक्ल ने यहाँ इस बात को स्पष्ट करने का प्रयास किया है कि शिक्षा के क्षेत्र में भी प्रतिभा के स्थान पर चापलूसी का राज्य चल रहा है।

उपन्यास में वैद्यजी अपने सेवक मंगल उर्फ सनीचर ग्रामप्रधान बनाता है। स्वयं पीछे से डोर को नियंत्रित करता है। अपनी स्वार्थपूर्ति के लिए ही वैद्य जी सनीचर को ग्रामप्रधान बनाते हैं। वैद्य जी जैसे लोग थे, हैं और रहेंगे। श्रीलाल शुक्ल ने लोकतंत्र का मजाक बनाने वाले वैद्य जी जैसे लोगों के चेहरा पर से मुखौटा हटाने का प्रयास किया है। वैद्य जी के संबंध में उनकी यह टिप्पणी उल्लेखनीय है - "हर बड़े राजनीतिज्ञ की तरह वे राजनीति से नफरत करते थे और राजनीतिज्ञों का मज़ाक उड़ाते थे। गांधी की तरह अपनी राजनीतिक पार्टी में उन्होंने कोई पद नहीं लिया था क्योंकि वे वहाँ नए खून को प्रोत्साहित करना चाहते थे।"

बोध प्रश्न

- रंगनाथ शोध को 'घास खोदना' क्यों कहता है?
- वैद्य जी सनीचर को ग्रामप्रधान क्यों बनाते हैं?

भ्रष्ट व्यवस्था में खन्ना मास्टर को इस्तीफा देना पड़ता है तो रंगनाथ को पलायन करना पड़ता है। लंगड़ को लेखक ने नायकत्व का आवरण चढ़ा कर प्रस्तुत करने की कोशिश की है, किंतु व्यवस्था के कुचक्र के समक्ष वह भी घुटने टेक ही देता है। लंगड़ जब अपने ही बेटों पर दीवानी का मुकदमा करता है, तो लेखक देश की न्यायिक प्रक्रिया के विलंब और घूसखोरी पर व्यंग्य करते हैं।

लेखक मानते हैं कि जहाँ शहर में समस्याओं का निराकरण संभव है, वहीं गाँवों में समाधान के स्थान पर एक और समस्या उठ खड़ी होती है। वे गाँव की समस्याओं को उनकी नियति बनाकर प्रस्तुत करते हैं। परीक्षा में जो मास्टर विद्यार्थियों को नकल नहीं करने देते थे, उन्हें परीक्षा के बाद परीक्षार्थी पीट देते थे। नकल करना तो उनका जन्मसिद्ध अधिकार है।

'राग दरबारी' में स्वतंत्रता के बाद के भारत में फैली मूल्यहीन स्थितियों, अनैतिक आचरण, अकर्मण्यता तथा बेईमानी पर कटाक्ष किया गया है जो देश के विकास की गति को रोक रहे हैं। लेखक ने साहित्यिक मर्यादा के लिए भी भाषा पर सभ्यता का मुलम्मा नहीं चढ़ाया है। बल्कि यथातथ्य रूप में भाषिक प्रयोग करते हुए अपने व्यंग्य को तीव्र बनाया है। लेखक का अतियथार्थवादी दृष्टिकोण कई बार पाठक को चुभता भी है। लेखक भारतीय मूल्यों के प्रति आस्थावान है, इसलिए ग्रामीणों की अनैतिक तथा भ्रष्टाचारी स्वरूप को देख कर विक्षुब्ध हो उठते हैं। लेखक का व्यंग्यात्मक सृजन कई बार वीभत्सता की सीमा में पहुँच जाता है।

बोध प्रश्न

- श्रीलाल शुक्ल ने 'राग दरबारी' में किन स्थितियों पर कटाक्ष किया है?
- अव्यवस्था के विरुद्ध लेखक ने कौन सी राह चुनी है?
- लेखक ने भाषा पर किसका मुलम्मा नहीं चढ़ाया?

16.3.2.1 'राग दरबारी' में प्रयुक्त राजनीतिक व्यंग्य

वैद्यजी की राजनीतिक संस्कृति से शिवपालगंज का राजनीतिक परिवेश, वहाँ का पंचायत, कॉलेज प्रबंध समिति, कोआपरेटिव सोसाइटी पूरी तरह से आप्लावित है। सत्ता की राजनीति का विदूषक सनीचर ग्रामसभा का प्रधान बन जाता है। चुनावी दंगल में गाँव वालों की सुरक्षा करने वाली पुलिस निर्दोष ग्रामीणों को पकड़ती है, जिसमें गरीब लंगड़ के न्याय की पुकार हास्यास्पद बन जाती है। हमारे देश में हर स्तर पर व्याप्त अव्यवस्था लोकतंत्र को मजाक बना देता है। लेखक स्वयं दरबारी अर्थात प्रशासनिक अधिकारी होते हुए भी दरबार की सारी कमियों को उजागर करते हैं। श्रीलाल शुक्ल ने 'राग दरबारी' नामकरण के द्वारा अपने मंतव्य को स्पष्ट कर दिया है। दरबारी विसंगति पर मार्मिक कटाक्ष किया गया है।

डॉ. गोपाल राय के अनुसार "वैद्य जी के रूप में उपन्यासकार ने आजादी के बाद कुकुरमुत्ते की तरह पनपे उन तथाकथित नेताओं का अंकन किया है जो अत्यंत चालक, स्वार्थी, कमीने, गाँवों के विकास के सबसे बड़े शत्रु और नैतिक और सांस्कृतिक मूल्यों के भक्षक थे। इनकी कुंडली में गाँव का जीवन पूरी जकड़ा हुआ था।" (हिंदी उपन्यास का इतिहास, पृ.260)

बोध प्रश्न

- वैद्य जी के रूप में श्रीलाल शुक्ल ने किसका अंकन किया है?

16.3.2.2 'राग दरबारी' में प्रयुक्त सामाजिक-धार्मिक व्यंग्य

देश की स्वतंत्रता के बाद भारत के ग्रामीण संस्कृति प्रधान वातावरण में विकास दूर की कौड़ी सिद्ध हो रही थी। गांधी जी के स्वराज की संकल्पना गाँवों से कोसों दूर था। शिवपालगंज जैसे कस्बेनुमा गाँव में प्रगति, विकास का कोई नाम न था। रंगनाथ अपने मामा के गाँव शिवपालगंज में स्वास्थ लाभ के लिए आता है, लेकिन उसे गाँव का हर व्यक्ति मानसिक रूप से अस्वस्थ दिखाई देता है। ग्रामीण जीवन की मूल्यहीनता को लेखक ने यथारूप में चित्रित किया है। इस उपन्यास में छोटे पहलवान और उनके पिता के बीच संबंधों के माध्यम से बदलते जीवन मूल्यों को दर्शाया गया है।

बोध प्रश्न

- स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद गांधी जी के स्वराज्य की क्या स्थिति थी?

16.3.2.3 'राग दरबारी' में प्रयुक्त शिक्षा जगत पर व्यंग्य

भारतीय शिक्षा प्रणाली की कमियों पर श्रीलाल शुक्ल ने जबरदस्त व्यंग्य किया है। भारतीय शिक्षा प्रणाली में अंग्रेजी को अत्यधिक महत्व दिया जाता है। इस विषय को लेकर भी लेखक ने व्यंग्य किया है - 'हृदय परिवर्तन के लिए रौब की जरूरत होती है और रौब के लिए अंग्रेजी की।' शिवपालगंज गाँव के कॉलेज में शिक्षा को छोड़कर सारे कार्य होते हैं। विद्यार्थी शिक्षा से अधिक गुटबाजी, राजनीति में भागीदारी लेते हैं। रंगनाथ शहरी परिवेश में शिक्षा प्राप्त व्यक्ति है। वह शिक्षित बेरोजगार है। नौकरी न मिलने के कारण शोधकार्य में लग जाता है।

विश्वविद्यालयों में शोधकार्य की स्थिति की दयनीयता को देखते हुए लेखक टिप्पणी करते हैं - 'कहा तो घास खोद रहा हूँ, अंग्रेजी में इसे ही रिसर्च कहते हैं।'

शैक्षिक क्षेत्र में जो ईमानदारी के साथ आगे बढ़ते हुए अपना कार्य करता है, उसे खन्ना की तरह षड्यंत्रों का शिकार होना पड़ता है। लेखक ने शिक्षा जगत में व्याप्त भ्रष्टाचार के विविध रंगों पर अपनी करारी दृष्टि डाली है, क्योंकि छंगामल इंटर कॉलेज में प्राचार्य से लेकर दूसरे शिक्षक तक अयोग्य तथा भ्रष्टाचारी हैं। खन्ना मास्टर जैसे योग्य और ईमानदार शिक्षकों के लिए शिक्षा व्यवस्था में कोई स्थान नहीं मिलता है, यहाँ तक कि ऐसे शिक्षकों से गुंडागर्दी के बल पर वैद्य जी जैसे शातिर व्यक्ति इस्तीफा दिलवाने में समर्थ हो जाते हैं।

बोध प्रश्न

- रौब के लिए क्या आवश्यक है?
- कॉलेज में षड्यंत्रों का शिकार कौन होता है?

16.3.3 व्यंग्य में विकृति की पहचान और दृष्टि परिवर्तन

व्यंग्य में वैयक्तिकता का सर्वथा अभाव होता है। व्यंग्यकार भी एक सामाजिक प्राणी होता है। इसीलिए उसका सामाजिक सरोकार ही व्यंग्य का विषय होता है। व्यंग्यकार राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक तथा साहित्यिक आदि सभी क्षेत्रों में व्याप्त विसंगतियों तथा विकृतियों को सामने रखकर उसे दूर करने का प्रयत्न करता है। व्यंग्य को निहायत निर्वैयक्तिक रूप में ही प्रस्तुत करना चाहिए। व्यंग्य सकारात्मक समाधान की इच्छा से लिखा जाता है। व्यंग्यकार की बौद्धिक प्रखरता व्यंग्य को मात्र हास्य रचना से अधिक गंभीर साहित्य बनाता है। इसके माध्यम से पाठक की चेतना झंकृत होती है। एक श्रेष्ठ व्यंग्य में संवेदनशीलता का प्राचुर्य होता है। समाज में व्याप्त असंगत कार्यों के विरुद्ध इसे अस्त्र की तरह व्यंग्यकार प्रयुक्त करता है। व्यंग्य एक मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया होती है। इससे मानव की आत्मा जागृत होती है। व्यंग्यकार नैतिकता की ओर समाज को बढ़ाना चाहता है। यदि हम व्यंग्य को समाज के रोगों की शल्यक्रिया कहें तो गलत न होगा। इस प्रकार व्यंग्य अनुभूति की गहन पीड़ा से उत्पन्न होता है। व्यंग्यकार जनसामान्य से जितना अधिक जुड़ता है, उसके व्यंग्य का पैनापन उतना ही अधिक होता है।

'राग दरबारी' लंगड़ की तरफ खड़ा होकर भी उसे न्याय नहीं दिला पाता, बल्कि सबको झिंझोड़कर जागरूक करता है। व्यंग्यकार की बेचैनी व्यंग्य को सटीक बनाती है। 'राग दरबारी' में समाज और व्यवस्था पर व्यंग्य का यही रूप दृष्टिगत हुआ है।

बोध प्रश्न

- अनुभूति की गहन पीड़ा से क्या उत्पन्न होता है?
- व्यंग्य को गंभीर साहित्य कौन बनाता है?

'राग दरबारी' की विशिष्टता के संबंध में रामदरश मिश्र का यह कथन उल्लेखनीय है -

"राग दरबारी एक विशिष्ट उपन्यास है। इसकी विशिष्टता दो अर्थों में है - (1) वह आज तक के उपन्यासों की परंपरा से आगे बढ़कर बिल्कुल अ-रूमानी दृष्टिकोण से आज के भारतीय जीवन की सारी विसंगतियों का उद्घाटन करता है। (2) वह आद्योपांत व्यंग्यात्मक शैली का प्रयोग करता है। इतना ही नहीं इसमें व्यंग्य और सपाट बयानी का अद्‌भुत साहचर्य दिखाई पड़ता है। इसकी सपाट बयानी में भी एक व्यंग्य है और व्यंग्य में भी सपाट बयानी है।" (हिंदी उपन्यास : एक अंतर्यात्रा, पृ.243)।

श्रीलाल शुक्ल ने इस उपन्यास में शिवपालगंज के माध्यम से गाँव में उभरे हुए जीवन के नए रूप को उजागर किया है। इसके लिए उन्होंने वहाँ के कॉलेज को केंद्र में रखा है। कॉलेज की समस्या से अन्य सभी समस्याओं का ताना-बाना बड़ी कुशलता से बन दिया है। इन सभी समस्याओं पर राजनीति की काली छाया मंडराती है। भारतीय राजनीति के कारण गाँव की जिंदगी टूट कर अस्त-व्यस्त हो चुका है। इसका चित्रण 'राग दरबारी' में देखा जा सकता है। 'राग दरबारी' में निहित व्यंग्य-विसंगति के संबंध में रामदरश कहते हैं कि -

"वास्तव में व्यंग्य की स्थिति दुहरी होती है। एक तो वह विसंगतिमयी स्थिति से पैदा होता है, दूसरे उसमें वचन वक्रता होती है। स्थिति की विसंगति के बिना वचन वक्रता से भी व्यंग्य पैदा किया जा सकता है किंतु ऐसा व्यंग्य हमें यथार्थ के निकट न ले जाकर अपनी वक्रता के सुख में उलझाता है जो बहुत हल्का होता है। 'राग दरबारी' में व्यंग्य की दोनों स्थितियाँ हैं। लेखक ने आज के गाँव की अनेकमुखी विसंगतियों को उद्घाटित किया है, उसकी व्यंग्यात्मक शैली विसंगतियों की तीव्रता का अहसास कराने में सहायक होती है किंतु बहुत जगहों पर स्थितियों के अति सामान्य होने पर वचन वक्रता स्वयं उपहासास्पद बन जाती है और लगता है जैसे लेखक ने कथ्य की माँग के वशीभूत होकर अनिवार्य भाव से व्यंग्य नहीं किया है बल्कि खामखाह के लिए उसे व्यंग्य करना था। जैसे देहात में कुछ चिबिल्ले चिबिल्लेपन से बात करने की अपनी शैली विकसित कर लेते हैं उसी प्रकार लेखक को हर बात व्यंग्य में कहनी है।" (हिंदी उपन्यास : एक अंतर्यात्रा, पृ.245)

श्रीलाल शुक्ल अनेक बार उपमाओं और रूपकों के माध्यम से व्यंग्य प्रस्तुत किया है। उपमाएँ प्रस्तुत को अप्रस्तुत से एक साथ जोड़ती जाती हैं। अतः इनकी सहायता से लेखक ने कई-कई विसंगतियों को एक साथ गूँथते चले गए। अनेक प्रभावों को व्यंजित करने के लिए सामाजिक जीवन से उपमाओं को लिया गया था। 'राग दरबारी' शीर्षक भी प्रतीकात्मक है। यह दरबारी राग केवल वैद्य जी का मात्र न रहकर संपूर्ण भारतीय लोकतंत्र के स्वार्थपरक सत्ताधीशों का राग बन जाता है।

छात्रो! ध्यान देने की बात है कि राग दरबारी संगीत का एक राग है जो बहुत ही धीमी गति चलता है। लेकिन इस उपन्यास का संगीत से कोई नाता नहीं है। ऐसे में आप सोच सकते हैं

कि श्रीलाल शुक्ल ने इसका नामकरण ऐसा क्यों किया है। यह भी एक तरह का व्यंग्य ही है। वास्तव में वे यह संदेश देना चाहते हैं कि अपने स्वार्थ को महत्व देने वाला व्यक्ति सत्ता के साथ जुड़े रहने के लिए एक खास तरह का तेवर अपनाता है। इस बात को उपन्यास के आरंभ में ही इस प्रकार व्यक्त किया गया है - "वहीं एक ट्रक खड़ा था। उसे देखते ही यकीन हो जाता था, इसका जन्म केवल सड़कों के साथ बलात्कार करने के लिए हुआ है।" यहाँ ट्रक लोकतंत्र के अनेक पहलुओं को उद्घाटित करने वाला बिंब है। हर प्रकार की सत्ता और व्यवस्था साधारण मनुष्य के शोषण पर आधारित है। इस उपन्यास में संपूर्ण सत्ता वैद्य जी के हाथों में है। उन्हीं का दरबार है और उन्हीं का राग है।

बोध प्रश्न

- श्रीलाल शुक्ल ने सामाजिक जीवन से ली गई उपमाओं का प्रयोग क्यों किया है?

इसमें संदेह नहीं कि 'राग दरबारी' में 'व्यंग्य' इतना अधिक मुखर है कि वह 'उपन्यास' पर हावी हो गया है। यही कारण है कि डॉ। गोपाल राय ने 'हिंदी उपन्यास का इतिहास' में कहा है कि "उपन्यास के रूप में 'राग दरबारी' एक असफल कृति है।" उनके ऐसा मानने का कारण यह है कि वे उपन्यास और व्यंग्य को परस्पर विरोधी मानते हैं। लेकिन यह दृष्टिकोण अतिरंजित प्रतीत होता है। व्यंग्य की प्रधानता के कारण 'राग दरबारी' में लेखक समाज-समीक्षक के रूप में अवश्य उपस्थित दिखाई देता है। लेकिन इससे उपन्यास से कथा-रस में कोई कमी नहीं आई है। निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि 'राग दरबारी' एक सफल उपन्यास तो है ही, हिंदी में 'व्यंग्य उपन्यास' की परंपरा का सूत्रपात करने वाला अभिनव प्रयोग भी है।

बोध प्रश्न

- 'राग दरबारी' में श्रीलाल शुक्ल समाज-समीक्षक के रूप में कैसे उपस्थित होते हैं?

16.4 पाठ सार

'राग दरबारी' श्रीलाल शुक्ल की प्रसिद्ध व्यंग्य रचना है। इस कृति के विविधमुखी धरातल को देखते हुए इसे साहित्य अकादमी द्वारा पुरस्कृत किया गया है। स्वातंत्र्योत्तर गद्य विधाओं में व्यंग्य का अत्यधिक विकास हुआ। व्यंग्य को लेकर श्रीलाल शुक्ल ने भारतीय कस्बाई जीवन की मूल्यहीनता को दिखाया है। उन्होंने शिवपालगंज कस्बे के माध्यम से ग्रामीण स्थिति को ईमानदारी से प्रस्तुत करने की कोशिश की है। जब कानून, न्याय, शिक्षा आदि क्षेत्रों में भ्रष्टाचार का राज्य हो, तो ऐसी व्यवस्था पर चोट करना तथा जनता को जागरूक बनाना आवश्यक हो जाता है। लेखक ने शिवपालगंज की पंचायत, गाँव के जूनियर कॉलेज तथा कोआपरेटिव सोसाइटी के माध्यम से शिक्षा, न्याय, प्रशासन और राजनीति के क्षेत्रों में व्याप्त भ्रष्टाचार को दर्शाया है। ये सभी क्षेत्र एक से बढ़ कर एक भ्रष्टाचार के गढ़ बन चुके हैं।

प्रशासन के द्वारा गाँवों के विकास के लिए 'गरीबी हटाओ', 'साक्षरता अभियान' जैसे सभी योजनाओं को शिवपालगंज के वैद्य जी अपने निजी स्वार्थ के लिए विफल करने में लगे हुए

हैं। गाँव के लोग आधुनिक विकास से कोसों दूर हैं। वैद्य जी अकेले कॉलेज प्रबंध समिति, कोआपरेटिव सोसाइटी, ग्राम पंचायत आदि सब जगह की व्यवस्था को ध्वस्त करने में पूर्ण सक्षम हैं। उनकी राजनीतिक पैंतरेबाजी में धीरे-धीरे गाँव के सारे भ्रष्ट व्यक्ति चुम्बक की तरह खींचे चले जाते हैं। वैद्य जी स्थानीय कॉलेज प्रबंधक हैं, किंतु राजनीतिक षड्यंत्रों के सूत्रधार हैं। शिवपालगंज गाँव के कॉलेज में शिक्षा व्यवस्था को चकनाचूर होते दिखाया गया है। विद्यार्थी शिक्षा से अधिक गुटबाजी और राजनीति में भागीदारी लेते हैं। शिवपालगंज जैसे कस्बेनुमा गाँव में प्रगति तथा विकास का कोई नामोनिशान नहीं था। ग्रामीण जीवन की मूल्यहीनता को लेखक ने यथारूप में चित्रित किया है। इसलिए यह उपन्यास स्वार्थ और असामाजिक कृत्यों का जीवंत दस्तावेज बन गया। हमारे देश में हर स्तर पर व्याप्त अव्यवस्था, लोकतंत्र को मजाक बना देता है। लेखक स्वयं दरबारी अर्थात प्रशासनिक अधिकारी होते हुए भी दरबार की सारी कमियों को उजागर करते हैं। शासन में कार्य करते हुए शासनतंत्र की विसंगतियों को अनावृत करने के लिए अत्यधिक साहस की आवश्यकता होती है। श्रीलाल शुक्ल में यह साहस इसलिए आ पाया क्योंकि उन्होंने स्वयं इन परिस्थितियों में रहकर अव्यवस्था का मंथन किया था। वे जानते थे कि यदि विसंगति एक स्थान पर हो, तो उसे सुधारा जा सकता है; लेकिन कदम-कदम पर यही विसंगति मिले, तो उसमें या तो वैद्य जी बन सकेंगे या फिर रंगनाथ बन कर भागना ही निदान माना जाएगा। लेखक कोई निर्णय नहीं सुनाते। पाठकों के हाथ छोड़कर स्वयं निश्चिंत हो जाते हैं।

16.5 पाठ की उपलब्धियाँ

इस इकाई के अध्ययन से निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त हुए हैं -

1. 'राग दरबारी' अपने आप में हिंदी उपन्यास के नए मोड का सूचक है। यह मोड उपन्यास में व्यंग्य-तत्व के समावेश के स्थान पर पूरी तरह व्यंग्यात्मक उपन्यास की रचना के कारण उपस्थित हुआ।
2. 'राग दरबारी' इस अर्थ में भी पारंपरिक उपन्यासों से आगे है कि यह बिल्कुल अ-रूमानी दृष्टि से समकालीन भारत की सारी विसंगतियों का पर्दाफाश करता है।
3. 'राग दरबारी' में व्यंग्य और सपाट बयानी के बीच एक अद्‌भुत संतुलन है। इसे यों भी कहा जा सकता है कि इसकी सपाट बयानी में भी व्यंग्य है और व्यंग्य में भी सपाट बयानी है।
4. स्थिति की विसंगति और वचन-वक्रता दोनों ही स्तरों पर व्यंग्य का समावेश 'राग दरबारी' को गहरी समाज समीक्षा का रूप देता है।

16.6 शब्द संपदा

1. अनभिज्ञ = अनजान
2. अनावृत = उद्घाटन
3. अपरिहार्य = अनिवार्य
4. अवलोकन = ध्यानपूर्वक देखना

5. उपहास = मज़ाक
6. कुंठित = हताश
7. कुत्सित = निन्दित
8. क्षुब्ध = व्याकुल
9. झंकृत = धीरे-धीरे होने वाली आवाज़
10. तटस्थ = जो किसी के पक्ष में न हो
11. धज्जियाँ = कटु आलोचना
12. धता = जो दूर हो गया हो
13. निरीह = बेचारा
14. पिछलग्गू = अनुगामी
15. प्रतिकार = विरोध
16. विदूषक = मसखरा
17. विनिमय = अदल-बदल
18. षड्यंत्र = साज़िश
19. सराबोर = भीगा हुआ

6.7 परीक्षार्थ प्रश्न

खंड (अ)

(अ) दीर्घ श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर 500 शब्दों में लिखिए।

1. 'राग दरबारी' उपन्यास में प्रयुक्त व्यंग्य पर प्रकाश डालिए।
2. व्यंग्य का अर्थ बताते हुए परिभाषित कीजिए।
3. हिंदी उपन्यासों में व्यंग्य का क्या स्थान है?
4. व्यंग्य में विकृति की पहचान किस प्रकार किया जा सकता है?

खंड (ब)

(आ) लघु श्रेणी के प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर 200 शब्दों में लिखिए।

1. भारतीय ग्रामीण परिवेश में विकास की स्थिति को बताइए।
2. 'राग दरबारी' में प्रयुक्त शैक्षिक क्षेत्र के व्यंग्य को निरूपित कीजिए।
3. श्रीलाल शुक्ल की व्यंग्य दृष्टि का चित्रण कीजिए।
4. हास्य और व्यंग्य को किस प्रकार अलग-अलग बताया जा सकता है?

खंड (स)

I. सही विकल्प चुनिए -

1. 'राग दरबारी' में श्रीलाल शुक्ल किस प्रकार उपस्थित होते हैं? ( )
   (अ) समाज-सुधारक (आ) समाज-समीक्षक (इ) राजनीतिज्ञ (ई) आलोचक
2. 'राग दरबारी' में किसकी मुट्ठी में समस्त विकास की चाबी बंद है? ( )
   (अ) वैद्य जी (आ) बदरी पहलवान (इ) रुप्पन (ई) रंगनाथ
3. श्रीलाल शुक्ल ने रंगनाथ को किस प्रकार चित्रित किया है? ( )
   (अ) स्वयं सेवक (आ) राजनीतिज्ञ (इ) शिक्षित बेरोजगार (ई) पहलवान
4. 'एक उलूक कथा' किसकी रचना है? ( )
   (अ) श्रीलाल शुक्ल (आ) श्यामसुंदर घोष (इ) ज्ञान चतुर्वेदी (ई) हरिशंकर परसाई

II. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए –

1. .....ने व्यंग्य को आधुनिक जीवन का अभिन्न अस्त्र माना है।
2. व्यंग्य में .....होती है।
3. शिवपालगंज की सभी समस्याओं पर ..... की काली छाया मंडरा रही थी।
4. 'राग दरबारी' में ..... शैली का प्रयोग किया गया है।

III. सुमेल कीजिए -

1. शोध कार्य	(अ) सनीचर
2. जोगनाथ	(आ) नैतिकता का ठेकेदार
3. मंगलदास	(इ) लेखन का अस्त्र
4. व्यंग्य	(ई) घास खोदना
5. व्यंग्यकार	(उ) नशेड़ी और गंजेड़ी

16.8 पठनीय पुस्तकें

1. हिंदी उपन्यास - एक अंतर्यात्रा : रामदरश मिश्र
2. व्यंग्यात्मक उपन्यास तथा राग दरबारी : नंदलाल कल्ला
3. राग दरबारी कृति से साक्षात्कार : चंद्रप्रकाश मिश्र
4. हिंदी उपन्यास का इतिहास, गोपाल राय

परीक्षा प्रश्न पत्र का नमूना

MAULANA AZAD NATIONAL URDU UNIVERSITY

PROGRAMME: M.A –HINDI

I – SEMESTER EXAMINATION

TITLE& PAPER CODE :आधुनिक हिंदी गद्य (MAHN102CCT)

TIME: 3 HOURS TOTAL MARKS:70

यह प्रश्न पत्र तीन भागों में विभाजित हैं- भाग -1, भाग -2 औरभाग - 3 प्रत्येक प्रश्न के उत्तर निर्धारित शब्दों में दीजिए।

भाग – 1

1. निम्नलिखित विकल्पों में सही विकल्प चुनिए। 10X1=10

i. 'भाषा योगवशिष्ठ' के रचयिता कौन हैं? ( )

(अ) रामप्रसाद निरंजनी (आ) अकबर (इ) गंग (ई) लल्लूलाल

ii. मेरी तिब्बत यात्रा के रचनाकार कौन हैं? ( )

(अ) दिनकर (आ) चंद्रधर शर्मा गुलेरी (इ) राहुल सांकृत्यायन (ई) कोई नहीं

iii. आचार्य शुक्ल का निबंध संकलन इनमें से कौन सा है? ( )

(अ) विचार और विकारण्र (आ) रस आरवेटक (इ) चिंतामणि (ई) रसज्ञरंजन

iv. 'घीसा' रेखाचित्र महादेवी की किस पुस्तक में शामिल है? ( )

(अ) स्मृति की रेखाएँ (आ) पथ के साथी (इ) अतीत के चलचित्र (ई) यामा

Vi. 'उग्र' जी का जन्म कहाँ हुआ था? ( )

(अ) चुनार (आ) बनारस (इ) दिल्ली (ई) उज्जैन

vii. 'अपनी खबर' किसकी आत्मकथा है? ( )

(अ) विष्णुप्रभाकर (आ) कमलेश्वर (इ) बेचन शर्मा (ई) योगी हरी

viii. सूर्यकांत त्रिपाठी निराला किस संदर्भ में प्रेमचंद से आगे थे? ( )

(अ) सामाजिक मुखरता में (आ) भाषा अभिव्यक्ति में

(इ) प्रकृति चित्रण में (ई) ग्रामीण चित्रण में

ix. प्रेमचंद को हिंदी कथा साहित्य की प्रौढ़ता के सबूत किसने कहा है? ( )

(अ) रामदरश मिश्र (आ) हजारीप्रसाद द्विवेदी (इ) गोपाल राय (ई) रामविलास शर्मा

x. 'एक उलूक कथा' किसकी रचना है? ( )

(अ) श्रीलाल शुक्ल (आ) श्यामसुंदर घोष (इ) ज्ञान चतुर्वेदी (ई) हरिशंकर परसाई

भाग – 2

निम्नलिखित आठ प्रश्नों में से किन्हीं पाँच प्रश्नों के उत्तर दीजिए। प्रत्येक प्रश्न का उत्तर 200 शब्दों में देना आनिवार्य है। 5X6 =30

2. आधुनिक हिंदी गद्य के विकास में पत्र-पत्रिकाओं के योगदान पर संक्षिप्त चर्चा कीजिए।
3. हिंदी साहित्य में आचार्य रामचंद्र शुक्ल के व्यक्तित्व का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
4. महादेवी वर्मा के दर्शन पर अपने विचार प्रकट कीजिए।
5. प्रेमचंद की रचना दृष्टि पर प्रकाश डालिए।
6. 'गोदान में एक साथ समाज में व्याप्त अनेक समस्याओं का चित्रण है।' इस कथन को निरूपित कीजिए।
7. 'रंगभूमि' कथानक में कुछ दोष भी हैं, उन पर प्रकाश डालिए।
8. श्रीलाल शुक्ल की व्यंग्यपरक रचनाओं पर प्रकाश डालिए।
9. भारतीय ग्रामीण परिवेश में विकास की स्थिति को बताइए।

भाग- 3

निम्नलिखित पाँच प्रश्नों में से किन्हीं तीन प्रश्नों के उत्तर दीजिए। प्रत्येक प्रश्न का उत्तर 500 शब्दों में देना अनिवार्य है। 3X10=30

10. हिंदी में आत्मकथा साहित्य के आरंभ और विकास की चर्चा कीजिए।
11. सामाजिक जीवन के लिए करुणा की आवश्यकता पर प्रकाश डालिए।
12. 'अपनी ख़बर' के माध्यम से उग्र जी के परिवार की आर्थिक स्थिति पर चर्चा कीजिए।
13. हिंदी साहित्य में प्रेमचंद के स्थान एवं महत्व को निरूपित कीजिए।
14. इक्कीसवीं सदी की प्रवृत्तियों की चर्चा करते हुए कुछ प्रमुख उपन्यासों पर प्रकाश डालिए।

*****